

GL H 398.2
KAU V.2



121875
LBSNAA

लाल ब.

नासन अकादमी

L.B.S. National Academy of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

— 121875

अवाप्ति संख्या

Accession No.

~~13505~~

वर्ग संख्या

Class No.

GLH

398.2

पुस्तक संख्या

Book No.

21
~~कोसल्या~~ KAU

भाग 2 V.2

जा त क

[द्वितीय खण्ड]

जा त क

[द्वितीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

२०१४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

द्वितीय संस्करण १०००

सर्वाधिकार सुरक्षित
मूल्य ८)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्राक्कथन

जातक के प्रथम खण्ड की वस्तु-कथा में २३-८-४१ को लिखा था— “प्रथम खण्ड में जातकट्टकथा की निदान कथा और सौ कथाएँ हैं। दूसरे खण्ड में (जो प्रेस में है) दो सौ कथाएँ रहेंगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डों में तीन सौ कथाओं का समावेश हो जाएगा।” उक्त कथन के दस महीने बाद आज हमें जातक (द्वितीय खण्ड) को प्रकाशित होते देख विशेष प्रसन्नता हो रही है। पाठकों ने प्रथम खण्ड का जो स्वागत किया और विद्वानों ने उसकी जो समालोचना की है उसने हमें उत्साहित किया। हमें आशा थी कि हम इससे भी पहले इस खण्ड को प्रकाशित देख सकेंगे। किन्तु युद्ध के कारण मुद्रण साधनों की कठिनाइयाँ, विशेषकर कागज का अभाव, कुछ इतना बढ़ गया कि जातक के द्वितीय खण्ड के प्रकाशन के लिए हमें सम्मेलन के साहित्यमन्त्री श्री रामचन्द्र जी टंडन के विशेष परिश्रम का कृतज्ञता पूर्ण उल्लेख करना ही पड़ रहा है। पुस्तक का बड़ा अंश छप चुकने के बाद जातक के लिए जो कागज की एकदम कमी पड़ गई उसे श्री टण्डन जी ने ही अपनी प्रत्युत्पन्नमति से दूर किया। खर्च अधिक पड़ा किन्तु जातक हर दृष्टि से प्रथम खण्ड जैसा ही मुद्रित हुआ। हाँ, पहले इस द्वितीय खण्ड में जहाँ दो सौ कथाएँ देने का विचार था, पीछे डेढ़ सौ कथाएँ देना ही उचित जँचा। दो सौ कथाएँ देने से द्वितीय खण्ड बहुत ही बड़ा हुआ जा रहा था।

चित्र, विषय-सूची आदि सब कुछ प्रथम खण्ड की ही तरह हैं। प्रथम खण्ड के चित्र के लिए हम जातक के अंग्रेजी अनुवाद तथा द्वितीय खण्ड के चित्र के लिए श्री० ए० फुशेर की ‘बुद्धिस्ट आर्ट’ के ऋणी हैं।

आ० धम्मनिन्द जी कोसम्बी ने इस द्वितीय खण्ड को भी प्रथम खण्ड की तरह लगभग सारा का सारा सुन लिया है। उनकी यह कृपा सदा बनी रहे।

मूलगन्धकुटी विहार

सारनाथ

११-६-४२

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
पहला परिच्छेद	३६
११. परोसत वर्ग	२९
१०१. परोसत जातक	२९
(परोसहस्स जातक (६६) के समान ही।)	
१०२. पण्णिक जातक	३०
(बाप ने बेटी के क्वारंपन की परीक्षा की।)	
१०३. बेरी जातक	३२
(चोरों से बच आने पर सेठ प्रसन्न हुआ।)	
१०४. मित्तविन्द जातक	३३
(मित्तविन्द जातक (८२) के समान ही।)	
१०५. दुब्बलकट्ठ जातक	३५
(जंगल में हवा से टूटकर बहुत सी कमजोर लकड़ी गिरती थी। हाथी भयभीत होता था।)	
१०६. उदञ्चनि जातक	३७
(बोधिसत्त्व को एक स्त्री ने लुभा लिया।)	
१०७. सालित्त जातक	३९
(बहुत अधिक बोलने वाले पुरोहित के मुंह में बकरी की मिगनी के निशाने लगा कर कुबड़े ने उसकी अत्यधिक बोलने की आदत छुड़ा दी।)	

विषय	पृष्ठ
१०८. बाह्य जातक	४२
(स्त्री के ठीक ढंग से शौच फिरने मात्र से राजा प्रसन्न हो गया ।)	
१०९. कुण्डकपूव जातक	४४
(अरण्ड वृक्षदेवता ने अपने भक्त के चूरे के पूए को स्वीकार किया ।)	
११०. सन्वसंहारक पञ्चो	४७
(यह जातक महाउम्मग जातक (५४६) में आएगी ।)	
१२. हंसी वर्ग	४८
१११. गद्वभ पञ्चो	४८
(यह जातक भी उम्मग जातक (५४६) में ही आएगी ।)	
११२. अमरावेवी पञ्च	४८
(यह जातक भी उम्मग जातक (५४६) में ही आएगी ।)	
११३. सिगाल जातक	४८
(लोभी ब्राह्मण की चादर में गीडड़ ने कार्षापणों के बजाय मलमूत्र त्याग दिया ।)	
११४. मितचिन्ती जातक	५१
(मितचिन्ती मच्छ ने बहुचिन्ती और अल्पचिन्ती मच्छ की जान बचाई ।)	
११५. अनुसासिक जातक	५३
(दूसरों को उपदेश देनेवाली लोभी चिड़िया स्वयं पहिए के नीचे आकर मर गई ।)	

विषय	पृष्ठ
११६. बुद्धि जातक	५५
(शिष्य का कहना न मान अपनी सामर्थ्य के बाहर पाँचवीं शक्ति लाँघने वाले आचार्य ने प्राणों से हाथ धोए ।)	
११७. तित्तिर जातक (२)	५७
(वाचाल तपस्वी तथा तित्तिर की जान अधिक बोलने के कारण गई)	
११८. बट्टक जातक (२)	५९
(चिड़ीमार का दिया दाना-पानी ग्रहण न कर बटेर अपनी होशियारी से बन्धनमुक्त हुआ ।)	
११९. अकालरावी जातक	६३
(असमय शोर मचाने वाला मुर्गा विद्यार्थियों द्वारा मार डाला गया ।)	
१२०. बन्धनमोक्ष जातक	६५
(राजा को धोखे में रख उसकी रानी ने चौसठ मनुष्यों से सहवास किया । पुरोहित ने पाप-भीरुता के कारण ऐसा न किया । रानी ने पुरोहित पर झूठा इल्जाम लगा उसे बँधवा दिया । सच्ची बात प्रगट कर पुरोहित स्वयं मुक्त हुआ और अपने साथ उन चौसठ आदमियों तथा रानी की भी जान बचाई ।)	
१३. कुसनाळि वरं	७०
१२१. कुसनाळि जातक	७०
(बोधिसत्त्व ने गिरगिट का रूप धारण कर वृक्षदेवता के निवास स्थान मंगल-वृक्ष को न कटने दिया ।)	
१२२. बुद्धि जातक	७४
(राजा अपने मंगल हाथी की प्रशंसा सुन ईर्ष्या के वशीभूत	

विषय

पृष्ठ

हो गया। उसने उसे मरवाना चाहा। महावत को जब यह पता लगा तो वह उसे आकाश-मार्ग से काशी ले आया।)

१२३. नंगलोस जातक ७७

(आचार्य्य ने जड़-बुद्धि शिष्य को जो देखे सुने उसकी उपमाओं द्वारा विद्या सिखानी चाही। किन्तु वह हर चीज की उपमा केवल हल की फाल से ही देता रहा। आचार्य्य को हार माननी पड़ी।)

१२४. अम्ब जातक ८१

(तपस्वी अपने आहार की भी चिन्ता न कर पशुओं को पानी पिलाता था। वे उसे फलमूल लाकर देने लगे।)

१२५. कटाहक जातक ८३

(दास ने झूठा पत्र लिख एक सेठ की लड़की से शादी की। स्वामी को पता लग गया। लेकिन तब भी उसने प्रकट न किया। दास सेठ की लड़की को तंग करता था—भोजन में बहुत दोष निकालता था। स्वामी ने सेठ की लड़की को एक ऐसा मन्त्र बता दिया कि दास का मुँह बन्द हो गया।)

१२६. असिलक्षण जातक ८७

(एक ब्राह्मण तलवार को सूँघ कर अच्छी या बुरी बताता था। रिश्वत देनेवाले की तलवार अच्छी, न देनेवाले की बुरी ठहरती। किसी शिल्पी ने तलवार के म्यान में मिर्चचूर्ण भर अपनी तलवार परीक्षा के लिए दी। ब्राह्मण को तलवार सूँघते समय छींक आ गई। नाक कट गई। पीछे लाख की नाक लगवाई गई।)

एक राजकुमार और राजकुमारी परस्पर स्नेह करते थे। लोग उनका विवाह न होने देना चाहते थे। राजकुमार ने भूत बन छींक कर राजकुमारी को प्राप्त किया।

छींकने से एक की नाक कटी, दूसरे को राजकुमारी मिली।)

विषय	पृष्ठ
१२७. कलण्डुक जातक	९१
(कटाहक जातक (१२५) के समान है। इस जातक में सेठ की जगह एक तोते का बच्चा दास को सावधान करता है।)	
१२८. बिळारवत जातक	९३
(शृगाल धर्म का ढोंग कर चूहों को खाता था। बोधिसत्त्व ने उसे बताया कि यह विळारवत है।)	
१२९. अंगिक जातक	९५
(शृगाल के शरीर के सारे बाल जलकर सिर के कुछ बाल बच गए थे। उसने उन्हें शिखा बना चूहों को ठग कर खाना आरम्भ किया। बोधिसत्त्व ने उस ढोंगी से चूहों की रक्षा की।)	
१३०. कोसिय जातक	९७
(दुश्शीला ब्राह्मणी रोग का बहाना कर ब्राह्मण के लिए चिन्ता का कारण हो गई। आचार्य ने उसे ठीक किया।)	
१४. असम्पदान वर्ग	१०१
१३१. असम्पदान जातक	१०१
(वाराणसी के पिळिय सेठ पर आपत्ति आई। राजगृह के सङ्घ सेठ ने आधी सम्पत्ति बाँट दी; किन्तु जब राजगृह के सङ्घ सेठ का धन जाता रहा तो वाराणसी के पिळिय सेठ ने अपना मित्र-धर्म नहीं निभाया।)	
१३२. पञ्चगदक जातक	१०५
(तेलपत्त जातक (९६) के समान।)	
१३३. घटासन जातक	१०८
(बृक्ष पर पक्षिगण थे। तालाब में के नागराज ने पानी में आग जलाई। पक्षिगण अन्यत्र गए।)	

- | विषय | पृष्ठ |
|---|-------|
| १३४. ज्ञानसोधन जातक | ११० |
| (मरते हुए आचार्य्य ने 'नेवसञ्जानासञ्जी' कहा । ज्येष्ठ शिष्य ही समझ सका ।) | |
| १३५. चन्दाभ जातक | १११ |
| (मरते हुए आचार्य्य ने 'चन्दाभं मुरियाभं' कहा । ज्येष्ठ शिष्य ही समझ सका ।) | |
| १३६. सुवर्णहंस जातक | ११३ |
| (लोभवश ब्राह्मणी ने सुवर्ण-हंस के सभी पर एक साथ उखाड़ लिए । वह सोने के न होकर साधारण पंख रह गए ।) | |
| १३७. बम्बु जातक | ११६ |
| (चुहिया बिल्लों को मांस दे देकर अपनी जान बचाती थी । बोधिसत्त्व के उपदेश से वह सब को मारने में समर्थ हुई ।) | |
| १३८. गोह जातक | १२० |
| (तपस्वी गोह का मांस खाना चाहता था । गोह ने ताड़ लिया—अन्दर से मैला है, बाहर ही साफ है ।) | |
| १३९. उभतोभट्ट जातक | १२३ |
| (घर में भार्या ने पड़ोसिन से झगड़ा कर लिया । बाहर मछली पकड़ने जाकर मछवे की आँख फूट गई और कपड़े चोरी चले गए; इस प्रकार वह उभयभ्रष्ट हुआ ।) | |
| १४०. काक जातक | १२५ |
| (कौवे ने ब्राह्मण के सिर पर बीट कर दी । ब्राह्मण ने कौवों की जाति को ही नष्ट करने का संकल्प किया । बोधिसत्त्व ने अपनी जाति की रक्षा की ।) | |

विषय	पृष्ठ
१५. कक्रष्टक वर्ग	१२९
१४१. गोघ जातक (२)	१२९
(गोह की गिरगिट के साथ दोस्ती गोह-कुल नष्ट करने का कारण हुई।)	
१४२. सिगाल जातक	१३१
(गोदड़ों को मारने की इच्छा से एक धूर्त आदमी ने मुर्दे का स्वांग किया।)	
१४३. बिरोचन जातक	१३३
(गोदड़ ने शेर की नकल करके पराक्रम दिखाना चाहा। हाथी ने उसे पाँव से रोंद दिया, उस पर लीद कर दी।)	
१४४. नंगुह जातक	१३७
(ब्राह्मण अग्नि-भगवान को गो-मांस चढ़ाना चाहता था। चोर ही उस बैल को मार कर खा गए। ब्राह्मण बोला—हे अग्नि भगवान्! आप अपने बैल की रक्षा भी नहीं कर सके। अब यह पूछ ही ग्रहण करें।)	
१४५. राध जातक	१४०
(पोटुपाद और राध नाम के दो तोते ब्राह्मणी का अनाचार प्रकट करने के बाद उस घर में नहीं रहे।)	
१४६. काक जातक	१४२
(कौवी को समुद्र बहा ले गया। कौवों ने क्रोधित हो उलीच-उलीच कर समुद्र खाली करना चाहा।)	
१४७. पुष्करस्त जातक	१४५
(स्त्री ने केसर के रंग का वस्त्र पहन उत्सव मनाने की जिद की। स्वामी को चोरी करनी पड़ी। राजाज्ञा से उसका वध हुआ।)	

विषय	पृष्ठ
१४८. सिगाल जातक	१४७
(मांस-लोभी सियार हाथी के गुदा-मार्ग से उसके पेट में प्रविष्ट हो वहां कैद हो गया ।)	
१४९. एकपण्ण जातक	१५२
(बोधिसत्त्व ने नीम के पौदे के दो पत्तों की कड़वाहुट चखा कर राजकुमार का दुष्ट स्वभाव दूर किया ।)	
१५०. सञ्जीव जातक	१५७
(विद्यार्थी ने मुर्दे को जिलाने का मन्त्र तो सीखा किन्तु उसे फिर मुर्दे बनाने का नहीं । एक व्याघ्र ने उसकी हत्या की ।)	

दूसरा परिच्छेद १६२

१. दळह वर्ग	१६२
१५१. राजोबाद जातक	१६२
(मल्लिक राजा 'जैसे को तैसा' था, किन्तु काशी नरेश बुराई को भलाई से जीतता था । वही बड़ा सिद्ध हुआ ।)	
१५२. सिगाल जातक	१६७
(सियार ने सिंह-बच्ची से प्रेम निवेदन किया । उसने अपने भाइयों से शिकायत की । सियार को मार डालने के प्रत्यत्न में सातों शेर मर गए ।)	
१५३. सूकर जातक	१७२
(सुअर ने शेर को युद्ध के लिए ललकारा । शेर लड़ने आया; किन्तु उसके बदन की गन्दगी के कारण बिना लड़े ही सुअर को विजयी मान चला गया ।)	

विषय	पृष्ठ
१५४. उरग जातक	१७५
(बोधिसत्त्व ने गरुड़-से नाग की रक्षा की ।)	
१५५. गग्न जातक	१७९
(छींक आने पर 'जीवें' और 'जीओ' कहने की प्रथा कैसे चली ?)	
१५६. अलीनचित्त जातक	१८२
(बड़इयों ने हाथी के पाँव का काँटा निकाला । कृतज्ञ हाथी पहले स्वयं उनकी सेवा करता रहा । बाद में अपना लड़का दे दिया । उस हाथी-बच्चे ने बहुतों को उपकृत किया ।)	
१५७. गुण जातक	१८८
(दलदल में फँसे सिंह को सियार ने बाहर निकाला । सिंह अन्त तक कृतज्ञ रहा ।)	
१५८. सुहनु जातक	१९५
(लोभी राजा चाहता था कि व्यापारियों के घोड़े उसे कम मूल्य में मिल जाएँ । बोधिसत्त्व ने उसकी योजना विफल कर दी ।)	
१५९. मोर जातक	१९९
(रानी ने सुनहरे रंग के मोर के लिए जान दे दी । राजा ने सोने के पट्टे पर लिखवाया—जो सुनहरे मोर का मांस खाते हैं, वे अजर अमर हो जाते हैं । मोर ने पूछा—मैं तो मरूँगा, मेरा मांस खाने वाले क्यों नहीं ?)	
१६०. विनीलक जातक	२०५
(हंस ने कौवी के साथ सहवास किया । विनीलक पैदा हुआ । हंस उसे अपने बच्चों के समान रखना चाहता था किन्तु वह अयोग्य सिद्ध हुआ ।)	

विषय	पृष्ठ
२. सन्धव वर्ग	२०८
१६१. इन्द्रसमानगोत्त जातक	२०८
(मैत्री बराबर वाले के साथ करनी चाहिए । इन्द्रसमानगोत्त ने बच्चे-हाथी का अनुचित विश्वास किया । उसने बड़े होने पर अपने को पोसनेवाले को ही मार डाला ।)	
१६२. सन्धव जातक	२११
(ब्राह्मण ने धी मिश्रित खीर अग्नि भगवान को पिलाई । अग्नि भगवान ने उसकी पर्णकुटी जला डाली ।)	
१६३. सुसीम जातक	२१४
(सुसीम राजा ने समझा कि उसके पुरोहित का लड़का न तीनों वेद जानता है न हस्ति-सूत्र । किन्तु वह सोलह वर्ष का बालक एक ही रात में तक्षशिला से तीनों वेद और हस्ति-सूत्र सीख आया ।)	
१६४. गिज्ज जातक	२१९
(गृद्धों ने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए लोगों के वस्त्रा-भरण उठा उठा कर सेठ को लाकर दिए ।)	
१६५. नकुल जातक	२२२
(बोधिसत्त्व ने नेवले और साँप की दोस्ती करा दी ।)	
१६६. उपसाळहक जातक	२२४
(उपसाळहक ब्राह्मण मरने पर ऐसी जगह जलाया जाना चाहता था जहाँ पहले कोई न जलाया गया हो । लेकिन ऐसी जगह कहाँ ?)	
१६७. समिद्धि जातक	२२७
(देवकन्या ने भिक्षु के सुन्दर शरीर पर आसक्त हो उसे काम-	

विषय

पृष्ठ

भोगों का निमन्त्रण दिया । भिक्षु ने बिना काम-भोगों को भोगे भिक्षु बनने का कारण बताया ।)

१६८. सकुणगिध जातक २३०

(बटेर ने अपने गोचर स्थान पर रह कर बाज की भी जान ले ली ।)

१६९. अरक जातक २३३

(मैत्री भावना का महात्म्य ।)

१७०. ककण्टक जातक २३५

(यह कथा महाउम्मग जातक (५४६) में है ।)

३. कल्याणधम्म वर्ग २३६

१७१. कल्याणधम्म जातक २३६

(प्रव्रजित न होने पर भी घर के मालिक को प्रव्रजित हुआ समझ सभी रोने पीटने लगे । घर के मालिक को पता लगा तो वह सचमुच प्रव्रजित हो गया ।)

१७२. बह्वर जातक २३९

(नीच सियार का चिल्लाना सुन लज्जावश सिंह चुप हो गए ।)

१७३. मक्कट जातक २४२

(बन्दर तपस्वी का भेष बनाकर आया था । बोधिसत्त्व ने उसे भगा दिया ।)

१७४. बुद्धभियमक्कट जातक २४५

(तपस्वी ने बन्दर को पानी पिलाया । बन्दर अपने उपकारी पर पाखाना करके गया ।)

विषय	पृष्ठ
१७५. आदिच्युपट्टान जातक	२४७
(बन्दर ने सूर्य की पूजा करने का ढोंग बनाया ।)	
१७६. कळायुमुट्टि जातक	२४९
(बन्दर का हाथ और मुँह मटर से भरा था, किन्तु वह उन सब को गवां कर केवल एक मटर को खोजने लगा ।)	
१७७. तिन्दुक जातक	२५२
(फल खाने जाकर सभी बन्दर फँस गए थे । गांव वाले उन्हें मार डालते । बोधिसत्त्व के सेनक नामक भानजे ने अपनी बुद्धि से सबको बचाया ।)	
१७८. कच्छप जातक	२५५
(जन्मभूमि के मोह के कारण कछुवे की जान गई ।)	
१७९. सतधम्म जातक	२५८
(ब्राह्मण ने पहले अपने ऊँचे कुल के अभिमान के कारण चाण्डाल का दिया भात खाने से इन्कार किया । पीछे जोर की भूख लगने पर चाण्डाल से छीन कर उसका जूठा भात खाया ।)	
१८०. दुद्द जातक	२६२
(कठिनाई से दिया जा सकने वाला दान देने की महिमा ।)	
४. असदिस वर्ग	२६५
१८१. असदिस जातक	२६५
(असदिस राजकुमार की विलक्षण धनुर्विद्या ।)	
१८२. सङ्गामावचर जातक	२७०
(हाथी-शिक्षक ने मंगल-हाथी को बढ़ावा दे संग्राम जीता ।)	

विषय	पृष्ठ
१८३. बाळोदक जातक	२७५
(सिन्धुकुल में पैदा हुए घोड़े अंगूर का रस पीकर शान्त रहे। बच्चे कसेले रस में पानी मिलाकर गधों को पिलाया गया। वह उछलने-कूदने लगे।)	
१८४. गिरिदत्त जातक	२७७
(शिक्षक के लँगड़े होने से घोड़ा लँगड़ाकर चलने लग गया।)	
१८५. अनभिरति जातक	२८०
(चित्त की अस्थिरता मन्त्रों की विस्मृति का कारण हुई।)	
१८६. दधिवाहन जातक	२८२
(दधिवाहन राजा ने मणि-खण्ड, छुगी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही के घड़े की मदद से वाराणसी के राज्य पर अधिकार किया।)	
१८७. चतुमट्ठ जातक	२८७
(हंस-बच्चे वृक्ष पर बैठ बातचीत करते थे। सियार बोला— नीचे उतरकर बातचीत करो, जिसे मृगराज भी सुने।)	
१८८. सोहकोत्थक जातक	२८९
(गीदड़ी से सिंहपुत्र पैदा हुआ। उसकी शकल-मूर्गन थी सिंह जैसी किन्तु स्वर शृगाल का सा।)	
१८९. सीहचम्म जातक	२९१
(सिंह की खाल पहन कर गधा खेत चरता रहा; किन्तु बोलने पर मारा गया।)	
१९०. सीलानिसंज्ञ जातक	२९२
(शील के प्रताप से एक आर्य्य-श्रावक ने अपने साथ एक नाई को भी नौका पर समुद्र पार लँघाया।)	

विषय	पृष्ठ
५. रहक वर्ग	२९६
१९१. रहक जातक	२९६
(ब्राह्मणी न ब्राह्मण क साथ मजाक किया। उसन गुस्से हो उसे तलाक दे दिया।)	
१९२. सिरिकालकणि जातक	२९८
(यह जातक महाउम्मग जातक (५४६) में आएगी।)	
१९३. चुल्लपदुम जातक	२९९
(सात भाई छः भाइयों की स्त्री को मार कर खा गए। बोधि-सत्त्व अपनी स्त्री को लेकर भाग निकले। उस स्त्री ने कृतघ्नता की हद्द कर दी।)	
१९४. मणिचोर जातक	३०४
(राजा ने स्त्री पर मुग्ध हो उसके पति पर मणि चुराने का झूठा अपराध लगाकर उसे मरवाना चाहा। वह स्वयं मारा गया।)	
१९५. पड्बत्तपत्थर जातक	३०९
(राजा की रानी को उसके अमात्य ने दूषित कर दिया। राजा ने विचार कर दोनों को क्षमा कर दिया।)	
१९६. वालाहस्स जातक	३११
(यक्षिणियां व्यापारियों को फँसा कर यक्ष नगर ले जातीं। पाँच सौ व्यापारी उनके चंगुल में फँस गये। ज्येष्ठ व्यापारी को पता लगा कि यह यक्षिणियां हैं। उसने सब को भग चलने को कहा। ढाई सौ व्यापारी ज्येष्ठ व्यापारी का कहना मान बच निकले। कहना न मानने वाले वे ढाई सौ व्यापारी यक्षिणियों के आहार बने।)	

विषय	पृष्ठ
१९७. भित्ताभित्त जातक	३१५
(मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है ?)	
१९८. राघ जातक	३१७
(पोटुठपाद ने ब्राह्मणी को दुराचार से विरत रहने का उपदेश दिया। उसने बिचारे तोते की गरदन मरोड़ उसे चूल्हे में फेंक दिया।)	
१९९. गहपति जातक	३२०
(ब्राह्मणी और गाँव का मुखिया मिल कर ब्राह्मण को धोखा देना चाहते थे। वे अपने दुराचार को न छिपा सके।)	
२००. साधुसील जातक	३२३
(एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं। उसने आचार्य से पूछा—लड़कियाँ किसे देना योग्य है ?)	
६. नतंबल्ह वर्ग	३२६
२०१. बन्धनागार जातक	३२६
(पुत्र दारा का बन्धन सब से बड़ा बन्धन है।)	
२०२. केळिसील जातक	३२९
(शक्र ने जरा जीर्ण हाथी, घोड़े, बैल तथा आदमियों को तंग करने वाले ब्रह्मदत्त का दमन किया।)	
२०३. खन्धवत्त जातक	३३२
(सर्पों के प्रति मैत्री-भावना का माहात्म्य।)	
२०४. वीरक जातक	३३७
(सविट्टक ने वीरक की नकल की। वह कार्ड में फँसकर मर गया।)	

- विषय पृष्ठ
२०५. गंगेय्य जातक ३४०
 (गङ्गेय्य सुन्दर है अथवा यामुनेय्य ? दोनों मछलियों में कौन अधिक सुन्दर है ?)
२०६. कुरुंगमिग जातक ३४२
 (कुरुङ्ग मृग ने कठफोड़े तथा कछुवे की सहायता से अपने को शिकारी से बचाया और उनके प्राणों की भी रक्षा की।)
२०७. अस्सक जातक ३४५
 (अस्सक राजा अपनी मृत रानी के शोक से पागल हो रहा था। वह रानी गोबर के कीड़े की योनि में पैदा होकर एक कीड़े को अस्सक राजा की अपेक्षा अच्छा समझती थी।)
२०८. संसुमारजातक
 (मगरमच्छ की भार्य्या बन्दर का कलेजा खाना चाहती थी। ३४९
 कपिराज ने उसके पति को बुरी तरह चकमा दिया।)
२०९. कक्कर जातक ३५१
 (पुराना हुशियार बटेरा शिकारी के फन्दे में नहीं आता था।)
२१०. कन्दगळक जातक ३५३
 (कन्दगळक ने खदिरवन में रहने वाले कठफोरनी पक्षी की नकल कर अपनी जान गँवाई।)
७. वीरणत्यम्भक वर्ग ३५६
२११. सोमदत्त जातक ३५६
 (पुत्र पिता को सिखा पढ़ाकर राजा से दो बैल माँगने ले गया।
 पिता ने राजा से बैल माँगने के बदले कहा—बैल लें।)
२१२. उच्छिद्वटभक्त जातक ३५९
 (ब्राह्मणी ने अपने पति को अपने जार का जूठा भात खिलाया।)

विषय	पृष्ठ
२१३. भरु जातक	३६२.
(भरु राजा ने रिश्वत ले बट वृक्ष के लिए झगड़ने लाले तपस्वियों का झगड़ा बढ़ाया।)	
२१४. पुण्णनदी जातक	३६६
(राजा ने क्रोधित हो अपने बुद्धिमान पुरोहित को निकाल दिया था। पीछे उसके गुणों को याद कर कौवे का मांस भेज कर बुलाया।)	
२१५. कच्छप जातक	३६९
(हंस-बच्चे अपनी चोंच में एक लकड़ी पर कछुवे को लिए जा रहे थे। उसने चुप न रह सकने के कारण आकाश से गिर कर जान गँवाई।)	
२१६. मच्छ जातक	३७२
(कामी मच्छ ने मछुओं से प्राण की भिक्षा माँगी।)	
२१७. सेगु जातक	३७४
(पिता ने पुत्री के कर्तारपन की परीक्षा की।)	
२१८. कूटवाणिज जातक	३७६
(एक बनिए ने दूसरे की लोह की फालों को 'चूहे खा गए' कहा तो उसने उसके पुत्र को 'चिड़िया ले गई' कहा।)	
२१९. गरहित जातक	३८०
(बन्दर ने कुछ दिन मनुष्यों में रह कर लौट कर अपने साथियों में मनुष्यों के जीवन की बड़ी निन्दा की।)	
२२०. धम्मद जातक	३८३
(राजा ने कालक के स्थान में बोधिसत्त्व को न्यायाधीश बना दिया। कालक का रिश्वत का लाभ जाता रहा। उसने बोधिसत्त्व को मरवाने के अनेक उपाय किए। शत्रु बोधिसत्त्व के सहायक थे। कालक की एक न चली।)	

विषय	पृष्ठ
८. कासाव वर्ग	३९४
२२१. कासाव जातक	३९४
(एक आदमी काषाय वस्त्र पहन हाथियों को धोखा दे उनकी सूण्ड काट काट लाकर बेचता था।)	
२२२. चुल्लनन्दिन जातक	३९७
(शिकारी ने मातृ-भक्त बन्दरों तथा उनकी बूढ़ी माता को मार डाला। उसके घर पर बिजली गिर पड़ी।)	
२२३. पुटभक्त जातक	४०१
(राजा को भात की पोटली मिली। वह उसमें से बिना रानी को कुछ दिए अकेला ही खा गया।)	
२२४. कुम्भील जातक	४०५
(वानरिन्द जातक (५७) के समान कथा है।)	
२२५. खन्तिवर्णन जातक	४०६
(अमात्य ने राजा के रनिवास को दूषित किया और अमात्य के सेवक ने उसके घर में दूषित कर्म किया।)	
२२६. कोसिय जातक	४०८
(समय पर घर से बाहर निकलना अच्छा है, असमय पर नहीं।)	
२२७. गूथपाणक जातक	४११
(गूँह का कीड़ा गीले गूँह पर चढ़ा। वह उसके चढ़ने से थोड़ा नीचे को दबा। गूँह का कीड़ा चिल्लाया—पृथ्वी मेरा बोझ नहीं उठा सकती है।)	
२२८. कामनीत जातक	४१४
(काम जातक (४६७) में। ब्रह्मचारी ने राजा को तीन राज्य जिता देने की बात कही। फिर वह चला गया। राजा को लगा कि उसके हाथ में आए हुए तीन राज्य चले गए।)	

विषय	पृष्ठ
२२९. पलासी जातक	४१८
(वाराणसी नरेश ने तक्षशिला पर आक्रमण की तैयारी की। किन्तु वह तक्षशिला नरेश की ड्योढ़ी देखकर ही हिम्मत हार गया।)	
२३०. दुतीय पलासी जातक	४२१
(तक्षशिला नरेश ने वाराणसी नरेश पर आक्रमण की तैयारी की। किन्तु वह वाराणसी नरेश के स्वर्णपट सदृश महाललाट को देख कर हिम्मत हार गया।)	
९. उपाहन वर्ग	४२४
२३१. उपाहन जातक	४२४
(शिष्य ने आचार्य्य से हस्ति-शिल्प सीख उन्हीं से मुकाबला करना चाहा।)	
२३२. वीणथूण जातक	४२७
(सेठ की लड़की ने कुबड़े की पीठ पर कूब देख कर समझा यह पुरुषों में वृषभ होगा।)	
२३३. बिकण्णक जातक	४३०
(स्वादिष्ट भोजन के वशीभूत हो मच्छ तीर से बींधा गया।)	
२३४. असिताभू जातक	४३२
(राजकुमार अपनी देवी की ओर से उदासीन हो किन्नरी की ओर आकृष्ट हुआ। देवी ने सन्मार्ग ग्रहण किया।)	
२३५. वच्छनख जातक	४३५
(गृहस्थी ने परिव्राजक को गृहस्थ जीवन की ओर आकृष्ट करना चाहा। परिव्राजक ने गृहस्थ जीवन के दोष कहे।)	
२३६. बक जातक	४३८
(ढोंगी बगुला मछलियों को खाना चाहता था।)	
२३७. साकेत जातक	४३९
(तथागत ने स्नेह की उत्पत्ति का कारण बताया।)	

विषय	पृष्ठ
२३८. एकपद जातक	४४१
(अनेक अर्थपदों से युक्त एकपद ।)	
२३९. हरितमात जातक	४४३
(सर्प ने नीले मेण्डक से पूछा—तुझे मछलियों की यह करतूत अच्छी लगती है ?)	
२४०. महापिंगल जातक	४४६
(राजा मर गया था । तब भी द्वारपाल को भय था कि अत्याचारी राजा यमराज के पास से कहीं लौट न आवे ।)	
१०. सिंगाल वर्ग	४५०
२४१. सब्बदाठ जातक	४५०
(सब्बदाठ नामक श्रृगाल ने पृथ्वीजय मन्त्र सीख लिया था । उसने सब पशुओं की सेना बना वाराणसी नरेश पर आक्रमण किया । ब्राह्मण ने उपाय से उसे हगया ।)	
२४२. सुनख जातक	४५३
(कुत्ते को चमड़े की रस्सी में बाँध कर ले जाया जा रहा था । जब सब लोग सो रहे थे कुत्ते ने चमड़े की रस्सी काट डाली और भाग आया ।)	
२४३. गुत्तिल जातक	४५५
(उज्जेन का मूसिल गन्धर्व काशी के गुत्तिल गन्धर्व के पास आया । उसने गुत्तिल से वीणावादन सीख गुत्तिल से ही मुकाबला करने की धृष्टता की ।)	
२४४. वीतिच्छ जातक	४६५
(परिव्राजक ने बोधिसत्त्व से शास्त्रार्थ किया—कौन सी गंगा ?)	
२४५. मूलपरियाय जातक	४६७
(आचार्य ने अभिमानी शिष्यों को प्रश्न पूछ कर निरुत्तर किया ।)	

विषय	पृष्ठ
२४६. तेलोवाह जातक	४७०
(बुद्धिमान मांस खाने वाले को पाप नहीं लगता ।)	
२४७. पादञ्जली जातक	४७२
(पादञ्जली कुमार को केवल होंठ चबाना आता है ।)	
२४८. किमुकोपम जातक	४७४
(राजकुमारों ने किमुक को भिन्न-भिन्न समयों में देखा था । इसीलिए उनमें से एक ने किमुक को एक आकार का समझा, दूसरे ने दूसरे का ।)	
२४९. सालक जातक	४७६
(सपेरे ने बन्दर को बाँस से मारा । बंदर ने फिर सपेरे का विश्वास ही नहीं किया ।)	
२५०. कपि जातक	४७८
(ढोंगी बन्दर आग तापने के लिए कुटी के द्वार पर बैठा था । तपस्वी ने भगा दिया ।)	

पहला परिच्छेद

११. परोसत वर्ग

१०१. परोसत जातक

परोसतञ्चपि	समागतानं
ज्ञायेयुं ते वत्ससतं	अपञ्ज्या,
एकोव संय्यो पुरिसो	सपञ्जे
यो भासितस्स	विजानाति अत्थं ॥

[प्रज्ञाहीन शताधिक आये-हुए मनुष्य यदि सौ वर्ष तक भी ध्यान लगाते रहें तो उनकी अपेक्षा एक प्रज्ञावान् मनुष्य जो कही हुई बात के (गम्भीर) अर्थ को जान लेता है, अच्छा है।]

कथा की दृष्टि से, व्याख्या (व्याकरण) की दृष्टि से, सारांश की दृष्टि से यह जातक (कथा) 'परोसहस्स जातक' के समान ही है। इसमें केवल 'ध्यान करें' पद की विशेषता है। जिसका अर्थ है कि प्रज्ञा-रहित मनुष्य सौ वर्ष भी ध्यान करते रहें, देखते रहें, धारण करते रहें; इस प्रकार देखते हुए भी वह गूढ़ (अर्थ) को अथवा (असली) बात को नहीं देख पाते। इसलिए जो मनुष्य कही बात के अर्थ को जानता है वह प्रज्ञावान् अकेला ही अच्छा है।

१०२. पणिक जातक

“यो दुक्ख कुट्ठाय भवेय्य ताणं . . .” आदि (की कथा) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक दुकानदार उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह धावस्ती-निवासी उपासक नाना प्रकार की जड़ी-बूटी तथा लौकी-कद्दू आदि बेच कर गुजारा करता था। उसकी एक लड़की थी। रूपवान, सुन्दर, सदाचारिणी तथा लज्जा-भय से युक्त; (लेकिन साथ ही) सदा हंसती रहती थी। बराबरी के कुलवालों के लड़की को ब्याहने आने (की इच्छा करने) पर, वह सोचने लगा—“इसकी शादी होगी। यह सदैव हँसती रहती है। कँवारपन को नष्ट करके यदि कुमारी दूसरे कुल में जाती है, तो माता-पिता के लिये निन्दा का कारण होती है। मैं इसकी परीक्षा करूँगा कि इसका कँवारपन सुरक्षित है कि नहीं?”

एक दिन उसने लड़की से टोकरी उठवा, पत्तों के लिए जंगल में जाकर, उसकी परीक्षा करने की इच्छा से, कामासक्त की भाँति हो, गुप्त ब्रात कह उसे हाथ से धर लिया। जैसे ही उसे पकड़ा उसने रोते चिल्लाते हुए कहा—“तात ! यह नामुनासिब है; यह पानी से आग निकलने के सदृश है। ऐसा न करें।”

“अम्म ! मैंने केवल परीक्षा करने के लिए ही तुझे हाथ से धरा था। अब, बता कि तेरा कँवारपन (सुरक्षित) है या नहीं?”

“हाँ तात ! है। मैंने राग के वशीभूत हो किसी भी पुरुष की ओर नहीं देखा।”

उसने लड़की को आश्वासन दे, घर ले जा, विवाह करके पराये कुल भेजा। (फिर) शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से, गन्ध-माला आदि हाथ में ले, जेतवन पहुँच, शास्ता की वन्दना तथा पूजा करके एक ओर बैठ। “चिरकाल के बाद आये?” पूछे जाने पर उसने भगवान को वह सब हाल कहा। शास्ता ने उपासक ! कुमारी तो चिरकाल से सदाचारिणी है ! लेकिन तूने न केवल अभी किन्तु, पहले भी उसकी परीक्षा की है’ कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय बाराणसी में एक दुकानदार उपासक था . . . इत्यादि कथा वर्तमान कथा के सदृश ही है। हाँ, परीक्षा करने के लिए उसने जब लड़की को हाथों से धरा, तो लड़की ने रोते-रोते यह गाथा कही—

यो दुःखकुट्टाय भवेय्य ताणं
सो मे पिता दूभि वने करोति,
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्जे
यो तायिता सो सहसा करोति ॥

[कष्ट में पड़ने पर, जिसे त्राता होना चाहिये, वही मेरा पिता जंगल में विश्वास-घात कर रहा है। सो मैं जंगल में किसे (सहायता के लिये) बुलाऊँ? जो त्राता है, वही दुस्साहस कर रहा है।]

यो दुःखकुट्टाय भवेय्य ताणं का अर्थ है कि जो शारीरिक अथवा मानसिक दुःख से पीड़ित का त्राण करता है, परित्राण करता है, तथा प्रतिष्ठा का कारण होता है। सो मे पिता दूभि वने करोति का अर्थ है कि वह दुःख से परित्राण करनेवाला मेरा पिता ही यहाँ इस प्रकार का मित्र-द्रोही कर्म करता है, अपनी निज की पुत्री (के शील) को ही लाँघना चाहता है। सा कस्स कन्दामि का मतलब है कि किसके पास रोऊँ? कौन मुझे बचायेगा? यो तायिता सो सहसा करोति, का अर्थ हुआ कि जो पिता मेरा त्राता है, रक्षक है, आश्रय दाता होने योग्य, वह पिता ही दुस्साहस कर रहा है।

तब पिता ने उसे आश्वासन देकर पूछा—“अम्म! तूने अपने आप को सुरक्षित तो रक्खा है?”

“हाँ, तात! मैंने अपने आपको (सँभाल कर) रक्खा है।”

उसने उसे घर ले जा विवाह कर, पराये कुल भेज दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना, (आर्य-) सत्थ्यों को प्रकाशित कर, जातक का

मेल बैठाया। सत्त्यों (के प्रकाशन) के अंत में उपासक स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का पिता ही इस समय का पिता; लड़की ही इस समय की लड़की है। लेकिन उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

१०३. बेरी जातक

“यत्थ बेरी निवसति . . .” आदि गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक ने अपने भोग-ग्राम^१ से लौटते हुए रास्ते में चोरों को देखकर सोचा—“रास्ते में रहना ठीक नहीं। श्रावस्ती ही जाकर रहूँगा।” यह सोच जल्दी जल्दी बैलों को हाँक, श्रावस्ती पहुँच, अगले दिन जब बिहार गया, तो शास्ता को यह बात कही। शास्ता ने “गृहपति ! पूर्व समय में भी पण्डित-जन रास्ते में चोरों को देखकर रास्ते में न ठहर, अपने रहने के स्थान पर ही चले गये” कह उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महासम्पत्तिशाली सेठ होकर पैदा हुआ। एक गाँव में निमन्त्रण खाकर लौटते समय रास्ते में चोरों को देख वहाँ नहीं ठहरा। जल्दी जल्दी बैलों को हाँक, अपने घर ही आकर नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसों से युक्त भोजन करके महाशय्या पर लेटा। उस समय ‘चोरों के हाथ

^१ भोगग्राम=जमींदारी का ग्राम।

से निकलकर भयरहित स्थान अपने घर पर आ गया हूँ सोच, उत्सासपूर्वक यह गाथा कही—

यत्थ बैरी निवसति न वसे तत्थ पण्डितो,
एकरत्तं द्विरत्तं वा दुक्खं वसति बैरिसु ॥

[जहाँ पर बैरी का निवास हो, पण्डित आदमी को चाहिए कि वहाँ निवास न करे। क्योंकि बैरी के साथ एक या दो रात्रि रहनेवाला भी दुःख ही भोगता है।]

बैरी, वैर-भाव से युक्त आदमी। निवसति, प्रतिष्ठित रहता है। न वसे तत्थ पण्डितो, जहाँ वह बैरी आदमी प्रतिष्ठित होकर रहता है, पाण्डित्य से युक्त पण्डित-जन को चाहिये कि वहाँ न रहे। किस कारण से ? एकरत्तं द्विरत्तं वा दुक्खं वसति बैरिसु, बैरियों के बीच में (केवल) एक या दो दिन रहता हुआ भी दुःख ही भोगता है।

बोधिसत्त्व इस प्रकार हर्ष-ध्वनि करके दान-आदि पुण्य-कर्म कर यथाकर्म (परलोक) सिधारे। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बैठाया कि उस समय मैं ही वाराणसी का सेठ था।

१०४. मित्रविन्द जातक

“चतुग्भि अट्ठ ज्जगया” आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय, एक दुर्भिक्षी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले आई मित्रविन्द जातक की कहानी के सदृश ही यह कहानी भी जाननी चाहिए।

ख. अतीत कथा

लेकिन यह जातक कथा है काश्यप-सम्बुद्ध के समय की। उस समय एक नरक-निवासी ने, जिसके सिर पर घूमनेवाला चक्र^१ था और जो नरक में जल रहा था, बोधिसत्त्व से पूछा—“भन्ते ! मैंने क्या पापकर्म किया है ?” बोधिसत्त्व ने “तूने अमुक और अमुक पापकर्म किया है” कह यह गाथा कही—

चतुग्भि अट्ठज्झग्गमा अट्ठाहिंति च सोळस
सोळसाहिं च बत्तिं स अत्रिच्छं चक्कमासदो ;
इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके ॥

(चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमनेवाला चक्र प्राप्त हुआ। क्योंकि इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर चक्र भ्रमता है।)

चतुग्भि अट्ठज्झग्गमा, समुद्र में चार पगियों (विमान-प्रेतनियों) को पाकर, उनसे सन्तुष्ट न हो, लोभ के कारण और आठ को प्राप्त किया। शेष दो पदों का अर्थ भी इसी प्रकार है। अत्रिच्छं चक्कमासदो इस प्रकार स्वकीय लाभ से असन्तुष्ट इस इस चीज की प्राप्ति होने पर, और और चीज की इच्छा करते हुए, अब इस उर-चक्र को प्राप्त हुए। उसके इस प्रकार इच्छाहतस्स पोसस्स से प्रताड़ित तरे चक्कं भमति मत्थके, पत्थर तथा लोहे के दो प्रकार के चक्रों में से तेज धार वाला लोहे का चक्र, फिर फिर उसके माथे पग गिग्ने से ऐसा कहा गया।

यह कहकर (बोधिसत्त्व) स्वयं देवलोक को गये। वह नरकगामी प्राणी भी अपने पापकर्मों के क्षीण होने पर कर्मानुसार अवस्था को प्राप्त हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय मित्र-विन्दक (अब का) दुर्भाषी भिक्षु था, और देवपुत्र तो मैं ही था।

^१ उरचक्र—पालि कोष में (रीजडैविइस् ने) उर-चक्र का अर्थ छाती पर रखता लोहे का चक्र किया है, जो यथार्थ नहीं। ‘उर’ शब्द बैदिक हैं, जिसका अर्थ है गतिमान।

१०५. दुब्बलकट्ठ जातक

“बहुस्पेतं वने कट्ठ” आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भयभीत भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, प्रब्रजित हो मरने से भयभीत रहता था । रात या दिन में हवा के चलने पर, सूखी-डण्ठलों के गिरने पर तथा पक्षियों या चौपायों के कुछ शब्द करने पर, मरण-भय से डरकर वह जोर से चिल्लाता हुआ भागता । ‘मुझे भी मरना होगा’, इसका उसे ध्यान तक न था । यदि वह यह जानता कि “मैं मरूँगा” तो उसे मरने से डर न लगता । वह मरण-स्मृति योग-विधि (=कर्मस्थान) का अनम्यासी होने से ही डरता था । उसकी मृत्युभय से भयभीत होने की बात भिक्षु-संघ को पता लग गई । सो एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई—आयुष्मानो ! अमुक मरण-भीरु भिक्षु मृत्यु से डरता है । भिक्षु को तो चाहिये कि वह ‘मुझे अवश्य ही मरना है’ इस मरण-स्मृति कर्मस्थान की भावना करे । शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “यह बातचीत” कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा—क्या तुझे सचमुच मरने से डर लगता है ?

“भन्ते ! सचमुच ।”

“भिक्षुओ ! इस भिक्षु से असन्तुष्ट मत होओ । यह भिक्षु केवल अब ही मरने से भयभीत नहीं है; पहले भी भय भीत ही रहा है” कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व हिमालय में वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए । उस समय बाराणसी-नरेश ने हस्ति-शिक्षकों

को अपना हाथी दिया था ताकि वे उसे निर्भय बनावें। उन्होंने भाले ले, हाथी को पक्की तरह से खूँटे से बाँध, उसे घेर, उसका डर निकालना शुरू किया। इस पीड़ा को न सह सकने के कारण हाथी ने खूँटा तुड़ा, मनुष्यों को भगा, स्वयं हिमालय में प्रवेश किया। आदमी उसको न पकड़ सकने के कारण वापिस लौट आये। हाथी को वहाँ मरण-भय लग गया। वायु के शब्द को सुनकर, काँपता हुआ, मरने के भय से भयभीत अपनी सूँड़ को धुनता हुआ जोर से भागता। उसको ऐसा लगता था जैसे खूँटे पर बाँध कर साधा जा रहा हो। शरीर-सुख वा मानसिक सुख एक भी नहीं मिलता था। काँपता हुआ भटकता था। वृक्ष-देवता ने यह देखकर वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर यह गाथा कही—

बहुम्पेतं वने कट्ठं वातो भञ्जति दुब्बलं,
तस्स चे भायसि नाग! किसो नून भविस्ससि॥

[जंगल में हवा से बहुत सारी दुर्बल लकड़ी टूटकर गिरती है। हे नाग! यदि तू इससे डरेगा, तो तू निश्चय से कमजोर हो जायगा।]

एतं दुब्बलं कट्ठं, पुरवा आदि वातो भञ्जति, यह इस जंगल में बहुत सुलभ जहाँ तहाँ है, यदि तू उससे भायसि, तो ऐसा होने पर तो नित्य ही भयभीत रहने के कारण रक्त-मांस क्षीण होकर किसो नून भविस्ससि; इस वन में तेरे भयभीत होने की बात है ही नहीं, इसलिये अब से मत डर।

इस प्रकार देवता ने उसे उपदेश दिया। वह भी उस समय से लेकर निर्भीत हो गया। शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला, चारों आर्य- (सत्त्वों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय हाथी तो यह भिक्षु था, वृक्ष-देवता मैं ही था।

१०६. उदञ्चनि जातक

“सुखं वत मं जीवन्तं” आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय ‘प्रौढ़ कुमारी के साथ आसक्ति’ के सम्बन्ध में कही ।

क. वर्तमान कथा

मूल कथा (=वस्तु) तेरहवें परिच्छेद की चूल नारद काश्यप^१ जातक में आयेगी । उस भिक्षु से शास्ता ने पूछा—“भिक्षु ! क्या तू सचमुच आसक्त है?”

“भगवान् ! सचमच ।”

“तुझे किसमें आसक्ति हुई ?”

“एक प्रौढ़ कुमारी में ।”

“भिक्षु ! यह तेरे लिये अनर्थकारी है । पहले जन्म में भी तू इसी के कारण सदाचार भ्रष्ट हो काँपता हुआ भटकता था । (फिर) पंडितों के कारण सुख को प्राप्त हुआ ” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

“पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय” आदि पूर्व समय की कथा भी चूल नारद काश्यप जातक में ही आयेगी । उस समय बोधिसत्त्व शाम को फल फूल ले आकर पर्ण-शाला में प्रवेश करके विचरने लगे और अपने पुत्र चूल तापस को कहा—

“तात ! और दिन तो तुम लकड़ी लाते थे, पेय तथा खाद्य-सामग्री लाते थे, आग जलाते थे । आज क्या कारण है कि कोई भी काम न करके बुरा मुंह बनाये चिन्तित पड़े हो ?”

^१ चूलनारदजातक (४४७)

“तात ! आप जब फल फूल लेने चले गये थे, तब एक स्त्री आई जो मुझे लुभा कर ले जाना चाहती थी। लेकिन मैं ‘आपसे आज्ञा लेकर जाऊँगा’ सोच नहीं गया। उसको अमुक स्थान में बिठा कर आया हूँ। तात ! अब मैं जाता हूँ।”

बोधिसत्त्व ने ‘यह रोका नहीं जा सकता’ सोच “तो तात ! जाओ ! यह तुम्हें ले जाकर जब मत्स्य-मांस आदि खाने की इच्छा करेगी और घी, निमक तथा तेल आदि माँगेगी और कहेंगी कि ‘यह ला’, ‘यह ला’, तब तू मुझे याद करना और भागकर यहीं आ जाना” कह चलता किया। वह उसके साथ बस्ती में गया। उसे अपने वश में कर वह ‘मांस ला’, ‘मछली ला’ जो जो चाहती, माँगाती। तब उसने ‘यह तो मुझे अपने गुलाम की तरह नौकर की तरह पीड़ा देती है’ सोच भागकर पिता के पास आ, उन्हें प्रणाम कर, खड़े हो खड़े यह गाथा कही—

सुखं वत मं जीवन्तं पचमाना उदञ्चनी ।

चोरी जायप्पवादेन तेलं लोणञ्च याचति ॥

[जल निकालने की मटकी सदृश “भार्या” रूप में यह चौरिणी, सुख पूर्वक रहते हुए मुझे मीठे शब्दों से लुभाकर नून तेल माँग माँगकर जलाती है।]

सुखं वत मं जीवन्तं, तात ! तुम्हारे पास सुखपूर्वक रहते हुए; पचमाना, संतप्त करती हुई, पीड़ा देती हुई, जो जो खाना चाहती वह पकाती; उदक (= पानी) खींचा जाता है इससे, अतः उदञ्चनी। चाटी या कुएँ से पानी निकालने की घटी। उसे उदञ्चनी इसलिये कहा क्योंकि वह घटी (= घटिका) के पानी निकालने की तरह जो जो चाहती सो अवश्य निकालती। चोरी जायप्पवादेन; “नाम से तो भार्या” लेकिन एक चौरिणी मीठे मीठे शब्दों से मुझे लुभा वहाँ ले जाकर निमक तेल तथा और भी जो जो चाहती वह सब माँगती; जैसे दास या नौकर से वैसे माँगवाती। (यह) कह उसकी निन्दा की।

बोधिसत्त्व ने उसे आश्वासन देकर “तात ! जो हुआ सो हुआ। आ अब तू मैत्री भावना कर। करुणा भावना कर” कह चोरों ब्रह्मविहारों को कहा। योगक्रिया कही। वह थोड़े ही समय में अभिञ्जा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर

ब्रह्मविहारों की भावना कर, अपने पिता सहित ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, आर्य-सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ़ कुमारी ही आजकल की प्रौढ़कुमारी तथा चूलतापस ही आसक्त भिक्षु था। पिता तो मैं था ही।

१०७. सालिस्त जातक

“साधु खो सिप्पकं नाम” आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक हंस-मार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र सालिस्तक शिल्प में पारङ्गत था। सालिस्तक शिल्प कहते हैं ठीकरी चलाने के हुनर को। एक दिन उसने धर्मोपदेश सुन, बुद्ध (-शासन) में श्रद्धायुक्त हो प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त की। लेकिन न उसे शिक्षा की इच्छा थी न उसके अनुसार आचरण करने की। एक दिन वह एक छोटे भिक्षु को साथ ले अचिरवती (नदी) पर गया। वहाँ स्नान करके खड़ा था, कि, उसी समय आकाश में दो सफेद हंसों को उड़ते देखा। उसने छोटे भिक्षु से कहा—

“इनमें जो पिछला हंस है, उसकी आँख को कंकर से बींधकर हंस को अपने चैरों में गिराता हूँ।”

“कैसे गिरायेगा? मार ही न सकेगा।”

“इधर की आँख रहे। मैं इसकी उधर की आँख में मारूँगा।”

“असम्भव बात कहते हो?”

“तो देख” कह उसने एक तीखी ठीकरी ले उँगली से तान उस हंस के पीछे फेंकी। ठीकरी ने ‘हूँ’ करके आवाज की। हंस “खतरा होगा” सोच, रुककर शब्द

सुनने लगा। उसने उसी समय एक गोल कंकर ले, रुककर देखते हुए हंस के दूसरी ओर की आँख में मारा। कंकर दूसरी ओर की आँख बौंधता गया। हंस चिल्लाता हुआ पैरों में आकर गिरा।

भिक्षुओं ने इधर उधर से आकर उसकी निन्दा की कि “तू ने नामुनासिब किया” और शास्ता के पास ले जाकर कह दिया कि ‘इसने यह यह किया।’ शास्ता ने उसकी निन्दा करते हुए “भिक्षुओ! न केवल अभी यह इस दुनर में हुशियार है, बल्कि पहले भी हुशियाग ही था” कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके आमात्य (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा का तत्कालीन पुरोहित बड़ा बुल-क्कड़ था—बोलना आरम्भ करता तो किसी दूसरे को बोलने का मौका ही न मिलता। राजा सोचने लगा—“इसका मुँह बन्द करनेवाला कोई कब मिलेगा?” और तब से ऐसे आदमी की खोज में रहने लगा।

उन दिनों बागणसी में एक कुबड़ा कंकर फेंकने के दुनर में पारंगत था। गाँव के लड़के बाले उसे ठेले (रथक) पर चढ़ा खींच कर, बाराणसी नगर के दर-वाजे पर शाखाओं से युक्त एक महान्ध्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे ले आते, और उसे घेर कर तथा कौड़ी आदि दे कहते “हाथी की शकल बनाओ। घोड़े की शकल बनाओ।” वह कंकर चला चलाकर न्यग्रोध के पत्तों में भिन्न भिन्न तरह की शकलें बनाता। सभी पत्तों में छेद हो गये।

बाराणसी नरेश सैर को जाते समय उस जगह आये। भगा दिये जाने के भय से लड़के बाले भाग गये। कुबड़ा वहीं पड़ा रहा। राजा ने न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रथ पर बैठे ही बैठे, छिद्रित पत्तों के कारण धूप-छनी छाया देख, सभी पत्तों को छिद्रित पा पूछा—“ऐसा किसने किया?”

“देव! कुबड़े ने।”

‘यह ब्राह्मण का मुँह बन्द कर सकेगा’ सोच राजा ने पूछा—“कुबड़ा कहाँ है?”

खोज करनेवालों ने कुबड़े को वृक्ष की जड़ में पड़े देख कहा “देव! यहाँ है।”

राजा ने उसे बुलवा, लोगों को दूर हटावा, उस से पूछा—“हमारे यहाँ एक बुलक्कड़ ब्राह्मण है, क्या तू उसे निशब्द कर सकेगा ?”

“देव ! यदि नलकी भर बकरी के मींगन मिलें तो कर सकूंगा ।”

राजा कुबड़े को घर ले गया, और कनात के भीतर बैठाया । (फिर) कनात में एक छेद कर ब्राह्मण के बैठने का आसन उस छेद की ठीक सीध में बिछवाया । नलकी भर बकरी की सूखी मींगन कुबड़े के पास रखवा दीं । जिस समय ब्राह्मण हजरी में आया, उसे उस आसन पर बिठावा, राजा ने बातचीत चलाई । किसी दूसरे को बोलने का अवसर न दे, ब्राह्मण ने राजा से बोलना शुरू किया । कनात के छेद में से मक्खी डालने की तरह वह कुबड़ा एक एक मींगन ब्राह्मण के तालु के अन्दर गिराता रहा । नलिका में तेल डालने की तरह ब्राह्मण जो जो मींगनें आतीं उन्हें निगल जाता । सब खतम हो गईं । उसके पेट में गईं नलकी भर बकरी की मींगनें आधे आळ्हक भर थीं । राजा ने उन्हें खतम हुआ जान कहा—“आचार्य्य ! अति बुलक्कड़ होने के कारण आपको नलकी भर बकरी की मींगनें निगल जाने पर भी पता नहीं लगा । अब इससे अधिक हजम न कर सकोगे । जाओ कंगनी का पानी पीकर इन्हें निकाल अपने को स्वस्थ करो ।”

उस दिन से मानो ब्राह्मण का मुख सिल गया । बातचीत करने वाले के साथ भी बातचीत न करता । ‘इसने मुझे कर्ण-सुख दिया है’ सोच राजा ने कुबड़े को चारों दिशा में लाख की आमदनी के चार गाँव दिये । बोधिसत्त्व ने राजा के पास जा ‘देव ! बुद्धिमान् आदमी को हुनर सीखना चाहिए । कुबड़े ने केवल कंकर फेंकने (की कला से) भी सम्पत्ति पैदा कर ली’ कह, यह गाथा कही—

साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिसं,
पस्स खञ्जप्पहारेन लद्धा गामा चतुद्दिशा ॥

[जैसा कैसा भी हो, हुनर सीखना अच्छा है । देखो ! कुबड़े ने (मींगनों के) फेंकने (के हुनर) से ही चारों दिशाओं में गाँव पा लिये ।]

पस्स खज्जप्पहारेन महाराज ! देखो इस कुबड़े ने बकरी की मींगन के निशाने लगाने मात्र से ही चारों दिशाओं में चारों गाँव पा लिये । अन्य शिल्पों की महिमा का तो क्या ही कहना—इस प्रकार हुनर सीखने की महिमा का वर्णन किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया । उस समय का कुबड़ा यह भिक्षु है । राजा आनन्द है । और पंडित मन्त्री तो मैं ही था ।

१०८. बाहिय जातक

“सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि . . .” को शास्ता ने वेशाली के आश्रित महावन की कूटागार शाला में रहते समय एक लिच्छवि के सम्बन्ध में कहा ।

क. वर्तमान कथा

वह लिच्छवि राजा श्रद्धाप्रसन्न था । उसने भिक्षुसंघ सहित बुद्ध को अपने घर निमन्त्रित कर महादान दिया ।

उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी थी और उसको सलीके से रहने का शऊर नहीं था । शास्ता भोजनोपरान्त दानानुमोदन कर, विहार जा भिक्षुओं को उपदेश दे, गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए । धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—“आयु-ष्मानो ! वह लिच्छवि-नरेश तो इतना सुन्दर है, लेकिन उसकी भार्य्या मोटी, सूजी हुई सी है तथा उसे सलीके से रहने का शऊर नहीं । राजा उसके साथ कैसे रहता है ?” शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“यह बातचीत” कहने पर शास्ता ने “भिक्षुओ ! न केवल अभी, किन्तु पहले भी यह मोटे शरीरवाली स्त्री के साथ ही रहता था ” कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

“पूर्व समय में बाराणसी में जब ब्रह्मादत्त राज्य करता था, उस समय बोधिसत्त्व उसके आमात्य थे। मुफस्सल की एक स्थूल शरीर स्त्री जिसे सलीका नहीं था, मजदूरी करती थी। राजाङ्गन से थोड़ी दूर पर जाते हुए उसे शौच की हाजत हुई। जो वस्त्र पहने हुए थी, उसी से शरीर को ढक कर बैठ गई और हाजत रफा कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। झरोखे से राजाङ्गण देखते हुए बाराणसी राजा की उस पर नजर पड़ी। वह सोचने लगा—“इस प्रकार के (खुले) आङ्गन में बिना लज्जा को छोड़े वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिरकर यह जल्दी से खड़ी हो गई। यह निरोग होगी। इसकीकोख अति परिशुद्ध होगी। परिशुद्ध-कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र भी अति पवित्र तथा पुण्यवान् होगा। मुझे चाहिए कि मैं इसे अपनी पटरानी बनाऊँ।”

यह मालूम करके कि वह कँवारी है, राजा ने उसे मँगवाकर अपनी पटरानी बनाया। वह राजा को प्रिय थी, मन भाती थी। थोड़ी ही देर में उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका वह पुत्र चक्रवर्ती राजा बना।

बोधिसत्त्व ने उसका यह (पुत्र-) धन देख, मौका मिलने पर राजा से कहा—“देव ! सीखने योग्य शिल्प क्यों न सीखा जाय ? इस पुण्यवान् ने, बिना लज्जा त्यागे, वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिर कर तुम्हें प्रसन्न करके इस प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त की।” इस प्रकार सीखने योग्य बात को सीखने का महत्व बताते हुए यह गाथा कही—

सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि सन्ति सच्छन्दिनो जना,
बाहियापि सुहन्नेन राजानमभिराधयि ॥

[सीखने योग्य बातों को सीखे। कदरदान लोग हैं। उस मुफस्सल की स्त्री ने राजा को ढंग से शौच फिरने (मात्र) से प्रसन्न कर लिया।]

सन्ति सच्छन्दिनो जना, शिल्प-विशेषों में रुचि रखनेवाले लोग हैं। बाहिया—बाहर मुफस्सल में पैदा हुई तथा पली स्त्री। सुहन्नेन, बिना लज्जा छोड़े वस्त्र से ढके ढके शौच फिरने को ‘सुहन्न’ कहते हैं, सो वैसे शौच फिरने से। राजानमभिराधयि देव को प्रसन्न करके, यह सम्पत्ति प्राप्त की।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने सीखनेयोग शिल्पों (के सीखने) का महात्म्य कहा ।
शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय के पति-पत्नी
ही अब के पति-पत्नी । पण्डित आमात्य तो मैं ही था ।

१०९. कुण्डकपूव जातक

“यथश्चो पुरिसो होति” यह शास्ता ने श्रावस्ती में रहते समय, एक महा दरिद्र
(मनुष्य) के सम्बन्ध में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार बुद्ध तथा उसके संघ को दान देता, कभी
तीन चार परिवार एक में मिलकर, कभी एक गण, कभी एक गली के लोग, कभी
सारे नगर के लोग मिलकर । उस समय एक गली के लोग मिलकर दान दे रहे थे ।
मनुष्य बुद्ध तथा संघ को यवागु परोसकर कहने लगे “खाजा लाओ ।”

उस गली में रहने वाले, दूसरों की मजदूरी करके जीनेवाले, एक दरिद्र मनुष्य
ने सोचा—“मैं यवागु नहीं दे सकता । खाजा दूंगा ।” (यह सोच) उसने चावल
की बहुत बारीक कनखी ले, छाज से फटक कर, पानी से भिगो, आक के पत्तों में रख,
आग में पकाया । फिर ‘यह बुद्ध को दूंगा’ सोच उसे ले जाकर शास्ता के सामने
खड़ा हुआ । (लोगों ने) ‘खाजा लाओ’ पहली बार कहा ही था कि उसने सबसे
पहले जाकर शास्ता के सामने वह पूड़ा रख दिया । शास्ता ने औरों के दिये हुए
खाजों को अस्वीकार कर उसी पूड़े-खाजे को ग्रहण किया । उसी समय सारे नगर
में एक शोर मच गया कि सम्यक् सम्बुद्ध ने उस महादरिद्र का खाना बिना घृणा
के खाया ।

राजा, राजा के महामन्त्री आदि, और तो और द्वारपाल तक आकर शास्ता को
प्रणाम कर उस महादरिद्र से कहने लगे—“भो ! सौ लेकर, दो सौ लेकर वा

पाँच सौ लेकर हमारा भी हिस्सा रखो ।” उसने ‘शास्ता से पूछकर जानूंगा’ सोच शास्ता के पास जाकर वह बात कही । शास्ता ने उत्तर दिया “धन लेकर या बिना लिये जैसे भी हो सब प्राणियों को हिस्सेदार बनाओ ।” उसने धन लेना आरम्भ किया । मनुष्यों ने दुगुना, चौगुना, आठ गुना आदि दे देकर नौ करोड़ सोना दिया । शास्ता दानानुमोदन कर विहार चले गये । फिर भिक्षुओं के अपना अपना कर्तव्य करने पर शास्ता ने उन्हें उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया ।

शाम को राजा ने उस महादरिद्री को बुलवाया और श्रेष्ठी बना उसका सत्कार किया । धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—“आयुष्मानो ! महान् दरिद्री के दिये पूरे, शास्ता ने बिना घृणा प्रगट किये ऐसे खाये जैसे अमृत । महान् दरिद्री भी बहुत सा धन और मेठ का पद प्राप्त कर बहुत सम्पत्तिशाली हो गया ।” शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ ! न केवल अभी मैंने बिना घृणा दिखाये उसके पूरे खाये बल्कि पहले जब मैं वृक्ष-देवता था तब भी खाये थे” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य के समय बोधिसत्त्व अरण्डी के एक वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए । उस गाँवड़े के मनुष्य तब देवता-विश्वासी^१ थे । एक त्योहार आने पर उन्होंने अपने अपने वृक्ष-देवताओं को बलि दी । एक दरिद्री मनुष्य ने लोगों को वृक्ष-देवताओं की सेवा करते देख स्वयं एक अरण्ड-वृक्ष की सेवा की । मनुष्य अपने अपने देवताओं के लिये नाना प्रकार के माला, गन्ध, लेपन आदि और खाद्य-भोज्य लेकर गये । लेकिन वह ले गया चूरे के पूरे और कड़छी में पानी । अरण्ड वृक्ष के समीप पहुँचा तो सोचने लगा—“देवता दिव्य-भोजन करते हैं । मेरे देवता यह चूरे का पूरा नहीं खायेंगे । इसे व्यर्थ क्यों नष्ट करूँ ? मैं ही इसे खा लूंगा ।” यह सोच वहीं से लौट पड़ा ।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर कहा—“भो ! यदि तुम धनी

^१ देवता-मंगलिका, जिनका विश्वास हो कि देवताओं की पूजा करने से कल्याण होगा ।

होते तो मुझे मधुर खाजा देते, लेकिन तुम दरिद्र हो। मैं तुम्हारा पूजा न खाकर और क्या खाऊँगा? मेरे हिस्से को नष्ट न करो।”

इतना कह यह गाथा कही—

यथश्चो पुरिसो होति तथश्चा तस्स देवता,

आहरेतं कणं पूवं मा मे भागं विनासय ॥

[जैसा आदमी, वैसा देवता। इस चूरे के पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट मत कर।]

यथश्चो, जैसा भोजन तथश्चा, उस आदमी का देवता भी वैसे ही भोजन का खानेवाला होता है। आहरेतं कणं पूवं—इस चूरे के पके पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट न कर।

उसने वापिस लौट बोधिसत्त्व को देख बलि दी। बोधिसत्त्व ने उसमें से सार ग्रहणकर पूछा—“भले आदमी! तू किसलिये मेरी सेवा करता है?”

“स्वामी! मैं दरिद्र हूँ! चाहता हूँ कि दरिद्रता से मुक्त हो जाऊँ। इसीलिये सेवा करता हूँ।”

“भले आदमी! चिन्ता मत कर। तूने जो सेवा की है वह कृतज्ञ की, कृत-उपकार को न भूलनेवाले की की है। इस अरण्ड के चारों ओर खजाने से भरे घड़ गर्दन से गर्दन मिलाकर रखे हैं। तू राजाको कह, गाड़ियों में धन लदवाकर राजा-ज्जण में डलवा। राजा प्रसन्न होकर तुझे श्रेष्ठी का पद दे देगा।”

यह कहकर बोधिसत्त्व अन्तर्धान हो गये। उसने वैसा ही किया। राजा ने उसे सेठ के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार वह बोधिसत्त्व (की कृपा) से महासम्पत्तिशाली हो स्वकर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाय। उस समय जो दरिद्र था, वही इस समय दरिद्र। अरण्ड-वृक्ष का देवता तो मैं ही था।

११०. सम्बसंहारक पञ्चो जातक

“सम्बसंहारको नत्थि”—यह सम्बसंहारकपञ्च (जातक) सारी की सारी उम्मग जातक^१ में प्रगट होगी ।

^१ महाउम्मग जातक (५४६) ।

पहला परिच्छेद

१२. हंसी वर्ग

१११. गद्रभ पञ्हो जातक

“हंसी त्वं मञ्जसि” यह गद्रभपञ्ह (जातक) भी उम्मग्ग जातक^१ में ही आयेगी।

११२. अमरादेवी पञ्ह जातक

“येन सत्तुविलेङ्ग च” यह अमरादेवी पञ्ह (जातक) भी वहीं (उम्मग्ग जातक में) आयेगी।

११३. सिगाल जातक

“सद्दहासि सिगालस्स...” यह गाथा शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

^१उम्मग्ग जातक (५४६)।

क. वर्तमान कथा

उस समय धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु बातचीत कर रहे थे—“आयुष्मानो ! देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर गयाशीर्ष चला गया । वहाँ जाकर उसने उन भिक्षुओं को कहा कि श्रमण गौतम, जो करता है वह धर्म नहीं है बल्कि जो मैं करता हूँ वह धर्म है । इस प्रकार उन्हें अपने मत का बना, यथास्थान झूठा आचरण कर संघ में फूट डाल एक सीमा^१ में दो उपोसथ^२ (नृह) बना दिए ।” यूँ वे देवदत्त के दोष कह रहे थे । भगवान् ने आकर पूछा— “यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“यह बातचीत ।”

“भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अभी झूठ बोलनेवाला नहीं । यह पूर्व-जन्म में भी झठ बोलनेवाला ही रहा है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व स्मशान-वन में एक वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए । उस समय बाराणसी में नक्षत्र की घोषणा हुई । मनुष्यों ने यक्षों को बलि देने की इच्छा से चौराहों और दूसरे रास्तों पर मत्स्य-मांस आदि बिखेर कर खप्परोँ में शराब रक्खी ।

एक गीदड़ आधी रात के समय चुपके से नगर में दाखिल हुआ । मत्स्य-मांस और शराब पीकर व पुन्नाग-वृक्षों के बीच जाकर सो रहा । सोते सोते सूर्य निकल आया । आँख खोलने पर प्रकाश हुआ देख उसने सोचा—“अब मैं नगर से निकल नहीं सकता ।” इसलिए वह रास्ते के पास जाकर छिपकर लेट रहा । दूसरे मनुष्यों को आते जाते देख वह कुछ नहीं बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को मुँह धोने के लिये जाते देख उसने सोचा—“ब्राह्मण धन के लोभी होते हैं । मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर में छिपा, गोद में ले जाकर नगर से बाहर कर दे ।” उसने मनुष्य भाषा में कहा—“ब्राह्मण ।”

^१ सीमित-प्रवेश ।

^२ जहाँ भिक्षु एकत्र हो सांघिक-कृत्य करते हैं ।

ब्राह्मण ने लौटकर कहा—“मुझे कौन बुला रहा है?”

“ब्राह्मण ! मैं ।”

“किस कारण ?”

“ब्राह्मण, मेरे पास दो सौ कार्षापण हैं। यदि मुझे गोद में ले चादर से ढक जिसमें कोई न देखे, इस प्रकार नगर से निकल सके, तो मैं तुझे वह कार्षापण दे दूँगा ।”

धन के लोभ से ब्राह्मण ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर, उस गीदड़ को वैसे ले नगर से निकल थोड़ा आगे गया। गीदड़ ने पूछा—“ब्राह्मण यह कौन सी जगह है ?”

“अमुक जगह ।”

“और भी थोड़ा आगे तक ले चल ।”

इस प्रकार बार बार कहकर उसे महाश्मशान तक ले जा, वहाँ पहुँचकर कहा—“मुझे यहाँ उतार दे ।” ब्राह्मण ने उसे उतार दिया ।

“अच्छा तो ब्राह्मण चादर फैला ।”

ब्राह्मण ने धन-लोभ से चादर फैला दी ।

‘तो इस वृक्ष की जड़ में खोद’ कह गीदड़ ब्राह्मण को जमीन खोदने में लगा, उसकी चादर पर चढ़ उसके चारों कोनों तथा बीच में—पाँच जगहों पर पाखाना कर, उसे लबेड़ श्मशान-वन में दाखिल हो गया ।

बोधिसत्त्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े हो यह गाथा कही—

सद्दहासि सिगालस मुराषीतस्स ब्राह्मण,
सिप्पिकानं सतं नत्थि कुतो कंससता बुबे ॥

[ब्राह्मण ! तू शराब पिए हुए गीदड़ का विश्वास करता है। उसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं, दो सौ कार्षापण तो कहाँ होंगे।]

सद्दहासि या सद्दहेसि । इसका मतलब है कि विश्वास करता है। सिप्पिक नं सतं नत्थि—इसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं हैं। कुतो कंससता बुबे दो सौ कार्षापण तो कहाँ होंगे।

बोधिसत्त्व यह गाथा कह 'हे ब्राह्मण ! जा अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर' कह अन्तर्धान हो गए ।

ब्राह्मण बैसा कर 'हाय ठगा गया' सोचता हुआ चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना लां, जातक का मेल बैठाया ।

उस समय गीदड़ देवदत्त था । हाँ, वृक्ष-देवता मैं ही था ।

११४. मितचिन्ती जातक

“बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च” यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो वृद्ध स्थविरों के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उन्होंने एक जनपद के जंगल में वर्षा-काल बिताकर सोचा कि अब शास्ता के दर्शन के लिए जायेंगे, रास्ते के लिये आवश्यक सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास बिता दिया । फिर दुबारा सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास और बिता दिया । इसी प्रकार अपने आलस्य और निवास-स्थान से मोह होने के कारण तीसरा महीना भी बिता दिया । तीन महीने गुज़ारकर जेतवन पहुँच, अपने योग्य-स्थान पर पाँच चीवर रख बुद्ध के दर्शनों को गए । भिक्षुओं ने पूछा—“आयुष्मानो ! आप बुद्ध की सेवा में बहुत दिन के बाद उपस्थित हुए । इतनी देर क्यों हुई ?” उन्होंने कारण बताया । उनका वह आलस्य तथा सुस्ती करने का स्वभाव भिक्षुओं पर प्रगट हो गया । भिक्षुओं ने धर्म सभा में उन स्थविरों के आलसी स्वभाव की चर्चा चलाई । शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात कर रहे थे ?” “यह बातचीत” कहने पर उन स्थविरों को बुलवाकर पूछा—

“भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच आलसी हो ?”

“भन्ते ! सचमुच ।”

“मिथुओ ! न केवल अभी आलसी हो, पूर्वजन्म में भी आलसी ही थे और निवास-स्थान के प्रति मोह था” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बाराणसी नदी में तीन मच्छ थे। उनके नाम थे बहुचिन्ती, अल्प-चिन्ती और मित-चिन्ती। वे जंगल (की नदी) से बस्ती के पास आ गए। मितचिन्ती ने बाकी दोनों को कहा—
“यह बस्ती है। यहाँ सशंकित रहने की तथा भयभीत रहने की जरूरत है। मछुवे लोग नाना प्रकार के मछली पकड़ने के जाल आदि फेंककर मछलियाँ पकड़ते हैं। हम जंगल को ही चलें।”

बाकी दोनों जनों ने आलस्य के कारण और लोभ के कारण ‘आज चलें, कल चलें’ कहते हुए तीन महीने गुजार दिए। मछुओं ने नदी में जाल फेंका। बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती खाने की चीज को ग्रहण करते हुए आगे आगे जाते थे। वे अपनी मूर्खता के कारण जाल की गन्ध का ख्याल न कर जाल में ही जा फँसे। मितचिन्ती ने पीछे आते हुए जाल की गन्ध सूँघकर समझ लिया कि वे दोनों जाल में जा फँसे। उसने सोचा—इन दोनों आलसी तथा मूर्खों को जीवन - दान दूं। यह सोच वह बाहर की तरफ से जाल में घुस जाल फाड़ कर निकलते हुए की तरह पानी को अलौड़ते हुए जाल के आगे गिरा। फिर पिछली तरफ से फाड़कर निकलते हुए की तरह पानी को अलौड़ते हुए पिछली तरफ गिरा। मछुओं ने यह समझकर कि मच्छ जाल फाड़कर निकल गए जाल के सिरों को खोल फेंक दिया। वे दोनों मच्छ जाल से छूटकर पानी में जा पड़े। इस प्रकार मितचिन्ती ने उनके प्राण बचाए।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च उभो जाले अबज्झरे

मितचिन्ती अमोचेसि उभो तत्थ समागता ॥

[बहुचिन्ती और अप्पचिन्ती दोनों जाल में फँस गए। मितचिन्ती ने दोनों को छुड़ा दिया। वे दोनों उसके साथ आ गए।]

बहुचिन्ती, बहुत चिन्तन करनेवाला होने से अथवा बहुत संकल्प-विकल्प वाला होने से बहुचिन्ती नाम हुआ। बाकी दोनों भी इसी प्रकार हैं। उभो तत्थ

समागता, मितचिन्ती के कारण प्राण बचाकर वे दोनों फिर पानी में मितचिन्ती के साथ आ गए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाय। (आर्य-) सत्त्यों की समाप्ति पर स्थविर भिक्षु सोतापन्न हुए।

उस समय के बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती यह दोनों थे, मितचिन्ती तो मैं ही था।

११५. अनुसासिक जातक

“यायञ्जमनुसासति . . .” यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उपदेश देनेवाली भिक्षुणी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह श्रावस्ती-निवासिनी एक कुल में उत्पन्न हुई थी। जिस समय से प्रव्रजित होकर उपसम्पन्न हुई, उस समय से लेकर वह श्रमण-धर्म में न लग चीजों की लोभी होने से नगर के एक ऐसे हिस्से में जहाँ दूसरी भिक्षुणियाँ नहीं जाती थीं, भिक्षा माँगने जाती। मनुष्य उसे बढ़िया भोजन देते। उसने रस-तृष्णा के कारण सोचा, यदि दूसरी भिक्षुणियाँ भी उसी ओर भिक्षा माँगने जाएँगी, तो मेरी प्राप्ति में फरक पड़ेगा। इसलिए मुझे ऐसा करना चाहिए, जिसमें दूसरी भिक्षुणियाँ उधर भिक्षा माँगने न जाएँ।

वह भिक्षुणियों के निवास-स्थान पर गई और बोली—“बहनो! अमुक जगह पर चण्ड-हाथी है, चण्ड-घोड़ा है, चण्ड-कुत्ता है। वह खतरनाक जगह है। वहाँ पिण्ड-पात के लिए मत जाएँ।” उसकी बात सुन एक भिक्षुणी ने भी उधर गर्दन निकालकर नहीं देखा।

उसके एक दिन उधर भिक्षा माँगने के समय, जब वह जल्दी से एक घर में घुसने जा रही थी एक मरखने मेढ़े ने उसे टक्कर मारकर उसकी जाँघ की हड्डी तोड़ दी। मनुष्यों ने दौड़कर उस दो टुकड़े हुए जाँघ की हड्डी को एक में बाँधा और उसे चारपाई पर लिटाकर भिक्षुणी-आश्रम लाए। 'यह दूसरी भिक्षुणियों को उपदेश देती थी, स्वयं उधर जाकर जाँघ की हड्डी तुड़ाकर आई है' कह भिक्षुणियों ने हँसी उड़ाई। यह बात शीघ्र ही भिक्षु-संघ तक पहुँच गई।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु उसकी निन्दा कर रहे थे—आयुष्मानों ! दूसरों को उपदेश देनेवाली भिक्षुणी स्वयं उधर जाकर मरखने मेढ़े से जाँघ की हड्डी तुड़ा लाई है।

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?' 'यह बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नहीं, पहले भी यह दूसरों को तो उपदेश देती रही है, लेकिन स्वयं तदनुसार आचरण न करने के कारण दुःख भोगती रही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जंगल में पक्षी की योनि में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर सँकड़ों पक्षियों को ले हिमालय को गए। उनके वहाँ रहते समय चण्ड-स्वभाव की एक चिड़िया राज-मार्ग में जाकर पड़ी रहती; वहाँ उसे गाड़ियों पर से गिरे हुए धान मूँग आदि के दाने मिलते। उन्हें पाकर वह सोचती कि अब ऐसा उपाय करूँ जिससे दूसरे पक्षी इधर न आयें। वह पक्षियों को उपदेश देती—'राज-मार्ग बड़ा खतरनाक है। हाथी, घोड़े और मरखन बलावाला गाड़ियाँ आती जाती हैं। शीघ्रता से उड़ा भी नहीं जा सकता। वहाँ नहीं जाना चाहिए।' पक्षियों ने उसका नाम अनुशासिका रख दिया।

एक दिन वह राजपथ पर चुग रही थी। जोर से आती हुई गाड़ी के शब्द को सुन उसने पीछे मुँह कर देखा। 'अभी दूर है' सोच, चुगती ही रही। हवा की गति से गाड़ी शीघ्र ही आ पहुँची। वह उड़ न सकी। पहिये से उसके दो टुकड़े हो गए।

बोधिसत्त्व ने पक्षियों के लौटने पर उनकी गिनती करते समय उसे न देख कर कहा—अनुशासिका दिखाई नहीं देती, उसे खोजो। पक्षियों ने खोज करते

हुए, उसे राजपथ पर दो टुकड़े हो पड़े देखा । बोधिसत्त्व से आकर निवेदन किया । 'वह दूसरों को जाने से रोकती थी लेकिन स्वयं वहाँ चुगने जाकर दो टुकड़े हुई' कह यह गाथा कही—

यायञ्जमनुसासति सयं लोलुपचारिणी,
सायं विपक्खिका सेति हता चक्केनसाळिका ॥

[जो दूसरों को उपदेश देती थी लेकिन स्वयं थी लोभी; वह यह चिड़िया पहिये के नीचे आकर पंख-रहित होकर मरी पड़ी है ।]

“यायञ्जमनुसासतीति . इसमें ‘य’ केवल दो पदों की सन्धि के कारण है । अर्थ है, जो दूसरों को उपदेश देती है । सयं लोलुपचारिणी, अपने लोभी स्वभाव वाली सायं विपक्खिका सेति, वह पंखरहित होकर राजपथ पर पड़ी है । हता चक्केन साळिका, गाड़ी के पहिये से मारी गई चिड़िया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय उपदेश देनेवाली चिड़िया यह उपदेश देनेवाली भिक्षुणी ही थी । ज्येष्ठ-पक्षी तो मैं ही था ।

११६. दुब्बच जातक

“अतिकरमकराचरिय” यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह कथा नवें निपात में गिञ्ज जातक^१ में आयेगी । शास्ता ने उस भिक्षु को बुला, ‘भिक्षु, तू केवल अभी बात न माननेवाला नहीं है; बल्कि पहले भी तूने

^१ गिञ्ज जातक—नौवें निपात की पहली जातक ।

पण्डितों का कहना न करके शक्ति के आघात से जान गँवाई' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने लंघटन^१ के घर में जन्म लिया। बड़े होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहारकुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्त्व का उस्ताद चार ही शक्तियों के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नहीं।

एक दिन उसने एक गामड़े में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, 'पाँच शक्तियों को लांघूँगा' कह, उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्त्व ने कहा—“आचार्य, आप पाँच शक्तियों के लाँघने का हुनर नहीं जानते; इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचों को लाघेंगे तो पाँचवीं शक्ति से बिधकर मरेंगे।”

आचार्य उस समय बिलकुल मदहोश था। इसलिए उसने कहा—“तू मेरी सामर्थ्य को नहीं जानता।” इस प्रकार बोधिसत्त्व के उपदेश का अनादर कर, चार शक्तियों को लाँघ पाँचवीं को लाँघते समय डण्डल से महुए के फूल के गिरने की तरह; चीखता हुआ गिरा। उसे देख बोधिसत्त्व ने कहा—“यह पण्डितों का कहना न कर इस आपत्ति में पड़ा।” इसके बाद यह गाथा कही—

अतिकरमकराच्चरिय ! मग्गम्पेतं न दच्चति,

चतुत्थे लंघयित्वान पंचमियस्मि^२ आवुतो॥

[आचार्य, आज तुमने अति कर दी। मुझ तक को यह अच्छा नहीं लगा। चारों लाँघकर पाँचवीं में गिर पड़े।]

अतिकरमकराच्चरिय, आचार्य, आज तुमने अति कर दी। अर्थात् अपनी शक्ति से बाहर काम किया। मग्गम्पेतं न दच्चति, मुझ आपके शिष्य तक को यह अच्छा नहीं लगा। इसीलिए मैंने पहले कह दिया था। चतुत्थेलंघयित्वान, चौथे शक्ति-

^१ लंघटन=बाजीगर।

^२ 'पञ्चमायस्मि' पाठ भी है।

फलक पर बिना गिरे लाँचकर, पंचभिर्यस्ति आबुतो, पण्डितों की बात न मानकर पाँचवीं शक्ति पर गिर पड़े।

इतना कह आचार्य को शक्ति पर से उठा, जो करना उचित था, किया।

शास्ता ने इस पूर्व जन्म की कथा को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय का आचार्य, यह बात न माननेवाला भिक्षु था, शिष्य तो मैं ही था।

११७. तित्तिर जातक

“अच्छुग्गता अतिबलता . . .” यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय ‘कोकालिक’ के बारे में कही थी।

क. वर्तमान कथा

उसकी वर्तमान कथा तेरहवें निपात की तत्कारिय जातक^१ में प्रगट होगी। शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण नष्ट हुआ है, पहले भी नष्ट हुआ है।

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर तक्षशिला जा सब विद्याएँ सीखीं। फिर काम-भोग के जीवन को छोड़ ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो पाँच अभिज्ञा

^१ कोकालिक देववत्त के पक्ष का एक संघ-भेदक था।

^२ तत्कारिय जातक (४८१)।

तथा आठ समापत्तियों को प्राप्त किया। हिमवन्त प्रदेश के सभी ऋषियों ने उन्हें अपना उपदेशक-आचार्य बनाया और उनके आस-पास रहने लगे। वे भी पाँच सौ ऋषियों के उपदेशक-आचार्य बन ध्यान मग्न हो हिमवन्त में रहते थे।

उस समय पाण्डु-रोग से पीड़ित एक तपस्वी कुल्हाड़ी लेकर लकड़ियाँ फाड़ रहा था। उसके पास बैठे एक वाचाल तपस्वी ने 'यहाँ पर मारें, यहाँ पर मारें' बार बार कहकर उस तपस्वी को क्रोधित कर दिया। उसने क्रोध में आकर कहा, 'तू मुझे अब लकड़ी चीरना सिखाना चाहता है', और अपनी तेज कुल्हाड़ी उठा उसे एक ही प्रहार से मार डाला।

बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य किया।

उसी समय आश्रम से कुछ ही दूर वल्मी पर एक तित्तिर रहता था। वह सुबह शाम वल्मी के ऊपर खड़ा हो बड़े जोर से आवाज लगाता। उसे सुन एक शिकारी ने सोचा कि तित्तिर होगा और शब्द के पीछे पीछे जा, उसे मार कर ले गया।

बोधिसत्त्व ने उसकी आवाज न सुनाई देती देख तपस्वियों से पूछा—उस जगह एक तित्तिर रहता था। उसकी आवाज नहीं सुनाई देती? उन्होंने बोधिसत्त्व को सब हाल कहा। बोधिसत्त्व ने ऊपर की दोनों बातों को मिला ऋषियों के सामने यह गाथा कही—

अच्छुग्गता अतिबलता अतिबेलं पभासिता,
वाचा हनति दुम्भेयं तित्तिरं वातिवस्सितं ॥

[अति-ऊँची, अति जोर से अत्यधिक देर तक बोली गई वाणी मूर्ख आदमी को वैसे ही मार डालती है जैसे जोर से चिल्लाने से तित्तिर मारा गया।]

अच्छुग्गता, अति उद्गता। अतिबलता, बार बार बोलने से बहुत बलशाली हो गई। अतिबेलं पभासिता उचित से बहुत ज्यादा देर तक भाषित। तित्तिरं वातिवस्सितं, जैसे बहुत बोलने से तित्तिर मारा गया, वैसे ही इस प्रकार की वाणी मूर्ख आदमी को मार गिराती है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ऋषियों को उपदेश दे चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्मलोक गामी हुए ।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण विनष्ट हुआ, किन्तु पहले भी नष्ट हुआ' कहा, और यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय दुर्वचन बोलनेवाला तपस्वी कोकालिक हुआ । ऋषिगण बुद्ध-परिषद । और ऋषि-गण का शास्ता तो मैं था ही ।

११८ . बटुक जातक

“नाचिन्तयन्तो पुरितो . . .” यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्तर नाम के श्रेष्ठिक के पुत्र के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में उत्तर श्रेष्ठिक महाधनवान था । उसकी भार्या की कोख में एक बालक पैदा हुआ । वह पुण्यवान् था, ब्रह्मलोक से च्युत होकर यहाँ जन्म ग्रहण किया था । बड़ा होने पर वह ब्रह्मा की तरह सुन्दर वर्ण का हुआ ।

एक दिन श्रावस्ती में कार्तिक महोत्सव की घोषणा होने पर सभी लोग उत्सव मनाने में मस्त थे । उस तरण के मित्रों—सभी दूसरे श्रेष्ठिक-पुत्रों की पत्नियाँ थीं । उत्तर श्रेष्ठिक पुत्र बहुत समय तक ब्रह्मलोक में रहा था; इसलिए उसकी कामभोग में आसक्ति न थी ।

उसके मित्रों ने सोचा कि उत्तर श्रेष्ठिक पुत्र के लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँगे । वे उसके पास जाकर बोले “सौम्य ! इस नगर में कार्तिक रात्रि का उत्सव घोषित हुआ है । तुम्हारे लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँ ?”

‘मुझे स्त्री की आवश्यकता नहीं है’ कहने पर भी बार बार आग्रह करके स्त्री

कार करवा लिया। तब एक बेश्या को सब अलंकारों से सजा, उसके घर ले जाकर उसे श्रेष्ठपुत्र का सोने का कमरा दिखाकर कहा कि तू श्रेष्ठपुत्र के पास जा। उसे कमरा दिखा वे स्वयं चले गए।

उसक शयनाग : में प्रविष्ट होने पर भी श्रेष्ठपुत्र ने न उसकी ओर देखा न बातचीत की। उसने सोचा यह मेरे जैसी सुन्दर उत्तम-विलास-युक्त स्त्री की ओर न देखता है, न बातचीत करता है। इसे अब स्त्री-लीला से देखने पर मजबूर करूँगी तब वह स्त्री लीला दिखाते हुए प्रसन्न-मुख की भाँति आगे के दाँत निकालकर मुस्कराई। श्रेष्ठपुत्र ने देखा; तो दाँतों की हड्डियाँ उसके लिए ध्यान का विषय हो गईं। उसमें अस्थि-सञ्ज्ञा पैदा हुई। उसे वह सारा शरीर हड्डियों के पञ्जर की तरह मालूम देने लगा। उसकी मजदूरी दे, उसने कहा 'जाओ'।

उसके घर से निकलने पर बीच-बाजार में खड़ा देख एक ऐश्वर्यशाली आदमी उसे खर्चा दे अपने घर ले गया। सप्ताह बीतने पर उत्सव समाप्त हुआ। बेश्या की माता ने जब देखा कि लड़की नहीं आई तो वह श्रेष्ठपुत्रों के पास गई और पूछा कि वह कहाँ है? उन्होंने उत्तर श्रेष्ठपुत्र के यहाँ जाकर पूछा कि वह कहाँ है? उसने कहा "उसी समय खर्चा देकर बिदा कर दिया।" उसकी भाँ रोने लगी। 'मैं अपनी लड़की को नहीं देखती। मेरी लड़की लाओ' कहते हुए वह उत्तर-श्रेष्ठपुत्र को ले राजा के पास गई।

राजा ने मुकद्दमे का फैसला करते हुए पूछा—

"इन श्रेष्ठपुत्रों ने तुझे बेश्या लाकर दी?"

"देव! हाँ।"

"अब वह कहाँ है?"

"नहीं जानता हूँ। उसी समय उसे बिदा कर दिया था।"

"अब उसे लिवा आ सकता है?"

"देव! नहीं सकता हूँ।"

"यदि नहीं ला सकता है, तो इसे राज-दण्ड दो।"

उसके हाथ पीछे की तरफ बाँध राज-दण्ड देने के लिये उसे पकड़कर ले गए। बेश्या को न ला सकने के कारण राजा श्रेष्ठपुत्र को राज-दण्ड दे रहा है, सुन सारे नगर में हल्ला मच गया। लोग छाती पर हाथ रखकर 'स्वामी! यह क्या आपके योग्य है?' कहते हुए रोने लगे। सेठ भी रोता पीटता पुत्र के पीछे पीछे जा

बहुक]

रहा था। श्रेष्ठिपुत्र सोचने लगा, 'यह जो मुझे इस प्रकार का दुःख हुआ, यह घर में रहने ही के कारण हुआ, यदि मैं इससे मुक्त हुआ तो गौतम सम्यक् सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा।'।

वेश्या ने हल्ला सुना तो पूछा यह क्या हल्ला है ? समाचार मालूम होने पर वह जल्दी से उतर "स्वामी ! हटें हटें" मुझे राज-पुरुषों को देखने दें कहती हुई राज-पुरुषों के पास पहुँची। राज-पुरुषों ने उसे देख माता को सौंपा और श्रेष्ठिपुत्र को मुक्त कर चले गए।

श्रेष्ठिपुत्र मित्रों सहित नदी पर गया : वहाँ सिर से स्नान कर, घर जा, प्रातःराशन कर, माता पिता को प्रव्रज्या की बात जता, चीवर-वस्त्र ले बड़ी भारी मण्डली के साथ बुद्ध के पास जा प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर वह योगाभ्यास में लग विपश्यना की वृद्धि कर थोड़ी ही देर में अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

एक दिन धर्म-सभा में इकट्ठे हुए भिक्षु श्रेष्ठिपुत्र की प्रशंसा कर रहे थे— "आयुष्मानो ! श्रेष्ठिपुत्र अपने पर आई आपत्ति देख बुद्ध-शासन की महिमा जान 'इस दुःख से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच, उस सुचिन्तन के फलस्वरूप मुक्त हो, प्रव्रजित हो अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।" शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?'

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ ! केवल श्रेष्ठिपुत्र ही अपने पर आपत्ति पड़ने पर इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होऊँगा" सोच मृत्यु-भय से मुक्त नहीं हुआ; पूर्व समय में बुद्धिमान लोग भी अपने पर आपत्ति पड़ने पर 'इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होंगे' सोच मृत्यु-भय के दुःख से मुक्त हुए। (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय जन्म-मरण के चक्कर में पड़े हुए बोधिसत्त्व एक बार बटेरे के जन्म में पैदा हुए।

उस समय बटेरों का एक शिकारी जंगल से बहुत से बटेरे पकड़ ले जाकर, घर में रख उन्हें दाना खिला, खरीदारों से मूल्य ले उनके हाथ बेच अपनी जीविका चलाता था। वह एक दिन बहुत से बटेरों के साथ बोधिसत्त्व को भी पकड़ लाया।

बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मैं इसका दिया हुआ चोगा खाऊँगा पीऊँगा तो यह मुझे आये हुए मनुष्यों के हाथ बेच देगा। यदि नहीं खाऊँगा तो मैं कुम्हला जाऊँगा। मुझे कुम्हलाया हुआ देखकर मनुष्य नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार मेरा कल्याण होगा। मैं यही उपाय करूँगा।

उसने वैसा ही किया, जिससे वह सूखकर केवल हड्डी और चमड़ी मात्र रह गया। मनुष्य उसे देखकर नहीं खरीदते थे। बोधिसत्त्व को छोड़ शेष बटेरों के समाप्त हो जाने पर, चिड़ीमार पिंजरे को ला दरवाजे पर रख (उसमें से) बोधिसत्त्व को हाथ पर ले देखने लगा कि इस बटेरे को क्या हुआ? उसे असावधान देख बोधिसत्त्व ने पंख फैलाए और उड़कर जंगल जा पहुँचा।

बटेरों ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—“पता नहीं रहा कि कहाँ गए थे?”

“मुझे चिड़ीमार ने पकड़ लिया था।” “कैसे मुक्त हुए?” पूछने पर बोधिसत्त्व ने कहा मैंने उसका दिया हुआ दाना-पानी नहीं ग्रहण किया; और मुक्त होने का तरीका सोचकर छूट गया। (इतना कह) यह गाथा कही—

नाचिन्तयन्तो पुरिसो विससेसमविगच्छति,
चिन्तितस्स फलं पस्स मुत्तोस्मि वधबन्धना॥

[जो आदमी विचार नहीं करता, वह विशेष (=मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता। विचार करने के फल को देखो मैं मरण-बन्धन से मुक्त हो गया।]

सारांश यह है। पुरिसो, दुःख में पड़कर मैं इस उपाय से मुक्त होऊँगा, इस प्रकार न विचार करनेवाला अपने दुःख से मुक्ति स्वरूप विससेसं नाधि गच्छति। अब मैंने जो विचार से काम लिया, उसके फल को देखो। उसी उपाय से मैं मुत्तोस्मि वधबन्धना, मैं मरण से तथा बन्धन से मुक्त हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने अपनी कृति का बखान किया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मरने से मुक्त हुआ बटेर मैं ही था।

११९. अकालराबी जातक

“अमातापितरि संबद्धो” यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक असमय शोर करनेवाले भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस श्रावस्ती-निवासी तरुण ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो, न कर्तव्य सीखे न शिक्षा ग्रहण की । वह नहीं जानता था कि इस समय मुझे (झाड़ू लगाना आदि) काम करने चाहिए, इस समय मुझे सेवा के काम करने चाहिए; इस समय पाठ करना चाहिए । पहले याम में भी, बीच के याम में भी और पिछले याम में भी जब जब आँख खुलती, वह शोर करता था । भिक्षुओं को नींद न आती । धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु उसकी निन्दा करते—“आयुष्मानो ! वह भिक्षु इस प्रकार के रत्न^१ शासन में प्रव्रजित हो कर भी, न कर्तव्य जानता है, न शिक्षा जानता है, न समय जानता है और न असमय जानता है ।”

शास्ता ने आकर पूछा “भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर कहा—“भिक्षुओ ! यह केवल अभी असमय शोर मचाने वाला नहीं है, पहले भी असमय हल्ला करनेवाला ही रहा है । समय असमय न जानने के कारण ही इसकी गरदन मरोड़ी जाकर यह मृत्यु को प्राप्त हुआ ।”

इतना कह पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर सयाने होने पर, सब शिल्पों में पारङ्गत हो, चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य बन पाँच सौ शिष्यों को शिल्प बँचवाते (सिखाते) थे ।

^१ बुद्ध, धर्म तथा संघ तीन रत्न हैं ।

उन शिष्यों के पास समय पर बोलनेवाला एक मुर्गा था। वे उसके बाँग देने पर उठकर शिल्प सीखते थे। वह मर गया। तब वे कोई दूसरा मुर्गा ढूँढते फिरते थे। एक शिष्य ने श्मशान वन में लकड़ी इकट्ठी करते समय एक मुर्गे को देख, उसे लाकर पिंजरे में बन्द कर, पाला। वह श्मशान में बड़ा हुआ होने से यह न जानता था कि किस समय बोलना चाहिए। कभी आधी रात को बोलता, कभी अरुण उदय होने पर। शिष्य उसके बहुत रात रहते बोलने पर उसी समय शिल्प सीखना आरम्भ करने के कारण अरुणोदय तक न सीख सकते थे। नींद के मारे सीखा हुआ भी भूल जाते। बहुत प्रभात होने पर बोलने के समय पाठ करने का अवकाश ही न रहता।

शिष्यों ने सोचा, यह या तो बहुत रात रहने पर बोलता है, या बहुत दिन चढ़ने पर। इस (की मदद) से हमारा शिल्प (सीखना) समाप्त न होगा। यह सोच उसकी गर्दन मरोड़ उसे मार डाला। फिर आचार्य के पास जाकर कहा कि हमने असमय शोर मचानेवाले मुर्गे को मार डाला।

आचार्य ने कहा कि वह अशिक्षित ही वृद्धि को प्राप्त हुआ था। इसी से मरा। इतना कह यह गाथा कही—

अमातापितरि संबद्धो अनाचरियकुले वसं,
नायं कालं अकालं वा अभिजानाति कुक्कुटो॥

[न माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करते हुए बड़ा, न आचार्य-कुल में ही रहा। यह मुर्गा न समय जानता था, न असमय।]

अमातापितरि संबद्धो, माता पिता के पास उनका उपदेश न ग्रहण करता हुआ बड़ा। अनाचरि कुले वसं, कुल में भी न रहकर आचार्य-शिक्षा न ग्रहण करने के कारण असंयमी। कालं अकालं वा इस समय बोलना चाहिए, इस समय नहीं बोलना चाहिए, इस प्रकार यह मुर्गा समय असमय नहीं जानने के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।

यह कथा सुना बोधिसत्त्व यावत् आयु जीवित रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय असमय शोर मचानेवाला मुर्गा यह भिक्षु ही था । शिष्य बुद्ध-परिवर्तित हुए । आचार्य तो मैं था ही ।

१२०. बन्धनमोक्ष जातक

“अबद्धा तत्त्व बन्धन्ति” यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय चिञ्चमाणविका के बारे में कहा । उसकी कथा बारहवें निपात में महापुम जातक^१ में आएगी । उस समय शास्ता ने ‘भिक्षुओ ! चिञ्चमाणविकाने न केवल अभी मुझ पर झूठा इल्जाम लगाया है, पहले भी लगाया है,’ कह पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित के घर में जन्म ग्रहण कर सयाना होने पर पिता के मरने के बाद उसी राजा का पुरोहित हो गया ।

उस राजा ने अपनी पटरानी को वर दिया था कि जो इच्छा हो माँग ले । उसने कहा, मुझे और वर दुर्लभ नहीं है, मैं यही चाहती हूँ कि अब इसके बाद आप किसी दूसरी स्त्री को कामुक-दृष्टि से न देखें । राजा ने अस्वीकार कर; लेकिन फिर फिर जोर देने से उसके कथन को अस्वीकृत न कर सकने के कारण स्वीकार कर लिया । उसके बाद राजा ने सोलह हजार नर्तकियों में से किसी एक स्त्री की ओर भी कामुक-दृष्टि से नहीं देखा ।

उस समय राजा के इलाके में बगावत फैली । इलाके के योधाओं ने विद्रोहियों (चोरों) के साथ दो तीन लड़ाइयाँ लड़ (राजा के पास) पत्र भेजा कि इसके आगे हम न लड़ सकेंगे । राजा ने वहाँ जाने की इच्छा से सेना एकत्र कर देवी को बुलवा

^१ महापुम जातक (४७२) ।

कर कहा—“भद्रे ! मैं इलाके में जाता हूँ। वहाँ नाना प्रकार के युद्ध होते हैं। जय-पराजय भी अनिश्चित रहती है। वैसे जगहों में स्त्रियों को साथ ले चल सकना कठिन है। तू यहीं रह।” उसने कहा “देव ! मैं यहाँ नहीं रह सकती।” राजा के बार बार मना करने पर बोली “अच्छा ! तो एक एक योजन पर पहुँच कर मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए एक एक आदमी भेजना होगा।” राजा ने “अच्छा” कह स्वीकार किया।

बोधिसत्त्व को नगर में छोड़, बड़ी भारी सेना के साथ नगर से निकल राजा जाते हुए एक एक योजन पर एक एक आदमी को भेजता कि जाओ हमारा कुशल समाचार कह रानी के दुःख-सुख की खबर लाओ। वह हर आनेवाले आदमी से पूछती ‘राजा ने तुझे किस लिए भेजा है?’ ‘तुम्हारा कुशल-समाचार जानने के लिए’ कहने पर ‘तो जाओ’ कह उससे सहवास करती। राजा ने बत्तीस योजन मार्ग जाते हुए बत्तीस जनों को भेजा। उसने उन सभी के साथ वैसे ही किया। राजा ने इलाके को दबा, लोगों को निश्चिन्त कर लौटने समय भी उसी तरह बत्तीस आदमी भेजे। उसने उन बत्तीसों के साथ भी वैसे ही दुष्कर्म किया।

राजा ने (राजधानी में) पहुँच विजय-पड़ाव^१ पर एक बोधिसत्त्व को सूचना भेजी ‘नगर को (स्वागत के लिए) तैयार करे।’ बोधिसत्त्व सारे नगर के साथ राज-महल को भी तैयार कराते हुए रानी के निवास-स्थान पर गया। उसने बोधिसत्त्व का सुन्दर शरीर देख संयम न कर सकने के कारण कहा—“ब्राह्मण ! शय्या पर आ।” बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—“ऐसा मत कह। मेरे मन में राजा का गौरव भी है और मैं पाप-कर्म से डरता भी हूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता।”

“उन चौसठ संदेश-वाहकों को तो न राजा का गौरव था, न वह पाप से डरते थे; तुझे ही राजा का गौरव है और तू ही (एक) पाप से डरनेवाला है?”

“हाँ, यदि उनको भी ऐसा होता, तो वह भी ऐसा न करते। मैं तो जान बूझकर ऐसा दुस्साहस नहीं करूँगा।”

“बहुत क्यों बकवाद करता है; यदि मेरा कहना नहीं करेगा तो तेरा सिर कटवा दूँगी।”

^१ इलाके को जीतकर आने पर नगर से बाहर जो पड़ाव डाला जाता था, उसे ‘जय खन्धावार’ कहते थे।

“एक जन्म के सिर की बात क्या, यदि हजार जन्मों में हर बार भी सिर काटे तो भी मैं ऐसा नहीं कर सकता ।”

“अच्छा देखूंगी” कह बोधिसत्त्व को डरा रानी अपने कमरे में गई । वहाँ अपने शरीर पर नाखून की खसोट के निशान बना, बदन पर तेल मल, मँले कुचैले कपड़े पहन बीमारी का बहाना बना कर लेट रही और दासियों को आज्ञा दी कि जब राजा पूछे ‘देवी कहाँ है?’ तो उत्तर देना ‘बीमार है ।’

बोधिसत्त्व राजा की अगवानी के लिए गए । राजा ने नगर की प्रदक्षिणा कर प्रासाद पर चढ़ रानी को न देख पूछा—“देवी कहाँ है?” “देव ! बीमार है ।” राजा ने रानी के कमरे में प्रवेश कर उसकी पीठ मलते हुए पूछा “भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है?” रानी चुप रही । तीसरी बार (पूछने पर) राजा की ओर देखते हुए बोली—“राजन् ! तुम भी जीते हो ? मेरे जैसी स्त्री को भी स्वामी-वाली कहा जा सकता है ?”

“भद्रे ! बात क्या है ?”

“तुमने जिस पुरोहित को नगर की रक्षा का भार सौंपा, वह राजमहल में तैयारी के काम से यहाँ आया और अपना कहना न करने वाली मुझे मारकर अपने मन की करके गया ।”

जिस प्रकार आग में नमक तथा शक्कर डालने पर चट चट शब्द होता है, उसी प्रकार राजा क्रोध से चटचटाता हुआ रानी के कमरे से निकला और द्वारपालों तथा परिचारकों को बुलवाकर आज्ञा दी—“अरे ! जाओ, पुरोहित की बाहें पिछली तरफ बाँधकर, उसे बध करने योग्य मनुष्य की तरह नगर से बाहर बध करने के स्थान पर ले जाकर उसका सिर काट दो ।”

उन्होंने जल्दी से जाकर उसकी बाँहें पिछली तरफ करके बाँध, बध-भेरी बजवा दी । बोधिमत्त्व ने सोचा “उस दुष्ट देवी ने राजा को पहले से ही फोड़ लिया । अब मैं आज अपने बल से ही अपने को मुक्त करूँगा ।” उसने उन लोगों से कहा—

“भो ! तुम मुझे मारते हो, तो एक बार राजा के पास ले चल कर मारना ।”

“किसलिए ?”

“मैं राज कर्मचारी हूँ । मैंने बहुत कार्य्य किए हैं । मैं अनेक गड़े हुए खजानों को जानता हूँ । मैं ही राज्य-सम्पत्ति की देखरेख करता रहा हूँ । यदि मुझे राजा को न

दिखाओगे, तो बहुत धन का नाश हो जाएगा। मुझे राजा को उसके धन की सूचना दे लेने पर, फिर जो करना हो करो।”

वे उसे राजा के पास ले गए। राजा ने उसे देखते ही कहा—“अरे ब्राह्मण ! तूने मेरी भी शरम नहीं रक्खी ? तूने क्यों ऐसा पापकर्म किया ?”

“महाराज ! मैं श्रोत्रिय कुल में पैदा हुआ हूँ। मैंने कभी च्यूटी तक की भी जान नहीं ली। मैंने कभी तिनके की भी चोरी नहीं की। मैंने कभी कामुक दृष्टि से किसी की स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला। मैंने कभी कुशाग्र से भी मद्य नहीं पिया। मैंने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया। उस मूर्ख ने मुझे हाथ से पकड़ा। मेरे इनकार करने पर वह अपना किया पाप प्रगट कर, मुझे कह कमरे में चली गई। मैं निरपराधी हूँ। हाँ, पत्र लेकर आने वाले चौसठ आदमी अपराधी हैं। देव ! उन्हें बुलवा कर पूछें कि उन्होंने उसका कहना किया अथवा नहीं किया ?”

राजा ने उन चौसठ जनों को बँधवा कर देवी को बुलवाकर पूछा—“तूने इनके साथ पाप किया या नहीं किया ?”

“देव ! किया” कहने पर उसे पीछे हाथ करके बँधवा आज्ञा दी “इन चौसठ जनों के सीस काट डालो।”

बोधिसत्त्व ने कहा—“महाराज ! इनका दोष नहीं। रानी ने अपनी मरजी करवाई। यह निरपराध हैं। इसलिए इन्हें क्षमा करें। उसका भी दोष नहीं। स्त्रियों की मैथुन से संतुष्टि नहीं होती। यह इनका जातीय स्वभाव है। जो होना है, वही होता है। इसलिए इसे भी क्षमा करें।”

यूँ राजा को समझाकर, उन चौसठ जनों तथा उस मूर्ख को छुड़ा कर, उनको उन उन का पद दिलवा दिया। इस प्रकार उन सब को मुक्त करवा, (उनको) अपनी अपनी जगह पर प्रतिष्ठित करवा बोधिसत्त्व ने राजा से कहा—“महाराज ! अन्धे मूर्खों के झूठ कहने के कारण न बाँधने योग्य पण्डितजन पीछे हाथ करके बाँधे गए; और पण्डितों के सहेतुक कथन से पिछली तरफ हाथ बाँधे मनुष्य भी मुक्त हुए। इस प्रकार मूर्ख जो बाँधने के योग्य नहीं हैं, उन्हें भी बँधवा देते हैं और पण्डित बँधे हुएों को भी मुक्त करा देते हैं।” (इतना कह) यह गाथा कही—

अबद्धा तत्थ बज्जन्ति यत्थ बाला पभासरे,

बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे ॥

[जहाँ मूर्ख आदमी बोलते हैं, वहाँ मुक्त भी बँध जाते हैं, और जहाँ पण्डित-जन बोलते हैं, वहाँ बँधे हुए भी मुक्त हो जाते हैं।]

अबद्धा, जो बँधे हुए नहीं हैं। पभासरे, भाषण करते हैं, बोलते हैं, कहते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने इस गाथा द्वारा राजा को धर्मोपदेश दे राजा से कहा—“मैंने जो यह दुःख भोगा, वह गृहस्थ जीवन में रहते भोगा। अब मुझे गृहस्थ रहने की जरूरत नहीं है। देव ! मुझे प्रब्रजित होने की आज्ञा दें।”

राजा से प्रब्रजित होने की आज्ञा ले रोते हुए रिश्तेदारों, तथा बहुत सी सम्पत्ति को छोड़ ऋषियों के क्रम से प्रब्रज्या ग्रहण कर बोधिसत्त्व हिमालय में रहत हुए अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दुष्टदेवी चिञ्चमाणविका थी। राजा आनन्द था। पुरोहित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१३. कुसनाळि वर्ग

१२१. कुसनाळि जातक

“करे सरिक्खो” यह धर्मोपदेश शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथ पिण्डिक के स्थिर-मित्र के बारे में दिया ।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक के मित्र, सुहृद, रिश्तेदार और बन्धु इकट्ठे होकर उसे बार बार मना करते थे—“महासेठ ! यह न जाति में, न गोत्र में, न धन-धान्य में ही तेरे समान है, और न तुझसे बड़कर ही है । तू इसके साथ क्यों मित्रता करता है ? इसके साथ मित्रता मत कर ।” अनाथ पिण्डिक का ख्याल था कि दोस्ती अपने से छोटे से, बराबरवाले से और श्रेष्ठतर से—सभी से करनी चाहिए; इसलिए उसने उनका कहना नहीं माना । अपनी जमींदारी के गाँव^१ पर जाते समय वह उसे अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर गया । आगे की कथा कालक-ण्णिकथा^२ के अनुसार ही समझनी चाहिए । लेकिन इस कथा में अनाथ पिण्डिक के अपने घर का समाचार कहने पर शास्ता ने कहा—“हे गृहपति ! मित्र कभी तुच्छ नहीं होता । मित्र-धर्म की रक्षा कर सकने का सामर्थ्य ही असल में होना चाहिए । मित्रता अपने से छोटे से भी करनी चाहिए, बराबरवाले से भी और श्रेष्ठ से भी ।

^१ भोग गाँव; जिस गाँव से गाँव का स्वामी पैदावार के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में वसूली करता था ।

^२ कालकण्ण जातक (८३) ।

सभी अपने सिर पर आ पड़े भार का वहन करते हैं। अब तो तू अपने स्थिर-मित्र के कारण धन का स्वामी हुआ। पुराने समय में पक्के-दोस्त के कारण विमान के स्वामी हुए।”

इतना कह, पूछने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व राजा के उद्यान में एक कुशा-घास के झुंड में के देवता हुए। उसी बाग में मंगल-शिला के सहारे सीधे तनेवाला और चारों तरफ शाखाओं तथा पत्तों से घिरा हुआ, राजा द्वारा आदृत राजा का प्रिय-वृक्ष^१ था। उसे मुखक भी कहते थे। उसमें एक बड़ा प्रतापी देवराज पैदा हुआ। बोधिसत्त्व से उसकी दोस्ती हो गई।

उस समय राजा एक खम्भे वाले प्रासाद में रहता था। खम्भा फटने लगा। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने बड़इयों को बुलवाकर कहा “तात ! मेरे एक खम्भे वाले मंगल प्रासाद का खम्भा जा रहा है। एक सारवान् खम्भा ला कर उस खम्भे को स्थिर करें।” उन्होंने ‘देव ! अच्छा’ कह राजा के वचन को स्वीकार कर उसके अनुरूप वृक्ष ढूँढ़ना आरम्भ किया। वृक्ष न पा, राजा के उद्यान में जा उस मुखक वृक्ष को देख राजा के पास गए। राजा ने पूछा—

“तात ! क्यों उसके अनुरूप वृक्ष देखा ?”

“देव ! देखा, लेकिन उसे काट नहीं सकते ?”

“क्यों ?”

“और कहीं वृक्ष न दिखाई देने पर हम उद्यान में गए। वहाँ मंगल-वृक्ष को छोड़ और कोई वृक्ष नहीं दिखाई दिया। उसे मंगल-वृक्ष होने के कारण नहीं काट सकते।”

“जाओ, उसे काट कर प्रासाद को मजबूत करो। हम दूसरा मंगल-वृक्ष कर लेंगे।”

वे ‘अच्छा’ कह ‘बलि’ ले उद्यान गए और वहाँ अगले दिन काटने के लिए ‘बलि’ चढ़ाई। वृक्ष-देवता को जब यह पता लगा कि कल मेरा निवास-स्थान^२

^१ ‘रुचरुक्खो’ कुछ अस्पष्ट है।

^२ विमान।

नष्ट कर देंगे, तो वह सोचने लगी कि बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगी ? जब कोई जाने की जगह न दिखाई दी, तो पुत्रों को गले से लगाकर रोने लगी । उसके देखे-सुने परिचित वृक्ष-देवता और वन-देवताओं ने आकर पूछा—“क्या हुआ ?” समाचार जान स्वयं भी कोई ऐसा उपाय न कर सकने के कारण जिससे बड़ई वृक्ष को न काटें, उन्होंने गले मिलकर रोना आरम्भ किया ।

उसी समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता से मिलने आए । वह समाचार सुन बोधिसत्त्व ने कहा—“होने दो । चिन्ता न करो । मैं बड़इयों को वृक्ष काटने न दूँगा । कल बड़इयों के आने के समय मेरा करतब देखना ।” उस देवता को आश्वासन दे अगले दिन बोधिसत्त्व बड़इयों के आने के समय गिरगिट का रूप बना बड़इयों के आगे से गुजर मंगल-वृक्ष की जड़ में प्रवेश कर, उसमें खोखले वृक्ष की तरह ऊपर चढ़, स्कन्ध के बीच में से सिर निकाल उसे कँपाते हुए पड़ रहे ।

प्रधान बड़ई ने उस गिरगिट को देख वृक्ष को हाथ से ठोंक कर कहा—‘यह खोखला है । निस्सार है । कल बिना विचार किए ही ‘बलि’ चढ़ाई ।’ इस प्रकार वे उस ठोस महावृक्ष की निन्दा करते हुए चले गए ।

बोधिसत्त्व की सहायता से वृक्ष-देवता विमान की स्वामिनी हुई । उसके देखे-सुने परिचित बहुत से देवता उसे मुबारकबाद देने के लिए इकट्ठे हुए । वृक्ष-देवता ने ‘मुझे विमान मिल गया’ सोच प्रसन्न हो उन देवताओं के सम्मुख बोधिसत्त्व की प्रशंसा करनी शुरू की—“हे देवताओ ! हम ऊँचे कुल वाले होकर भी बुद्धि की कमी के कारण इस उपाय को न जानते थे । कुशा ग्रास के देवता ने अपने बुद्धिबल से हमें विमान का स्वामी बनाया । मित्रता अपने जैसे से भी, छोटे से भी, श्रेष्ठ से भी करनी ही चाहिए । सभी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मित्रों पर आई आपत्ति दूर कर उन्हें सुखी बनाते हैं ।” इस प्रकार मित्र-धर्म की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

करे सरिक्खो अथवापि सेट्ठो
निहीनको चापि करेय्य एको,
करेय्युं ते व्यसने उत्तमत्थं
यथा अहं कुसनाळी वचायं ॥

[अपने समान, अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने से कम (दर्जे वाले) के साथ भी

मित्रता करे। जैसे कुशा-ग्रास (वाले) ने मुझ रुच-वृक्ष (के देवता) का (उपकार किया); उसी प्रकार वे भी विपत्ति आ पड़ने पर उपकार करते हैं।]

करे सरिबल्लो—जाति आदि में जो अपने बराबर हो, उससे भी मित्रता करे। अथवापि सेट्ठो, जाति आदि में जो श्रेष्ठ हो, अधिक हो उससे भी (मित्रता) करे। निहीनको चापि करेय्य एको जाति आदि से नीच से भी मित्र-धर्म करे। इस प्रकार इन सभी को मित्र बनाना चाहिए, यह स्पष्ट करता है। क्यों? करेय्युं ते व्वसने उत्तमन्थं, यह सभी मित्र पर दुःख आ पड़ने पर अपने अपने कर्तव्य-भार को वहन करते हुए उपकारी होते हैं; अर्थात् उस मित्र को शारीरिक तथा मानसिक दुःख से मुक्त करते हैं। इसलिए अपने से छोटे से भी मित्रता करनी चाहिए, दूसरों की तो बात ही क्या? यहाँ यह उपमा है। यथा अहं कुसनाळी रुचायं, जैसे मैं रुच में पैदा हुआ देवता और यह कुशा-ग्रास का देवता; हमने भी मित्रता की। उसमें मैं ऊँचे कुल वाला होकर भी अपने पर आई विपत्ति को मूर्खता के कारण उपाय न जानने के कारण दूर नहीं कर सका; इस छोटे दर्जे वाले पण्डित-देवता की सहायता से दुःख से मुक्त हुआ। इसलिए और भी जो दुःख से मुक्त होना चाहें उन्हें भी चाहिए कि बराबरी अथवा श्रेष्ठता का ख्याल न कर कम दर्जे वाले से भी मित्रता करें।

रुच देवता देवता-समूह को इस गाथा द्वारा धर्मोपदेश कर आयुपर्यन्त, जीवित रह कुसनाळी देवता के साथ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय रुच-देवता आनन्द था। कुसनाळी-देवता तो मैं था ही।

१२२. दुम्मेध जातक

“यसं लब्धान दुम्मेधो” यह (धर्म-देशना) बुद्ध ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में की।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु देवदत्त को दोष दे रहे थे—“आयुष्मानो ! तथागत का पूर्ण-चन्द्र सदृश शोभा वाला मुख है। वे अस्सी अनु-व्यञ्जनों तथा बतिस महापुरुष लक्षणों से युक्त हैं। उनके चारों ओर व्याम-भर प्रभा है। उनके शरीर से धूम धूमकर दो दो करके धनी बुद्ध-रश्मियाँ निकलती हैं। उनका शरीर अत्यन्त शोभा सम्पन्न है। ऐसे सुन्दर रूप को देखकर, देवदत्त चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकता, ईर्ष्या ही करता है। ‘बुद्ध का ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है, ऐसी विमुक्ति है, ऐसा विमोक्ष-ज्ञान-दर्शन है’ इस प्रकार प्रशंसा करने पर देवदत्त उनकी प्रशंसा नहीं सह सकता, ईर्ष्या ही करता है।”

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ ! न केवल अभी मेरी प्रशंसा होने पर देवदत्त ईर्ष्या करता है, वह पहले भी करता रहा है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर में एक मगध-नरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हाथी की योनि में पैदा हुए। उनका सारा शरीर एक दम श्वेत था और उनकी शोभा ऊपर वर्णन की गई शोभा की ही तरह थी। ‘यह लक्षणों से युक्त है’ देख उस राजा ने बोधिसत्त्व को मंगल-हाथी बनाया।

एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर राजा सारे नगर को देवनगर की तरह अलंकृत करा, सब अलंकारों से सजे हुए मंगल-हाथी पर चढ़, बड़ी राजकीय शान

के साथ नगर में घूमने के लिए निकला। लोग जहाँ तहाँ खड़े होकर मंगल हाथी के अति सुन्दर शरीर को देख मंगल-हाथी की ही प्रशंसा करने लगे—“ओह ! क्या रूप है ! ओह ! क्या चाल है ! ओह ! कैसा ढंग है ! ओह ! कैसे लक्षण है ! इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ हाथी चक्रवर्ती राजा के योग्य है।”

राजा ने मंगल हाथी की प्रशंसा सुन उसे न सह सकने के कारण, ईर्ष्या के वशीभूत हो सोचा, “आज ही इसे पर्वत-प्रपात से गिरवा कर मरवा डालूँगा।” फिर हथवान को बुलवा कर पूछा—

“तूने इस हाथी को क्या (खाक) सिखाया है ?”

“देव ! अच्छी तरह से सिखाया है।”

“नहीं, अच्छी तरह से नहीं सिखाया, खराब सिखाया है।”

“देव ! अच्छी तरह से सिखाया है।”

“यदि अच्छी तरह से सीखा, तो क्या तू इसे वेपुल्ल पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जा सकता है ?”

“देव ! हाँ।”

“अच्छा, तो आ” कह अपने उतर हथवान को हाथी पर चढ़ा पर्वत के पास जा, हथवान के हाथी की पीठ पर बैठे ही हाथी को पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जाने पर, आमात्यों के साथ स्वयं भी पर्वत के शिखर पर चढ़, हाथी का मुँह प्रपात की ओर करवा कहा—“तू कहता है, कि मैंने इसे अच्छी तरह सिखाया है। इसे तीन ही पैरों से खड़ा कर।”

हथवान ने पीठ पर बैठे ही बैठे हाथी को अंकुश द्वारा इशारा किया, ‘भो ! तीन पैरों से खड़े हो जाओ।’ वह तीन पैरों से खड़ा हो गया। तब राजा बोला—“आगे के दो पैरों के भार खड़ा करा।” बोधिसत्त्व पिछले दोनों पैर उठा कर अगले पैरों पर खड़े हुए। “पिछले ही पैरों पर” कहने पर आगे के दोनों पैर उठा कर पिछले ही पैरों पर खड़े हो गए। ‘एक ही पैर से’ भी कहने पर तीनों पैर उठा एक ही पैर से खड़े हो गए। उसे न गिरता देख राजा ने कहा—“यदि कर सको, तो इसे आकाश में खड़ा करो।”

हथवान ने सोचा सारे जम्बूद्वीप में इस हाथी के समान सुशिक्षित हाथी नहीं है। निस्संशय यह राजा इसे प्रपात में गिरवाकर मरवाना चाहता है। उसने हाथी के कान में कहा—“तात ! यह राजा तुझे प्रपात में गिराकर मार डालना चाहता

है। तू इसके योग्य नहीं है। यदि तुझमें आकाश-मार्ग से जाने का बल है, तो जैसे मैं बैठा हूँ वैसे ही मुझे ले आकाश में उड़ बाराणसी चल।”

पुण्य-ऋद्धि से युक्त वह हाथी उसी समय आकाश में खड़ा हो गया। हथवान ने कहा—‘महाराज ! यह हाथी पुण्य-ऋद्धि से युक्त है। यह तेरे जैसे पुण्य-रहित दुर्बुद्धि के योग्य नहीं है। यह (किसी) पुण्यवान् पण्डित राजा के योग्य है। तेरे सदृश अपुण्यवान् इस प्रकार का वाहन पा उसके गुणों को न पहचान उस वाहन को तथा सारी सम्पत्ति को नष्ट ही कर डालते हैं।’ इतना कह हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे यह गाथा कही—

यसं लब्धान् बुम्भेधो अनत्थं चरति अत्तनो,
अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति ॥

[मूर्ख आदमी सम्पत्ति को प्राप्त हो अपनी हानि करता है। वह अपनी और दूसरों की हिंसा करता है।]

यह संक्षिप्तार्थ है—महाराज ! उस प्रकार का बुम्भेधो, प्रज्ञाहीन आदमी परिवार-सम्पत्ति पाकर अत्तनो अनत्थं चरति। क्यों ? वह सम्पत्ति के मद में बेहोश हो, कुछ न जानने के कारण अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति, हिंसा का अर्थ है क्लेश, दुःख देना, वही करता है।

इस प्रकार इस गाथा से राजा को धर्मोपदेश दे ‘अब तू यहाँ रह’ कह आकाश में उड़कर बाराणसी जाकर राजा के आँगन में आकाश में रुका। सारे नगर में एक हल्ला हो गया—हमारे राजा के पास आकाश से एक श्वेत-श्रेष्ठ हाथी आकर राजांगन पर ठहरा है। जल्दी से राजा को भी खबर दी गई। राजा ने निकल कर कहा—यदि मेरे उपयोग के लिए आया है, तो ज़मीन पर उतर। बोधिसत्त्व ज़मीन पर उतरे। हथवान ने उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा “तात ! कहाँ से आया है ?” “राजगृह से” कह सब समाचार सुनाया।

राजा बोला—‘तात ! यहाँ आकर तूने अच्छा किया।’ फिर प्रसन्न हो नगर सजवा हाथी को मंगल-हाथी घोषित किया। सारे नगर के तीन हिस्से कर, एक हिस्सा बोधिसत्त्व को दिया, एक हथवान को और एक स्वयं लिया।

बोधिसत्त्व के आने के समय से ही सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा को हस्तगत हो गया। वह जम्बूद्वीप का महाराज हो दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिंचार।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मगध नरेश देवदत्त था। बाराणसी का राजा सारिपुत्र था। हथवान आनन्द था। और हाथी तो मैं ही था।

१२३. नंगलीस जातक

“असम्बत्थगामि बाबं” यह (धर्म-देशना) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लाळुदायि स्थविर के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

वह धर्मोपदेश देते समय यहाँ यह कहना चाहिए, यहाँ यह न कहना चाहिए, योग्य अयोग्य नहीं जानता था। मङ्गल (बात) कहने की जगह अमङ्गल बात कहकर (दान-) अनुमोदन करता था, जैसे तिरोकुड्डे तिट्ठन्ति सन्धिंसिघाटकेसु च^१ अमङ्गल अनुमोदन करने की जगह बहू बेबा मनुस्सा च मंगलानि अचिन्त्युं^२ कह ‘इस प्रकार के मङ्गल-कार्य सैकड़ों हजारों करने का सामर्थ्य पैदा करो’ कहता।

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने चर्चा चलाई—“आयुष्मानो ! लाळुदायि उचित अनुचित नहीं जानता। सर्वत्र न कहने योग्य सर्वत्र कहता है।

^१ तिरोळूड सुत्त, खुदकपाठ (खुदक निकाय) की पहली पंक्ति जिसका मतलब है कि प्रेत लोग आकर दीवारों के बाहर, खिड़कियों में और चौरस्तों में खड़े होते हैं।

^२ मंगल सूत्र; बहुत से बेबताओं और मनुष्यों ने मंगलों को सोचा।

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, लाळुदायि न केवल अभी अपनी जड़ता के वशीभूत हो बोलता हुआ उचित अनुचित नहीं जानता। पहले भी ऐसा ही था। यह सदा ही मूर्ख रहा।”

यह कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक महाऐश्वर्यशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर तक्षशिला से सब विद्याएँ (शिल्प) सीखकर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाने लगा।

उम समय उन शिष्यों में एक जड़-मूर्ख शिष्य धम्म-अन्तेवासिक^१ होकर विद्या सीखता था। जड़ता के कारण वह कुछ न सीख सकता था। लेकिन था बोधिसत्त्व की बहुत सेवा करने वाला। दास की तरह सब काम करता था।

एक दिन बोधिसत्त्व शाम का भोजन करके लेटे थे। वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबा कर जा रहा था। बोधिसत्त्व ने कहा—“तात ! चारपाई के पायों को सहारा दे कर जा।” विद्यार्थी को एक पाये का सहारा मिला; दूसरे का न मिला। उसने उम एक पाये को अपनी जाँघों में कर सारी रात बिता दी। बोधिसत्त्व ने प्रातःकाल उठ उसे देख पूछा—“तात ! क्यों बैठा है ?” “आचार्य्य ! चारपाई के पाये का सहारा न मिलने से, जाँघ में करके बैठा हूँ।”

बोधिसत्त्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियों में यही मन्दमति है, शिल्प नहीं सीख सकता। मैं इसे कैसे पण्डित बनाऊँ ? तब उन्हें सूझा—एक उपाय है। मैं इस विद्यार्थी को लकड़ियाँ और पत्ते लेने के लिए भेजकर, आने पर पूछूँगा—आज तूने क्या देखा ? क्या किया ? तब यह मुझे बताएगा कि आज यह देखा, यह किया। तब मैं इसे पूछूँगा कि जो तूने आज देखा किया, वह कैसा है ? वह ‘ऐसा है’ मुझे उपमा देकर, बातों से समझाएगा।

^१ जो शिष्य आचार्य्य-दक्षिणा देने में असमर्थ होता था, वह आचार्य्य की सेवा करता हुआ विद्या सीखता था।

इस प्रकार इससे नई नई उपमाएँ और बातें कहलवाकर मैं इसे इस उपाय से पण्डित बना दूँगा ।

तब उन्होंने उसे बुलवाकर कहा—तात ! माणवक ! अब से तू जहाँ लकड़ी लेने वा पत्ता लेने जाए वहाँ जो देखे, जो सुने, जो खाए, पीए, वह आकर मुझे कहा कर । उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया ।

एक दिन वह विद्यार्थियों के साथ लकड़ी लेने जंगल गया । वहाँ उसने एक साँप देखा । आकर आचार्य से कहा—आचार्य, मैंने साँप देखा ।

“तात ! साँप कैसा होता है ?”

“हल की फाल की तरह ।”

“तात ! बहुत अच्छा । तूने सुन्दर उपमा दी । साँप हल की फाल की ही तरह होते हैं ।”

बोधिसत्त्व ने सोचा—विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है । मैं इसे पण्डित बना सकूँगा ।

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जंगल में हाथी देख आकर कहा—आचार्य, मैंने हाथी देखा ।

“तात ! हाथी कैसा होता है ?”

“हल की फाल की तरह ।”

बोधिसत्त्व सोचने लगे—हाथी की मुण्ड तो हल की फाल की तरह होती है ; लेकिन उसके दाँत आदि तो ऐसे ऐसे होते हैं । मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक् पृथक् करके वर्णन नहीं कर सकता । वे चुप रहे ।

एक दिन निमन्त्रण में ऊख पाकर कहा—

“आचार्य ! आज हमने ऊख खाया ।”

“ऊख कैसा होता है ?”

“हल की फाल की तरह ।”

थोड़ी सीधी बात कहता है, मोक्ष आचार्य चुप रहे । फिर एक दिन निमन्त्रण में कुछ विद्यार्थियों ने दही के साथ गुड़ खाया, कुछ ने दूध के साथ । उसने आकर कहा—आज ! हमने दही दूध के साथ खाया ।

“दूध दही कैसा होता है ?”

“हल की फाल की तरह ।”

आचार्य ने सोचा—इस विद्यार्थी ने साँप की हल की फाल से उपमा दी; सो तो ठीक रहा। हाथी की हल की फाल से उपमा दी, वह भी सुष्ट का स्थाल करके कहा, इससे कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमें भी खैर कुछ ठीक है। लेकिन दूध दही तो सफेद होते हैं; जैसा बरतन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहाँ तो उपमा सर्वथा गलत है। इस मूर्ख को न सिखा सकूँगा। यह कह, यह गाथा कही—

असम्बत्थगामि	वाचं
• बालो सम्बत्थ भासति,	
नायं दधि वेदि न नंगलीसं	
दधिमप्यं मञ्जति नंगलीसं ॥	

[मूर्ख सब जगह ठीक न बैठनेवाली बात सब जगह कहता है। न यह दही को जानता है, न हल का फाल को। यह दही को भी हल की फाल समझता है।]

संक्षिप्तार्थ यूँ है—जो वाणी उपमा रूप से सर्वत्र लागू नहीं होती, वह असम्बत्थ गामि वाचं बालो जड़ आदमी सम्बत्थ भासति। दधि कैसा होता है पूछने पर कहता है जैसे हल की फाल। इस प्रकार कहता हुआ नायं दधि वेदि न नंगलीसं। क्यों? दधिमप्यं मञ्जति नंगलीसं, यह दही को भी हल की फाल मानता है। अथवा दधि कहते हैं दही को। पय कहते हैं दूध को। दधि और पय दधिमप्यं, यह दही और दूध को भी हल की फाल मानता है, ऐसा है यह मूर्ख। इससे क्या होगा? अपने शिष्यों को गाथा कह, उसे खर्चा दे बिदा किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय मूर्ख विद्यार्थी लाळुदायि था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य तो मैं ही था।

१२४. अम्ब जातक

“वायमेवैव पुरिसो” यह धर्मोपदेश बुद्ध ने जेतवन में रहते समय एक कर्तव्य-निष्ठ ब्राह्मण के सम्बन्ध में दिया ।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण बुद्ध शासन में बड़ी श्रद्धा से प्रव्रजित हो बहुत कर्तव्य-परायण था । आचार्य्य, उपाध्याय की सेवा का कार्य्य; पीने का पानी तथा खाद्य सामग्री आदि तैयार रखने का कार्य्य; उपोसथ-घर^१ तथा जन्ताघर^२ आदि साफ रखने का कार्य्य—सभी अच्छी तरह से करता । चौदह बड़े कर्तव्यों और अस्सी छोटे छोटे कर्तव्यों—सभी को पूरा करता । विहार में झाड़ू लगाता । परिवेण में झाड़ू लगाता । धूमने फिरने की जगह^३ में झाड़ू लगाता । विहार जाने के रास्ते को साफ रखता । मनुष्यों को पानी देता ।

लोगों ने उसकी कर्तव्य-निष्ठा पर प्रसन्न हो, उसे पाँच सौ स्थिर निमन्त्रण दिए । बहुत लाभ-सत्कार की प्राप्ति हुई । उसके कारण बहुतों को सुख मिला । धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—आयुष्मानो ! उस भिक्षु ने अपनी कर्तव्य-निष्ठा से बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त किया । इस एक के कारण बहुतों को सुख मिला ।

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” ‘यह बातचीत’ कहने पर “भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, पहले भी यह भिक्षु कर्तव्य-निष्ठ

^१ जहाँ भिक्षु एकत्र होकर उपोसथ करते हैं ।

^२ अग्नि-शाला, जिसमें आग तपाकर पसीना बहाया जाता है ।

^३ सिंहल प्रति में ‘विक्कम-मालक’ का ‘वितक्कमालक’ है; जो अशुद्ध प्रतीत होता है ।

रहा है। इस अकेले के कारण पाँच सौ ऋषि फल-फूल के लिए न जाकर इस एक के द्वारा मँगवाए गए फलों से ही गुजारा चलाते रहे हैं।” यह कह पूर्वजन्म की बात

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो पाँच सौ ऋषियों के साथ पर्वत के नीचे रहने लगे। उस समय हिमालय प्रदेश में बड़ी गर्मी पड़ी। जहाँ तहाँ पानी सूख गया। पशु पानी न मिलने से कष्ट पाने लगे।

उन तपस्वियों में से एक तपस्वी ने उन (पशुओं) के व्यास-कष्ट को देख एक वृक्ष काट, उसमें से एक द्रोणि बना, पानी उलीच कर द्रोणि भर, उन्हें पानी दिया। बहुत से पशुओं के इकट्ठे होकर पानी पीने लगने पर तपस्वी को फल-मूल लाने के लिए जाने का समय न मिला। वह निराहार रह कर भी पानी पिलाता ही रहा।

पशुओं ने सोचा यह हमें पानी पिलाने के कारण फल-मूल के लिए जाने का समय नहीं पाता। निराहार रहने के कारण बहुत कष्ट पाता है। हम लोग एक निर्णय करें। उन्होंने सलाह की कि इसके बाद जो पानी पीने आए वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ फल-मूल अवश्य लाए।

उसके बाद प्रत्येक पशु अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठे मीठे आम, जामुन, कटहल आदि अवश्य लाता। उसके लिए लाया हुआ फल ढाई गाड़ियाँ भर होता। पाँच सौ तपस्वी उसे ही खाते। अधिक होता, छोड़ देते।

बोधिसत्त्व ने यह देख कहा—एक कर्तव्य-निष्ठ आदमी के कारण इतने तपस्वियों का बिना फल-मूल के लिए गए गुजारा चलता है। प्रयत्न करना ही चाहिए। इतना कह यह गाथा कही—

बायमेयेव पुरिसो न निब्बिदेय्य पण्डितो,
वायामस्स फलं यस्स भुत्ता अम्बा अनीतिहं॥

[आदमी को चाहिए कि प्रयत्न अवश्य करे। पण्डित आदमी विमुख न हो। प्रयत्न के फल को देखो—आम प्रत्यक्ष खाने को मिले।]

संक्षिप्तार्थ—पण्डितो, अपने कर्तव्य की पूर्ति में बायमेथेव, विमुख न हो। क्यों? प्रयत्न के कभी निष्फल न होने के कारण। बोधिसत्त्व ने 'प्रयत्न सफल होता ही है' ऋषियों को इस प्रकार सम्बोधन करते हुए कहा बायामस्स फलं पस्स कैसा? भुत्तो अम्बा अनीतिहं, अम्ब, कहने के लिए है, मतलब है नाना प्रकार के फल लाए गए, आम उनमें श्रेष्ठ होने से अम्ब कहा गया। यह जो पाँच सौ ऋषियों ने स्वयं जंगल न जा एक के लिए आए फलों को खाया, सो यह प्रयत्न का ही फल है। और वह अनीतिहं। इति ह (आस) इतिहास से। इतिहास से ही ग्रहण करना नहीं होता, उस फल को प्रत्यक्ष देखो।

बोधिसत्त्व ने ऋषियों को उपदेश दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कर्तव्य-निष्ठ तपस्वी यह भिक्षु था। गण-शास्ता मैं ही था।

१२५. कटाहक जातक

“बहुम्वि सो विकल्थेय्य . . .” यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शेखी बघारने वाले भिक्षु के बारे में कहा। उसकी कथा पूर्वोक्त सदृश ही है^१।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महाधन-शाली सेठ हुए। उसकी भार्य्या ने पुत्र को जन्म दिया। उसकी दासी ने भी उसी दिन पुत्र उत्पन्न किया। वे दोनों साथ साथ बढ़ने लगे। सेठ के लड़के के लिखना सीखते

^१ भीमसेन जातक (८०)।

समय, दास ने भी उसकी तस्ती ढोते हुए जाकर उसी के साथ लिखना सीखा, गिनना सीखा। दो तीन भाषाएँ (बोहार) सीखीं। क्रम से बढ़कर वह वचन-कुशल, भाषाविद्, सुन्दर तरुण हुआ। उसका नाम था कटाहक।

सेठ के घर में भण्डारी का काम करते हुए वह सोचने लगा कि यह लोग मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नहीं लेंगे। कुछ भी दोष देखेंगे, तो ताड़ेंगे, बाँध कर दाग देंगे और दास बनाकर काम लेंगे। इलाके में सेठ का मित्र एक सेठ है। क्यों न मैं सेठ की तरफ से एक चिट्ठी लेकर, वहाँ पहुँच 'मैं सेठ का लड़का हूँ' कह उस सेठ को धोका दे, उसकी लड़की से शादी कर सुखपूर्वक रहूँ।

उसने कागज ले उस पर अपने ही लिखा—मैं अमुक नाम का (सेठ) अपने पुत्र को तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा तुम्हारे और तुम्हारा मेरे साथ शादी का सम्बन्ध करना योग्य है। इसलिए आप इस लड़के को अपनी लड़की देकर वहीं बसा लें, मैं भी समय मिलने पर आऊँगा।

फिर इस चिट्ठी पर सेठ की अँगूठी की मुहर लगा इच्छानुसार मार्ग-व्यय तथा सुगन्धियाँ और वस्त्रादि ले प्रत्यन्त देश में जा सेठ के यहाँ पहुँच प्रणाम किया।

सेठ ने उसे पूछा—तात, कहाँ से आया है ?

“वाराणसी से।”

“किसका पुत्र है ?”

“वाराणसी सेठ का।”

“किस प्रयोजन से आया है ?”

कटाहक ने कहा—यह पत्र देखकर जान लें।

सेठ ने पत्र बाँच प्रसन्न हो ‘अब मेरा जीवन सफल हुआ’ कह उसे लड़की दे प्रतिष्ठित किया।

कटाहक का बड़ा परिवार था। वह यवागु-खाद्य अथवा वस्त्र गंध आदि के लाने पर झिड़कता था—‘इस तरह भी कहीं यवागु पकाया जाता है ? इस तरह भी कहीं खाद्य पकाया जाता है। और इस तरह भात ? ओह ! यह प्रत्यन्त देश के रहनेवाले ! शहरी न होने से ही यह लोग न कपड़ों पर स्त्री करना जानते हैं, न सुगन्धित पदार्थों को पीसना और न फूलों को गूथना ?’—इस प्रकार वह दर्जियों आदि की निन्दा करता।

बोधिसत्त्व ने दास को न देख पूछा—‘कटाहक नहीं दिखाई देता। कहाँ गया ?’

फिर उसे ढूँढ़ने के लिए आदमियों को चारों ओर भेजा। एक आदमी ने वहाँ जा उसे देख, पहचान अपने आपको छिपाए रख लौटकर बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व वह वृत्तान्त सुन, 'उसने अनुचित किया, जाकर उसे लेकर आता हूँ' सोच राजाज्ञा ले बहुत से लोगों को साथ ले चले।

सेठ प्रत्यन्त देश को जा रहे हैं, यह बात सब जगह फैल गई।

कटाहक ने जब यह सुना कि सेठ आ रहा है, तो सोचा कि वह और किसी कारण से नहीं आ रहा है। मेरे ही कारण वह आ रहा है। यदि मैं अब भाग जाऊँ तो फिर नहीं आ सकूँगा। इसलिए एक यही उपाय है कि मैं आगे जाकर स्वामी की सेवा कर उसे प्रसन्न करूँ।

उस समय से वह लोगों में बैठकर इस प्रकार बातें बनाने लगा—दूसरे मूर्ख लोग मातापिता के किए उपकार को भूल, उनके भोजन करने के समय उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न कर उनके साथ हैं। भोजन करने बैठ जाते हैं। हम तो मातापिता के भोजन करने के समय पानी का बर्तन ले जाते हैं, धूँढ़ने का बर्तन ले जाते हैं, (दूमरे) पात्र ले जाते हैं, पानी और पंखा लेकर खड़े रहते हैं। शौच के लिए जाते समय परदे की जगह तक पानी का बरतन लेकर जाते हैं। इस प्रकार स्वामी के प्रति जो जो दास के कर्तव्य होते हैं, उन सबको प्रगट किया।

इस तरह लोगों को समझा बोधिसत्त्व के प्रत्यन्त देश के समीप पहुँच जाने के समय अपने स्वसुर से कहा—“तात ! मेरे पिता आपके दर्शन के लिए आ रहे हैं। आप खाद्य भोजन तैयार कराएँ। मैं भेंट लेकर आगे जाता हूँ।” उसने “तात ! अच्छा” कह स्वीकार किया।

कटाहक ने बहुत सी भेंट ले जाकर बहुत से लोगों के साथ जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर भेंट अर्पण की।

बोधिसत्त्व ने भेंट स्वीकार कर कुशल समाचार पूछ हाजरी के समय तम्बू लगवा शौच के लिए परदे की जगह में प्रवेश किया। कटाहक ने अपने अनुयायियों को पीछे छोड़ा। पानी ले बोधिसत्त्व के पास पहुँचे। वहाँ उनके पानी छू चुकने पर पैरों में गिर कर कहा—“स्वामी मैं आपको जितना चाहूँ उतना धन दूँगा। मुझे बदनाम न करें।’ बोधिसत्त्व उसकी सेवा से प्रसन्न हो बोले—‘मत डरो। मुझसे तुम्हें कुछ हानि न होगी।’ इस प्रकार उसे तसल्ली दे प्रत्यन्त-नगर में प्रवेश किया। बड़ा आदर-सत्कार हुआ।

कटाहक दास की तरह से उसकी सब प्रकार की सेवा करता रहा ।

एक बार जब बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे हुए थे प्रत्यन्त-देश के सेठ ने कहा—
“महासेठ ! मैंने तुम्हारे पत्र को देखकर ही तुम्हारे लड़के को अपनी लड़की दे दी ।”
बोधिसत्त्व ने कटाहक को पुत्र ही बना उस (अवसर) के योग्य प्रिय वचन कह सेठ को सन्तुष्ट किया । लेकिन फिर उसके बाद से वह कटाहक का मुँह नहीं देख सका ।

एक दिन बोधिसत्त्व ने सेठ की लड़की को बुलाकर कहा—अम्म ! आ ! मेरे सिर में जुएँ हैं, उन्हें चुग । उसके आकर जुएँ चुगती हुई खड़ी होने पर पूछा—“अम्म ! क्या मेरा पुत्र तेरे दुःख-सुख में आलस्य रहित हो साथ देता है ? दोनों जने मिलकर प्रसन्नता-पूर्वक रहते हो न ?”

“तात ! सेठ के पुत्र में और कोई दोष नहीं । केवल आहार की निन्दा करता है ।”

“अम्म ! वह सदैव से दुःख देनेवाला है । लेकिन मैं तुझे उसका मुँह बन्द करने का मन्त्र देता हूँ । तू उसे अच्छी तरह सीख । मेरे पुत्र के भोजन की निन्दा करने के समय, जैसे सीखा वैसे ही उसके सामने खड़ी होकर कहना”—इस प्रकार एक गाथा सिखा कुछ दिन रह बाराणसी चले गए ।

कटाहक भी बहुत सा खाद्य-भोज्य ले, उनके पीछे पीछे जा बहुत सा धन देकर लौट आया ।

बोधिसत्त्व के जाने के बाद से कटाहक और भी अभिमानी हो गया । एक दिन जब सेठ की लड़की नाना प्रकार के अच्छे अच्छे भोजन ले कड़खी से परोस रही थी उसने भोजन की निन्दा आरम्भ की । सेठ की लड़की ने जैसे बोधिसत्त्व से सीखी थी, उसी प्रकार यह गाथा कही—

बहुम्वि सो विकत्थेय्य अञ्जं जनपदं गतो,
अन्वागतवान् दूसेय्य भुञ्ज भोगे कटाहक ॥

[दूसरे देश में जाकर वह बहुत बकता है । फिर आकर उसे दोषी ठहरा दे ;
(इसका ब्याल कर) कटाहक जो भोग मिल रहा है, उसका उपभोग कर ।]

बहुम्वि सो विकत्थेय्य अञ्जं जनपदं गतो, जो अपने जन्म-स्थान से किसी ऐसे दूसरे देश में गया रहता है, जहाँ उसकी जाति नहीं जानते, वह बहुत बकता है ।

धोका देने की ठगने की बात करता है। अन्बागन्बान दूसेव्य, इस बार स्वामी की अगवानी करके दास कर्म करने के कारण चाबुक से पीटे जा कर पीठ की चमड़ी उधेड़ी जाने से और दाग दिये जाने से बच गया। यदि अनाचार करेगा तो दुबारा आने पर तेरा स्वामी तुझे दोषी ठहरायेगा, इस घर में आकर चाबुक से सजा देगा। दाग देकर तथा तेरी जाति प्रकट करके तुझे खराब करेगा, पीटेगा। इसलिए इस अनाचार को छोड़ भुञ्ज भोगे कटाहक ! फिर बाद में अपना दासत्व प्रगट कराकर मत पछताना, यही यहाँ सेठ के कहने का मतलब है।

सेठ की लड़की यह सब नहीं जानती थी। वह जैसे सीखा था वैसे शब्द-मात्र कहती थी।

कटाहक ने सोचा, निश्चय से सेठ ने मेरा नाम बताकर इसे सब कह दिया होगा। उसके बाद से फिर उसकी भोजन की निन्दा करने की हिम्मत न हुई। मान-मर्दित होकर वह यथा-प्राप्त भोजन करता हुआ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कटाहक बकवादी भिक्षु था। बाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२६. असिलखण जातक

“तथेवेकस्स कल्याणं” यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल-नरेश के तलवार के लक्षण कहनेवाले ब्राह्मण के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह (ब्राह्मण) राजा के पास लोहारों के तलवार साने के समय तलवार को सूँघकर तलवार का लक्षण बताता था। जिनके हाथ से कुछ प्राप्त हो जाता उनकी

तलवार को वह सुलक्षण और माङ्गलिक कहता, जिनके हाथ से कुछ न मिलता उनकी तलवार को अमाङ्गलिक बता निन्दा करता ।

एक शिल्पी तलवार बना उसके म्यान में मिर्चों का बारीक चूर्ण भर राजा के पास तलवार लाया । राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर कहा—तलवार की परीक्षा करें ।

जब ब्राह्मण तलवार निकालकर सूंघने लगा तो मिर्चों के चूर्ण के उसकी नाक को लगने से उसे छींक आई । छींक आने से उसकी नाक तलवार से लगी ; और उसके दो टुकड़े हो गए ।

उसकी इस तरह नाक कटने की बात भिक्षु-संघ में प्रकट हो गईं । एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—आयुष्मानो ! राजा के तलवार का लक्षण बतानेवाले ने तलवार का लक्षण बताते हुए नाक कटवा ली ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रह हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, इस ब्राह्मण ने न केवल अभी तलवार सूंघते हुए नाक कटवाई, पहले भी कटवाई है' कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, उसके यहाँ तलवार का लक्षण कहनेवाला एक ब्राह्मण था । (इसके आगे की सारी कथा 'वर्तमान-कथा' की तरह ही है ।) राजा ने उसे वैद्य के पास भेजकर उसकी नाक की चिकित्सा कराई । फिर लाख से उसकी नाक के सदृश ही एक नाक बनवाकर उसे फिर अपनी सेवा में नियुक्त किया ।

बाराणसी नरेश को कोई पुत्र न था । एक लड़की और एक भानजा था । उन दोनों को भी उसने अपने पास ही रख कर पाला था । एक साथ रहने के कारण वह परस्पर प्रेम में बँध गए ।

राजा ने आमात्यों को बुलाकर सलाह की कि मेरा भानजा राज्य का उत्तराधिकारी है ही, इसे ही लड़की देकर इसका राज्याभिषेक कर दिया जाए । लेकिन फिर सोचा, भानजा तो हर तरह से आत्मीय है ही, इसके लिए कोई दूसरी राजकुमारी लाकर दी जाए । फिर इसका अभिषेक किया जाए । और अपनी लड़की किसी दूसरे राजा को दी जाए । इस प्रकार हमारे रिश्तेदार बहुत होंगे ; और हम ही दोनों राज्यों

के स्वामी होंगे। उसने मन्त्रियों की सलाह से निश्चय किया कि दोनों को पृथक पृथक रखना चाहिए; एक को एक घर में दूसरे को दूसरे में रक्ख। सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उनका परस्पर का आकर्षण और भी बढ़ गया।

राजकुमार सोचने लगा कि किस उपाय से मामा की लड़की को राज-घर से निकलवाया जा सकता है? उसे एक उपाय सूझा। एक भाग्य बतानेवाली को बुलवाकर उसने उसे एक हजार मुद्राएँ दीं। भाग्य बतानेवाली ने पूछा—“मैं क्या कर सकती हूँ?”

“अम्म! तेरे करने से सफलता निश्चिन है। कोई बात कहकर ऐसी विधि लगा जिससे मेरा मामा राज-कन्या को घर से बाहर लाए।”

“स्वामी, अच्छा मैं राजा के पास जाकर कहूँगी कि तुम्हारी कन्या पर ग्रह है। इतने समय के बाद नहीं रहेगा। मैं अमुक दिन राज-कन्या को रथ पर चढ़ाकर हथियार बन्द बहुत से आदमियों को साथ ले, अनेक अनुयायियों सहित श्मशान में जाऊँगी। वहाँ मण्डल-चौकी के नीचे श्मशानशय्या पर मुर्दे को लिटा, ऊपर की शय्या पर राज-कन्या को बिठा सुगन्धित जल के एक सौ आठ घड़ों से स्नान करवा कर ग्रह उतारूँगी; ऐसा कह कर मैं राज-कन्या को श्मशान ले जाऊँगी। तू हमारे वहाँ जाने के दिन हमसे भी पहले ही थोड़ा मिर्ची का चूर्ण लेकर, हथियारबन्द अपने आदमियों के साथ रथ पर चढ़कर श्मशान-भूमि में जाना। वहाँ पहुँच रथ को श्मशान-द्वार पर ही एक तरफ छोड़, हथियारबन्द आदमियों को श्मशान-वन में छिपा, स्वयं श्मशान में जाकर वहाँ मण्डलपीठ के पास मुर्दे की तरह पट पड़ रहना। मैं वहाँ आकर तेरे ऊपर मञ्च बिछा राजकन्या को उठा उस पर सुलाऊँगी। तू उस समय मिर्च-चूर्ण को दो तीन बार नाक पर लगा छींकना। तेरे छींकने के समय हम लोग राजकन्या को छोड़ कर भाग जाएँगे। तब आकर राजकन्या को सिर से नहला, अपने भी नहा उसे लेकर घर जाना।” उसने अच्छा कह स्वीकार किया।

राजा को जाकर जब उसने सब बात कही, तो राजा ने भी स्वीकार किया। राजकन्या से भी वह रहस्य कहा तो वह भी मान गई। उसने बाहर निकलने के दिन राजकुमार को सूचना दे अनेक अनुयायियों के साथ जाते हुए पहरेंदार आदमियों को डराने के लिए कहा—

मेरे, राजकन्या को चारपाई पर लिटाने के समय चारपाई के नीचे पड़ा हुआ

मुर्दा छींकेंगा; और छींकने के बाद चारपाई के नीचे से निकल जिसे पहले देखेगा उसे ही पकड़ेगा। इसलिए होशियार रहना।

राजकुमार पहले ही पहुँचकर जैसे कहा गया था, वैसे ही लेट रहा। भाग्य बतानेवाली ने राजकन्या को मण्डलपीठ की जगह पर जाते हुए 'डर मत' इशारा कर चारपाई पर लिटाया।

उसी समय कुमार ने मिर्च-चूर्ण नाक पर फेंक छींक मारी। उसके छींक मारते ही (वह) भाग्य बतानेवाली राज कन्या को छोड़ बड़ा शोर मचाती हुई सबसे पहले भागी। उसके भागने पर एक भी न ठहर सका। जिसके पास जो शस्त्र थे उन्हें छोड़ सभी भाग गए।

राजकुमार जैसे निश्चय किया गया था उसके अनुसार सब करके राजकन्या को अपने घर ले गया। भाग्य बतानेवाली ने जाकर राजा को सब हाल कहा। राजा ने स्वीकार किया, 'बोला—यूँ भी मैंने उसे उसी के लिए पाला था। दूध में घी पड़ने जैसा हुआ। आगे चलकर भानजे को राज्य दे अपनी कन्या को उसकी पटरानी बनाया। वह उसके साथ मेज से रहता हुआ धर्म-पूर्वक राज्य करता रहा।

वह तलवार के लक्षण बतानेवाला भी उसी की सेवा में रहता था। एक दिन राज्य-सेवा में आ सूर्य के सामने खड़े हो सेवा-कार्य करते हुए उसकी नाक की लाख पिघल गई। नकली नाक जमीन पर गिर पड़ी। वह शर्म के मारे सिर नीचा करके खड़ा हुआ।

राजा ने हँसते हुए कहा—आचार्य्य सोच मत करो। छींकना एक के लिए कल्याणकर होता है, दूसरे के लिए बुरा। तुम्हारे छींकने पर नाक पृथक हो गई; लेकिन हमने छींका तो हमें मामा की लड़की और राज्य मिला। इतना कह यह गाथा कही—

तथेवैकस्स कल्याणं तथेवैकस्स पापकं,
तस्मा सव्वं न कल्याणं सव्वं वापि न पापकं ॥

[वही किसी के लिए कल्याणकारक है, वही किसी के लिए बुरा। इसलिए न सब कल्याणकारक ही है, न सब बुरा ही है।]

तबेबेकस्स तबेबेकस्स—यह भी पाठ है। दूसरे पद में भी ऐसे ही।

इस प्रकार इस गाथा द्वारा उसने वह बात कही। फिर दान आदि पुण्यकर्म करके यथाकर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक में जो बहुत सी अच्छी बुरी मान्यताएँ हैं उन सबका अनेकांशिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाय।

उस समय का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला तो यह अब का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला ही था। हाँ भानजा-राजा मैं ही था।

१२७. कलाण्डुक जातक

“ते देसा तानि वत्थूनि . . .” यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक^१ की कथा की तरह ही हैं।

हाँ, इस जातक में बाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लड़की से विवाह कर बड़े ठाट-बाट के साथ रहने के समय; बाराणसी के सेठ के उसे ढूँढ़वाने पर भी उसके न मिलने पर, बाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल-क्रीड़ा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्यशाली लोग जब जल-क्रीड़ा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीड़ा

^१ कटाहक जातक (१२५)

करते रहने पर उन्हें शीत नहीं लगता था । यह कलण्डुक उस दूध से मुँह भर उससे कुरला कर उसे थूक देता; लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठ-कन्या के सिर पर थूकता था ।

उस तोते के बच्चे ने भी नदी के किनारे एक गूलर की शाखा पर बैठ कलण्डुक को पहचान लिया और देखा कि वह सेठ-कन्या के सिर पर थूक रहा है । उसने कहा—“अरे ! कलण्डुक ! दास ! अपनी जाति और (पूर्व) निवास-स्थान को याद कर । दूध से मुँह भर, उसका कुरला कर ऊँची जातिवाली सुख में पली हुई सेठ की कन्या के सिर पर मत थूक । तू अपनी हैसियत को नहीं देखता ?” फिर यह गाथा कही—

ते बेसा तानि बत्थूनि अहञ्च बनगोचरो,
अनुविच्च खो तं गण्हेय्यं पिब खीरं कलण्डुक ॥

[वह देश और वस्तुएँ (=कोख) । मैं वनचर पक्षी । तुझे पहचान कर पकड़ लेंगे । कलण्डुक दूध पी ।]

ते बेसा तानि बत्थूनि, यह माता के कोख के बारे में कहा है । भावार्थ यह है—जहाँ तू रहा है वह क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है ; अथवा जहाँ तू प्रतिष्ठित रहा है वह भी क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है । तू दासी की कोख में रहा और प्रतिष्ठित हुआ । अहञ्च बनगोचरो—मैं तिरस्चीन योनि में पैदा होकर भी यह सब जानता हूँ ; यह प्रकट करता है । अनुविच्च खो तं गण्हेय्यं, इस प्रकार अनाचार करते हुए को देख जब मैं जाकर कहूँगा तो पहचान कर वह तेरे स्वामी आकर तुझे ताड़ कर और दाग देकर पकड़ कर ले जायेंगे । इसलिए अपनी हैसियत देखकर सेठ की लड़की के सिर पर बिना थूके हुए पिब खीरं कलण्डुक; नाम से सम्बोधन करता है कि (हे कलण्डुक दूध पी) ।

कलण्डुक ने भी तोते के बच्चे को पहचानकर ‘यह मुझे प्रकट कर रहा है’ सोच भयभीत हो कहा—आइए ! स्वामी ! कब आए ? तोते के बच्चे ने सोचा यह मेरा हितचिन्तक होकर नहीं बुला रहा है । यह मेरी गरदन मरोड़कर मार डालना चाहता है । यह समझकर कहा कि मुझे तुझसे काम नहीं है ।

तब वह उड़ कर बाराणसी गया और जैसे जैसे देखा था सेठ को विस्तार-पूर्वक सब कहा ।

सेठ बोला—उसने अनुचित किया । और आज्ञा दे उसे बाराणसी मँगवा दास बना कर रक्खा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का कलण्डुक यह भिक्षु था । बाराणसी सेठ तो मैं ही था ।

१२८. बिळारवत जातक

“यो वे धम्मं धजं कत्वा . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उसके ढोंग की चर्चा चलने पर ‘भिक्षुओं, केवल अब ही नहीं ; पहले भी यह ढोंगी ही रहा है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया । बड़े होने पर वह बढ़कर सूअर के बच्चे की तरह हो अनेक सौ चूहों के साथ जंगल में रहने लगा ।

इधर उधर घूमते हुए एक श्रृगाल ने उस चूहे के समूह को देखकर सोचा कि इन चूहों को ठग कर खाऊँगा । यह सोच वह चूहों के बिल से थोड़ी ही दूर पर सूर्याभिमुख हो, मुँह खोल, हवा पीते हुए की तरह एक ही पाँव से खड़ा हुआ ।

इधर उधर भोजन के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देख सोचा, यह सदा-चारी होगा और उसके पास जाकर पूछा—

“आपका, भन्ते ! क्या नाम है ?”

“मेरा नाम है धार्मिक ।”

“चारों पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्यों खड़े हैं ?”

“मेरे चारों पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा ; इसलिए एक ही पैर से खड़ा होता हूँ ।”

“मुँह खोले क्यों खड़े हैं ?”

“हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते ?”

“सूर्य की ओर मुँह कर के क्यों खड़े हैं ?”

“सूर्य को नमस्कार कर रहा हूँ ।”

बोधिसत्त्व ने सोचा यह सदाचारी है । उसके बाद से चूहों के समूह के साथ प्रातः सायं उसकी सेवा में जाने लगा ।

उसकी सेवा कर लौटने के समय शृगाल सबसे पिछले चूहे को पकड़कर मांस खा, निगल कर, मुँह पोछ खड़ा हो जाता । क्रम से चूहों का दल कम पड़ गया । चूहे सोचने लगे कि पहले हमें यह बिल पर्याप्त न होता था, सट सट कर खड़े होते थे ; अब खुल कर खड़े होते हैं तब भी बिल नहीं भरता । क्या मामला है ? उन्होंने बोधिसत्त्व से सारा हाल कहा ।

बोधिसत्त्व ने ‘चूहे किस कारण कम हो गए’ सोचते हुए शृगाल पर शक किया । फिर जाँच करने के लिए (शृगाल की) सेवा (से लौटने) के समय बाकी चूहों को आगे कर स्वयं पीछे रहा । शृगाल उस पर उछला । अपने को पकड़ने के लिए शृगाल को उछलता देख बोधिसत्त्व ने रुककर कहा—

“भो शृगाल ! तेरा यह व्रत धार्मिक नहीं है । तू दूसरों की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके कहता है ।” इतना कह यह गाथा कही—

यो वे धम्मं धजं कत्वा निगूळ्हो पापमाचरे

विस्सासयित्वा भूतानि बिळारं नाम तं वतं ॥

[जो धर्म की ध्वजा बनाकर, प्राणियों में विश्वास उत्पादन कर छिप कर पाप करता है ; उसका व्रत बिल्ला-व्रत है ।]

यो वे, क्षत्रिय आदियों में कोई भी । धम्मं धजं कत्वा, दस कुशल धर्मों की ध्वजा बनाकर, उन्हें करता हुआ उठाकर दिखाता हुआ, विस्वासयित्वा, यह सदाचारी है, ऐसा विश्वास पैदा करके बिळारं नाम तं वत्तं, इस प्रकार धर्म की ध्वजा बना कर छिपकर पाप करने वाले का व्रत ढोंग कहलाता है ।

चूहों के राजा ने इस प्रकार कहते ही कहते उछलकर उसकी गरदन पर चढ़, ठोड़ी के नीचे की अन्दर की गले की नली को डसकर गले की नली को फाड़ मार डाला । चूहों के दल ने रुक कर शृगाल को मुर मुर करके खा डाला । पहले आए हुआ को ही शृगाल का माँस मिला, पीछे आए हुआ को नहीं मिला । उसके बाद से चूहों का दल निर्भय हो गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का शृगाल यह ढोंगी भिक्षु था । चूहों का राजा तो मैं ही था ।

१२९. अग्निक जातक

“नार्यसिखा पुञ्जहेतु...” यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के ही बारे में कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व चूहों के राजा हो जंगल में रहते थे ।

एक शृगाल जंगल में आग लगने पर जब भागने में असमर्थ रहा, तो एक वृक्ष से सिर टिकाकर खड़ा हो गया । उसके सारे शरीर के बाल जल गए । वृक्ष से लगे हुए सिर पर शिखा की तरह से कुछ बाल बच गए । उसने एक दिन एक पर्वतीय तालाब में पानी पीने हुए अपनी छाया के साथ शिखा को देखकर सोचा अब मुझे

पूँजी मिल गई। फिर जंगल में घूमते हुए चूहों के बिल को देख 'इन्हें धोखा देकर खाऊँगा' सोच उक्त प्रकार से ही कुछ दूर पर जाकर खड़ा हो गया।

चारे के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देखकर सोचा—यह शीलवान है।
और पास जाकर पूछा—

“तुम्हारा क्या नाम है?”

“मेरा नाम है अग्नि-भारद्वाज।”

“तू किस लिए आया है?”

“तुम्हारी रक्षा करने के लिए।”

“तू हमारी रक्षा कैसे करेगा?”

“मैं उँगलियों पर गिनना जानता हूँ। तुम्हारे प्रातःकाल निकल कर भोजन खोजने के लिए जाते समय 'इतने हैं' गिनकर फिर लौटने के समय गिनींगा। इस प्रकार प्रातः सायं गिनता हुआ रक्षा करूँगा।”

“अच्छा तों मामा रक्षा कर।”

उसने स्वीकार कर उनके निकलने के समय एक, दो, तीन गिनकर फिर लौटने के समय उसी तरह गिनकर सबसे अन्तिम चूहे को खाना आरम्भ किया। शेष (कथा) पहले ही की तरह है। इस (कथा) में चूहों के राजा ने रुक कर कहा भो अग्नि भारद्वाज! तूने जो यह माथे पर शिखा रक्खी है, यह धर्म के लिए नहीं रक्खी। यह पेट के लिए रक्खी है। इतना कह यह गाथा कही—

नायं सिखा पुञ्जहेतु घासहेतु अयं सिखा,
नंगदठगणनं याति अलं ते होतु अग्निक॥

[यह शिखा पुण्य के लिए नहीं है; पेट के लिए है। तेरी गणना उँगलियों पर पूरी नहीं उतरती। अग्निक! अब तेरी गणना बस करे।]

नंगदठगणनं याति, नङ्गदठ गणना का मतलब है उँगलियों की गणना। यह चूहों का दल उँगलियों की गणना पर नहीं जाता है, नहीं प्राप्त होता है, नहीं पूरा उतरता है, क्षय को प्राप्त होता है। अलं ते होतु अग्निक भृगुल को नाम से बुलाता है कि इतने तेरे लिए पर्याप्त हों। अब इससे आगे तू चूहे न खा पाएगा। अथवा

हमारे साथ तुम्हारा रहना बन्द हुआ ; अब हम साथ न बसेंगे। शेष पहले ही की तरह से है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय भी श्रृगाल यही भिक्षु था। चूहों का राजा तो मैं ही था।

१३०. कोसिय जातक

“यथावाचाय भुञ्जस्सु...” यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-निवासी एक स्त्री के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक श्रद्धालु ब्राह्मण उपासक की ब्राह्मणी थी ; बहुत दुश्चरित्र, पापिन। रात को दुराचार करती। दिन में कुछ न कर रोग का बहाना बना बड़बड़ाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—“भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है ?”

“मुझे वायु बीधती है।”

“तो तुझे क्या क्या चाहिए ?”

“चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यागु-भात-तैल आदि।”

जो जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला-लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर जाने के समय जारों के साथ गुजारती। ब्राह्मण सोचता कि इसके शरीर में चुभनेवाली वायु का अन्त ही होता दिखाई नहीं देता।

एक दिन वह गन्ध-माला आदि ले जेतवन जा शास्ता की वन्दना तथा पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—“क्यों ब्राह्मण दिखाई नहीं देता ?”

“भन्ते ! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु बींघती है। सो मैं उसके लिए घी-तैल तथा अच्छे अच्छे भोजन खोजता हूँ। उसका शरीर मोटा गया है। चमड़ी निखर आई है। लेकिन बात-रोग का अन्त होता नहीं दिखाई देता। मैं उसकी सेवा में ही लगा रहता हूँ। इसीलिए यहाँ आने का अवकाश नहीं मिलता।”

शास्ता ने ब्राह्मणी के दुश्चरित्र होने की बात जान कहा—“ब्राह्मण ! इस प्रकार पड़ी हुई स्त्री के रोग के न शान्त होने पर पूर्व-जन्म में भी तुझे बुद्धिमानों ने बताया था कि यह-यह औषधि करनी चाहिए, लेकिन वह पूर्व-जन्म की बात होने के कारण तू उस पर ध्यान नहीं देता।”

उस ब्राह्मण के पूछने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मणों के एक बड़े कुल में पैदा हुए। मयाने होने पर तक्षशिला जा, वहाँ सब विद्याएँ सीख लौटकर बनारस में प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। एक सौ राजधानियों के क्षत्रिय ब्राह्मण कुमार प्रायः उसी के पास विद्याएँ सीखते।

एक जनपदवासी ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व से तीनों वेद और अट्ठारह विद्याएँ सीखीं। वह वाराणसी में ही बस कर प्रतिदिन दो तीन बार बोधिसत्त्व के पास आता। उसकी ब्राह्मणी दुश्चरित्र थी, पापिन थी। शेष सारी कथा वर्तमान कथा ही की तरह है। हाँ, बोधिसत्त्व ने यह सुन कि ‘इस कारण से उपदेश सुनने आने का समय नहीं मिलता’ और यह समझकर कि वह लड़की उसे धोखा देकर लेट रहती है, उसके अनुकूल औषधि बताने का विचार कर कहा—

“तात ! अब से तू उसे दूध, घी, रस आदि मत दे। गोमूत्र में त्रिफला आदि और पाँच प्रकार के पत्ते रखकर, उनका काढ़ा बनाकर, औषधि में ताँबे की गन्ध आने तक ताँबे के नए बर्तन में रख, रस्सी, जोत या किसी वृक्ष की ही लता ले, उसे जाकर कहना—यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या तो इसे पी; नहीं तो जो भोजन तू करती है उसके अनुसार काम कर। और यह गाथा भी कहना। यदि दवाई न पीए तो उसे रस्सी से वा जोत से अथवा लता से कुछ प्रहार लगाकर, केशों से पकड़कर, खींचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठकर वह काम करने लगोगी।”

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कथनानुसार औषधि बना कहा—“भद्रे ! यह औषधि पी ।”

“यह औषधि तुझे किसने कही ?”

“आचार्य्य ने, भद्रे !”

“इसे ले जाओ, नहीं पीऊँगी ।”

ब्राह्मण ने कहा, तू स्वच्छा से नहीं पीएगी । रस्सी लेकर बोला, या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर ।

इतना कह यह गाथा कही—

यथावाचाव भुञ्जस्सु यथाभुत्तञ्च व्याहर
उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये ॥

[जैसे कहती है, वैसे दवाई पी, अथवा जैसे खाती है वैसे काम कर । कोसिये ! तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता ।]

यथावाचाव भुञ्जस्सु जैसे तू कहती है वैसे खा । तू कहती है कि मुझे बात बीघता है तो उसके अनुसार खा । यथा वाचं वा, यह भी पाठ ठीक बैठता है । यथा वाचाय, यह भी पाठ है । अर्थ सर्वत्र यही है । यथा भुत्तञ्च व्याहर, जैसे खाया है उसके अनुसार काम कर । ‘मैं अरोगी हूँ’ कहके घर के काम कर । यथा-भुत्तञ्च, यह भी पाठ है । मैं निरोग हूँ यह सत्य बात कहकर भी काम कर । उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये, यह जो तेरी वाणी है कि मुझे बात बीघता है और यह जो तू अच्छे-अच्छे भोजन खाती है, यह दोनों तेरे लिए ठीक नहीं हैं । इस-लिए उठकर काम कर । कोसिये, उसे गोत्र से सम्बोधन करता है ।

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा कि अब आचार्य्य का ध्यान आकृष्ट हो गया है । अब मैं इसे धोका नहीं दे सकती । अब मैं उठकर काम करूँगी । वह उठकर काम करने लगी । आचार्य्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान ली । अब मैं ऐसा नहीं कर सकती । आचार्य्य के प्रति गौरव होने से उसने पाप-कर्म करना छोड़ दिया और शीलवान् हो गई ।

उस ब्राह्मणी ने भी सोचा कि अब मुझे सम्यक् सम्बुद्ध ने जान लिया । उसने फिर शास्ता के प्रति गौरव का भाव होने से दुराचार नहीं किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय के पति-पत्नी अब के पति-पत्नी थे । आचार्य्य मैं ही था ।

पहला परिच्छेद

१४. असम्पदान वर्ग

१३१. असम्पदान जातक

“असम्पदानेनितरीतरस्स . . .” यह (गाथा) शास्ता ने बेलुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु धर्मसभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—आयुष्मानो ! देवदत्त अकृतज्ञ है। तथागत के सद्गुणों को नहीं जानता। शास्ता ने आकर पूछा—

“भिक्षुओ ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नहीं है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है।”

—इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में मगधदेश के राजगृह नगर में किसी मगधनरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस (राजा) के ही सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड़ धन था। नाम था सङ्खसेठ। वाराणसी में भी पिण्डिय सेठ नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड़ धन था। वे दोनों परस्पर मित्र थे।

उनमें से वाराणसी के पिण्डिय सेठ को किसी कारण से कोई खतरा आ पड़ा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। आश्रयरहित रह गया। तब वह अपनी स्त्री को ले, सङ्खसेठ के पास आने के विचार से वाराणसी से निकल पैदल ही राजगृह पहुँच सङ्खसेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही 'मेरा मित्र आया है' पहचान गले मिल आदर सत्कार करवाया। फिर कुछ दिन बिताकर पूछा—“मित्र कैसे आए?”

“सौम्य, मुझ पर खतरा आ पड़ा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दें।”

“मित्र, अच्छा डरें मत” कह उसने खजाना खुलवा, चालीस करोड़ हिरण्य दिलवा, उसके साथ अपने पास जो कुछ भी वस्त्र आदि तथा जानदार और बेजान वस्तु थी सभी बाँटकर आधी-आधी दी। वह उस धन को ले फिर वाराणसी लौट रहने लगा।

आगे चलकर सङ्घसेठ पर भी वैसा ही खतरा आ पड़ा। उसने अपने लिए सहारा ढूँढ़ते हुए सोचा—मैंने अपने मित्र का बहुत उपकार किया। आधी जायदाद दे दी। वह मुझे देखकर त्यागेगा नहीं। मैं उसके पास चलूँ।

उसने अपनी स्त्री के साथ पैदल ही वाराणसी पहुँचकर कहा—“भद्रे, तेरे लिए यह अच्छा नहीं है कि तू मेरे साथ गली-गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूँगा, तू पीछे उस पर बड़े ठाट से आना।” उसे एक शाला में बिठा स्वयं नगर में दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला—“आ जाए।” उसे देखकर न वह आसन से उठा न स्वागत ही किया; केवल इतना पूछा—“क्यों आया है?”

“तुम्हें देखने आया हूँ।”

“निवास स्थान कहाँ ठीक किया है?”

“अभी कहीं ठीक नहीं हुआ है। सेठानी को शाला में बिठाकर आया हूँ।”

“यहाँ तुम्हारे ठहरने को जगह नहीं। सीधा लेकर किसी जगह पका खाकर चले जाओ। फिर मेरे पास न आना”—इतना कह अपने एक दास को आज्ञा दी कि मेरे मित्र के पल्ले में एक तूम्बा भर भूसा बाँध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाड़ी लाल चावल छटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड़ धन लेकर आए अकृतज्ञ महाचोर ने मित्र को केवल एक तूम्बा भर भूसा दिलवाया। दास एक टोकरी में तूम्बा भर भुस डाल बोधिसत्त्व के पास गया।

बोधिसत्त्व ने सोचा—यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड़ धन पाकर अब तूम्बा भर भूसा दे रहा है। इसे लूँ अथवा न लूँ? उसे विचार हुआ—यह

तो अकृतज्ञ है, मित्रद्रोही है, कृत उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तूम्बा भर भूसा बुरा होने के कारण नहीं ग्रहण करता हूँ, तो मैं भी मैत्री-सम्बन्ध को तोड़नेवाला होता हूँ। इसलिए मैं इसके दिए तूम्बा भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूँगा।

उसने तूम्बा भर भूसे को अपने पल्ले में बाँध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री ने पूछा—आर्य्य, तुम्हें क्या मिला?

“भद्रे! हमारे मित्र पिळ्ळिय सेठ ने हमें तूम्बा भर भूसा दे आज ही बिदा कर दिया।”

उसने रोना आरम्भ किया—आर्य्य! इसे लिया ही क्यों? क्या चालीस करोड़ धन का बदला यही है?

बोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे, रो मत। मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, अपनी ओर से उसे बनाए रखने के लिए, ग्रहण किया है। तू क्यों सोच करती है।

—इतना कह यह गाथा कही—

असम्पदानेनितरोत्तरस्स
बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,
तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं
मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सतायं ॥

[ऐसी वैसी वस्तु स्वीकार न करने से मूर्ख आदमी के मित्र मित्र नहीं रहते। इसलिए मैं अर्धमान भूसा ले आया हूँ। मेरा मैत्री-सम्बन्ध न टूटे। वह शाश्वत बना रहे।]

असम्पदानेन, परस्वर का लोप होकर सन्धि हुई है, अर्थ है ग्रहण न करने से। इतरोत्तरस्स जिस किसी अच्छी बुरी चीज के। बालस्स मित्तानि कली भवन्ति, मूढ़, अप्रज्ञावान् के मित्र स्खलित हो जाते हैं, मनहूस से हो जाते हैं, मतलब टूट जाते हैं। तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं, इसी कारण से प्रकट करता है कि मैं मित्र का दिया हुआ तूम्बा भर भुस ले आया हूँ। आठ नाळि को मान कहते हैं। चार

नालियों को अर्ध-भान; और चार ही नालियों को तूम्बा; इसीलिए कहा तूम्बा भर भूसा। मा मे मिति जीयित्य सस्तताय, मेरे मित्र से मेरा मैत्री-भाव न टूटे। हमेशा बना रहे।

ऐसा कहने पर भी सेठानी रोती ही रही। उसी समय सङ्घसेठ द्वारा पीळिय सेठ को दिया गया एक दास शाला के दरवाजे के पास से गुजर रहा था। उसने सेठानी के रोने की आवाज सुनी। अन्दर जाकर जब उसने देखा कि उसके स्वामी हैं तो पैरों पर गिर पड़ा और रोने-चिल्लाने लगा। उसने पूछा—“स्वामी! यहाँ कैसे आए?” सेठ ने सब हाल कह दिया। दास बोला—स्वामी, है, चिन्ता न करें। इस प्रकार दोनों को दिलासा दे अपने घर ले गया। वहाँ सुगन्धित जल से नहलाया, खिलाया। फिर अन्य सब दासों को खबर कर दी कि स्वामी आए हैं। कुछ दिन बिताकर सभी दासों को साथ ले वह राजा के यहाँ पहुँचा और शोर किया।

राजा ने बुलवाकर पूछा—यह क्या है?

उन्होंने वह सब हाल राजा को कह दिया। राजा ने उनकी बात सुन दोनों सेठों को बुलवा सङ्घसेठ को पूछा—

“महासेठ! क्या तूने सचमुच पिळिय सेठ को चालीस करोड़ धन दिया?”

“महाराज! मेरी आशा लगा जब मेरा मित्र मेरे पास राजगृह आया तो मैंने उसे न केवल चालीस करोड़ धन ही दिया बल्कि जितना भी मेरे पास धन था, चाहे जानदार चाहे बेजान सभी के दो बराबर हिस्से कर एक हिस्सा दिया।”

राजा ने पिळिय सेठ से पूछा—क्या यह सच है?

“देव! हाँ ठीक है।”

“तेरी ही आशा लगाकर तेरे पास आने पर तूने भी इसका कोई सत्कार सम्मान किया?”

वह चुप रहा।

“तूने तूम्बा भर भूसा इसके पल्ले में डलवाकर दिया है?”

उसे भी सुनकर वह चुप ही रहा।

राजा ने मन्त्रियों के साथ सलाह करके कि क्या करना चाहिए, सेठ की निन्दा कर आज्ञा दी—जाओ, पिळिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सब सङ्घसेठ को दे दो।

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज ! मुझे पराया धन नहीं चाहिए। जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दे।

राजा ने बोधिसत्त्व का धन दिलवा दिया।

बोधिसत्त्व ने अपना दिया हुआ सब धन ले, दास-समूह सहित राजगृह जाकर कुटुम्ब बसाया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिळ्ळिय सेठ देवदत्त था। सङ्खसेठ तो मैं ही था।

१३२. पञ्चगुरुक जातक

“कुसलूपबेसे धितिया बढ्हाय च...” यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय अजपाल न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे मार-कुमारियों द्वारा प्रलोभित किए जाने के सूत्र के बारे में कही। भगवान् आरम्भ से ही ऐसे थे—

बहल्लमाना आगच्छुं तण्हा च अरती रगा,
ता तत्थ पनुवी सत्था तुलं भट्ठं व मालुतो ॥'

[तण्हा, अरति और रगा (मारकन्याएँ) प्रकाश फैलाती हुई आईं। शास्ता ने उनको ऐसे दूर भगा दिया जैसे हवा उड़ती हुई रुई को।]

इस प्रकार उस सूत्र को अन्त तक कहने के समय धर्म-सभा में एकत्र हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सम्यक् सम्बुद्ध के पास मारकन्याएँ सैकड़ों प्रकार के दिव्य रूप बनाकर लुभाने के लिए आईं। लेकिन उन्होंने आँख खोलकर भी नहीं देखा। अहो ! बुद्ध-बल अद्भुत है। शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने

'संयुत्त-निकाय, मार-संयुत्त।

कहा—“भिक्षुओ, इस समय मेरे सभी आश्रवों को नष्ट कर सर्वज्ञता प्राप्त किए रहने पर मारकन्याओं के न देखने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है। पूर्व समय में बुद्धत्व-प्राप्ति की खोज में लगे हुए रहने पर, चित्त-मैल के रहते हुए भी निर्मित दिव्य-रूप को आँख उधाड़कर कामुक भाव से न देख, जाकर महाराज्य प्राप्त किया था। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सौ भाइयों में सबसे छोटे थे। सारी कथा उपरोक्त तवकसिला जातक^१ के अनुसार विस्तारपूर्वक कहनी चाहिए।

उस समय तक्षशिला नगर निवासियों ने नगर के बाहर शाला में (बैठे हुए) बोधिसत्त्व के पास जा, स्वीकृति ले उन्हें राज्य का भार सौंप अभिषेक किया। फिर उन्होंने नगर को देवनगर की तरह तथा राजभवन को इन्द्रभवन की तरह अलंकृत किया।

उस समय बोधिसत्त्व नगर में प्रविष्ट हो राजभवन के महल के ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे श्रेष्ठ रतन-सिंहासन पर चढ़ देवेन्द्र की तरह बैठे। आमात्य, ब्राह्मण, गृहपति आदि तथा सभी अलंकारों से अलंकृत क्षत्रियकुमार उसे घेर कर खड़े थे। देव-अप्सराओं के समान नृत्य-गीत तथा वाद्य में कुशल, उत्तम हाव-भाव वाली, सोलह हजार नर्तकियों ने गाना बजाना किया। गाने बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूँज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाए हुए दिव्य-रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

कुसलूपबसे धितिया दळ्हाय च
अवत्थितताभयभीरुताय च,

^१ तवकसिला=तेलपत्त जातक (९६)

न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
स सोत्थिभावो महता भयेन मे ॥

[सदुपदेश पर दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहने से तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आए। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुमलूपबेसे; समर्थ लोगों के उपदेश से; प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। धितिया बढ्हाय च, दृढ़ धृति से वा स्थिर अखण्डित वीर्य्य से। अबत्थित्ताभयभीरुताय च, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कंपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसीलिए कहा है अबत्थित्ताभयभीरुताय च। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। न रक्खसीनं वसमागमिम्हा, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ़ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए; इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आए—यही भाव है। स सोत्थिभावो महता भयेन मे सो आज मुझे यह बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मैं उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

१३३ . घटासन जातक

“खेम यहि . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु बुद्ध से कर्मस्थान ग्रहण कर, प्रत्यन्त-देश में जा, एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान में रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी पर्णकुटी में आग लग गई। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थापकों से कहा। वे बोले—‘अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे हैं। अभी बो रहे हैं।’ इस प्रकार कहते-कहते उन्होंने तीन महीने बिता दिए।

निवासस्थान की अनुकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नहीं कर सका। उसे निमित्त^१ तक प्राप्त नहीं हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्यों भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल हुआ? उसने आरम्भ से लेकर प्रतिकूलता की सब बात कही। शास्ता ने कहा—भिक्षु! पूर्व समय में जानवरों ने भी अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता देख, अनुकूल रहने पर उस जगह रह, प्रतिकूल प्रतीत होने पर उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह चले गए। तूने क्यों अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता न समझी? फिर उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

^१ ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखाई देने वाला आकार।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पक्षी होकर पैदा हुए । बड़े होने पर सौभाग्यशाली पक्षि-राजा हो एक जंगल में, एक तालाब के किनारे शाखा-प्रशाखाओं से युक्त तथा बहुत पत्तोंवाले एक महान्-वृक्ष पर अनेक अनुचरों सहित रहने लगे । बहुत से पक्षी पानी पर फैली हुई शाखाओं पर रहते हुए अपनी बीट पानी में गिरा देते थे ।

उस तालाब में एक प्रचण्ड नाग-राज रहता था । उसके मन में आया कि यह पक्षिगण मेरे निवासस्थान तालाब में बीट गिराते हैं । मैं पानी में से आग पैदा कर इस वृक्ष को जला इन्हें यहाँ से भगाऊँ । उसने क्रुद्ध हो रात को जिस समय सब पक्षिगण इकट्ठे हो वृक्ष की शाखाओं पर सो रहे थे, पहले चूल्हे पर रक्खे पानी की तरह बुलबुले पैदा कर, दूसरी बार धुआँ उठा, तीसरी बार ताड़ के वृक्ष जितनी ऊँची ज्वाला उठाई । बोधिसत्त्व ने कहा—“पक्षिगण ! आग से जलने पर पानी से बुझाया जाता है, लेकिन अब पानी ही जलने लगा है इसलिए यहाँ नहीं रह सकते । अन्यत्र चलो ।” इतना कह, यह गाथा कही—

खेमं यहि तत्थ अरी उदीरितो
उदकस्स मज्झे जलते घतासनो,
न अज्ज बासो महिया महीरुहे
बिसा भजब्बो सरणज्ज नो भयं ॥

[जहाँ कल्याण था, वहीं शत्रु पैदा हो गया । पानी में आग जलने लगी । आज पृथ्वी से उगे वृक्ष पर रहना नहीं होगा । (किसी दूसरी) दिशा को चलो । जिस जगह हमने शरण ली थी वहीं से भय पैदा हो गया ।]

खेमं यहि तत्थ अरी उदीरितो, जिस पानी में हमारा कल्याण था, जहाँ निर्भयता थी, वहीं से विरोधी, शत्रु पैदा हो गया । उदकस्स, पानी के, घतासनो, अग्नि । वह घूट खाती है, इसीलिए घतासन कहलाई । न अज्ज बासो, आज हमारा रहना नहीं है । महिया महीरुहे, महीरुह कहते हैं वृक्ष को, उस इस पृथ्वी में से पैदा

हुए वृक्ष में। बिसा भजङ्गो, दिशाओं में जाओ। सरणञ्ज नो भयं, आज हमारे शरणस्थान से ही भय पैदा हो गया। प्रतिशरणस्थान ही भय का जनक हो गया।

ऐसा कह बोधिसत्त्व अपना कहना मानने वाले पक्षियों को लेकर अन्यत्र चले गए। बोधिसत्त्व का कहना न मान जो पक्षिगण वहीं रहे वह मर गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्य-सत्थों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। आर्य-सत्थों के प्रकाशन के अंत में वह भिक्षु अर्हत् हो गया।

उस समय बोधिसत्त्व का कहना मानने वाले पक्षिगण, बुद्धपरिषद हुई। पक्षि-राजा तो मैं ही था।

१३४. ज्ञानसोधन जातक

“ये सञ्जिनो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय संङ्करस नगर-द्वार पर संक्षेप से पूछे गए प्रश्न की धर्मसेनापति (सारिपुत्र) द्वारा विस्तृत व्याख्या के बारे में कही। अतीत कथा इस प्रकार है—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने एकान्त जंगल में मृत्यु को प्राप्त होते समय शिष्यों के पूछने पर संक्षेप से उत्तर दिया—नेवसञ्जानासञ्जी...तपस्वियों को ज्येष्ठ-शिष्य की बात समझ में नहीं आई। बोधिसत्त्व ने आमास्वर (-लोक) से आ आकाश में ठहर यह गाथा कही—

ये	सञ्जिनो	तेपि	दुग्गता
येपि	असञ्जिनो	तेपि	दुग्गता,
एतं	उभयं	विवज्जय	
तं	समापत्तिमुखं	अनंगणं॥	

[जो सञ्चि हैं, उनकी भी दुर्गति है। जो असञ्चि हैं, उनकी भी दुर्गति है। इन दोनों को छोड़कर समापत्ति सुख दोष रहित है।]

ये सञ्चिजनो, नेवसञ्चानासञ्चो प्राणियों को छोड़ शेष चित्त वाले प्राणियों से मतलब है। तेषि दुग्गता, उस समापत्ति के न होने से वह भी दुर्गति-प्राप्त हैं। येषि असञ्चिजनो, असञ्चा-भव में पैदा होने वाले चित्त-रहित प्राणियों से मतलब है। तेषि दुग्गता, वे भी इसी समापत्ति को प्राप्त किए न रहने से दुर्गति-प्राप्त हैं। एतं उभयं विवज्जय। इन दोनों सञ्चि-भाव तथा असञ्चिभाव को छोड़, त्याग—यह शिष्यों को उपदेश देता है। तं समापत्ति सुखं अनङ्गणं—नेवसञ्चानासञ्चा-यतन को प्राप्त करने वालों के शान्त होने के कारण उसे सुख कहा, ध्यान-सुख अङ्गण-रहित, दोष-रहित होता है। चित्त की बहुत एकाग्रता होने से भी वह अङ्गण-रहित कहलाया।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया। फिर शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्म-लोक गए। तब बाकी के तपस्वियों की ज्येष्ठ-शिष्य के प्रति श्रद्धा बढ़ी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठशिष्य सारिपुत्र था; महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३५. चन्दाभ जातक

“चन्दाभं...” यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय संकस्त नगर के द्वार पर स्थविर की प्रश्न-की-व्याख्या के ही बारे में कही—

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने एकांत जंगल में मृत्यु को प्राप्त होने के समय शिष्यों के पूछने पर चन्दाभं सुरियाभं कहा।

वह भरकर आभस्वर-लोक में उत्पन्न हुए। तपस्वियों ने ज्येष्ठशिष्य की बात पर विश्वास नहीं किया। बोधिसत्त्व ने आकर आकाश में उपस्थित हो यह गाथा कही—

चन्द्राभं सुरियाभञ्च योष पञ्जाय गावति,
अवतिक्केन ज्ञानेन होति आभस्सरूपगो॥

[जो प्रज्ञा से सूर्याभा तथा चन्द्राभा पर स्थिर होता है, वह वितर्क-रहित ध्यान से आभस्वर-लोक में उत्पन्न होता है।]

चन्द्राभं का मतलब है इवेत-कसिण। सुरियाभं का पीत-कसिण। योष पञ्जाय गावति, जो आदमी इस संसार में इन दोनों कसिणों की प्रज्ञा से भावना करता है, उन्हें आलम्बन बनाकर उनमें प्रवेश करता है, उनमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा चन्द्राभं सुरियाभञ्च योष पञ्जाय गावति, जहाँ तक सूर्य तथा चन्द्रमा की आभा फैली है, उस सारे स्थान में परिभाग-कसिण^१ को बढ़ाकर उसी को आलम्बन बनाकर ध्यान का अभ्यास करनेवाला दोनों आभाओं की प्रज्ञा से भावना करता है। इसलिए यह भी ठीक अर्थ है। वितक्केन ज्ञानेन होति आभस्सरूपगो, वह मनुष्य वैसा अभ्यास करने से द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो, आभस्वर-ब्रह्मलोक को प्राप्त होता ही है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व तपस्वियों को समझाकर तथा ज्येष्ठशिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठशिष्य सारिपुत्र थे और महाब्रह्मा तो मैं ही था।

^१ परिभाग-कसिण = पटिभाग-निमित्त (अभिधम्मसूत्र संग्रहो ९।१८)

१३६. सुवर्णहंस जातक

“यं लब्धं तेन तुट्ठब्बं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय थुल्लनन्दा भिक्षुणी के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक उपासक ने भिक्षुणी संघ को लहसुन लेने का निमन्त्रण दिया और अपने खेत वाले को आज्ञा दी कि यदि भिक्षुणियाँ आएँ तो एक एक भिक्षुणी को दो तीन गांठ लहसुन दे। उसके बाद से भिक्षुणियाँ उसके घर भी और खेत पर भी लहसुन के लिए जाने लगीं।

एक उत्सव के दिन उस (उपासक) के घर में लहसुन समाप्त हो गया। थुल्लनन्दा भिक्षुणी औरों को साथ ले घर गई और बोली—आयुष्मानो, लहसुन की आवश्यकता है।

—आर्ये, लहसुन नहीं है। लाया हुआ समाप्त हो गया। खेत पर जाएँ।

वह खेत पर गई और बेअंदाज लहसुन लिवा लाई।

खेत वाला खीझा—यह क्या है कि भिक्षुणियाँ अन्दाज न कर बे-अंदाज लहसुन ले जाती हैं।

उसे यह कहता सुन जो अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थीं वह असंतुष्ट हुई और उनसे सुनकर भिक्षु भी असंतुष्ट हुए। उन्होंने खीझकर भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी की निन्दा कर कहा—

“भिक्षुओ, लालची (=महेच्छ) आदमी जिस माँ ने जन्म दिया है, उसके लिए भी अप्रिय हो जाता है। वह अप्रसन्नों को प्रसन्न नहीं कर सकता। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न नहीं कर सकता। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता। प्राप्त वस्तु को सँभाल कर नहीं रख सकता। अल्पेच्छ आदमी अप्रसन्नों को प्रसन्न कर सकता है। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न कर सकता है। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त

कर सकता है। प्राप्त वस्तु को बनाए रख सकता है।”—इस प्रकार भिक्षुओं को उनके योग्य उपदेश दे फिर कहा ‘भिक्षुओ, धुल्लनन्दा अभी लोभी नहीं है, पहले भी लोभी ही रही है।’ इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनके बड़े होने पर उनके समान जाति-कुल से उन्हें एक भार्या ला दी गई। उससे उसे नन्दा, नन्दवती और नन्दसुन्दरी तीन लड़कियाँ हुईं। उनका विवाह होने से पूर्व ही बोधिसत्त्व मर कर स्वर्णहंस होकर पैदा हुए। उन्हें पूर्व-जन्म-स्मृति का ज्ञान भी रहा।

उसने बड़े होने पर सोने के परो से ढके हुए परम सौभाग्यवान् अपने शरीर को देखकर विचार किया कि मैं कहाँ से मरकर यहाँ पैदा हुआ हूँ? उसे मालूम हुआ कि मनुष्य-लोक से। फिर विचार किया कि ब्राह्मणी और लड़कियों का जीवन-यापन कैसे होता है? उसे पता लगा कि दूसरों की मजदूरी करके बड़े कष्ट से जीवन-यापन करती हैं। तब उसने सोचा कि मेरे मोने के पर ठोस हैं। इनमें से मैं एक एक पर उन्हें दूँ। इससे मेरी भार्या और लड़कियाँ सुखपूर्वक जीएँगीं। वह वहाँ पहुँच घर के शहतीर के एक सिरे पर बैठे।

ब्राह्मणी और लड़कियों ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—स्वामी, कहाँ से आए?

“मैं तुम्हारा पिता हूँ। मरकर स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुआ हूँ। तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। इसके बाद तुम्हें दूसरों की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अपना एक एक पर दिया करूँगा। उसे बेच-बेच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना।”

इतना कह वह एक पर देकर उड़ गया। इसी प्रकार वह बीच बीच में आकर एक एक पर देता। ब्राह्मणियाँ धनी और सुखी हो गईं।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लड़कियों से बुलाकर सलाह की — ‘अम्म ! जान-

‘कूटे और रगड़े जा सकते हैं।

वरों के दिल का पता नहीं । हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आए । इसलिए उसके इस बार आने पर हम उसके सभी पर उल्टाड़ लें ।'

उन्होंने अस्वीकार किया । वे बोलीं—इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा ।

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-राजहंस के आने पर कहा—स्वामी आएँ ।

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है, तो दोनों हाथों से पकड़कर उसके सब पर नोच लिए । सभी पर बोधिसत्त्व की इच्छा के बिना जबर्दस्ती लिए जाने के कारण बगुले के पंख सदृश हो गए ।

अब बोधिसत्त्व पंख पसारकर उड़ न सके । उसने उन्हें मटक में रखकर पाला । उनके जो नए पर निकले वह श्वेत ही निकले । पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आए, और फिर वहाँ नहीं गए ।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात सुनाकर कहा—भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लालची नहीं रही है । पहले भी लालची रही है । लालच के ही कारण स्वर्ण से हाथ धोया । अब अपने लालच के कारण लहसुन से भी हाथ धोएगी । इसके बाद अब लहसुन खाना न मिलेगा । जैसे थुल्लनन्दा को वैसे ही उसके कारण दूसरी भिक्षुणियों को भी । इस लिए बहुत मिलने पर भी अपना अन्दाजा जानना चाहिए । थोड़ा मिलने पर जितना मिले उसी से सन्तोष करना चाहिए । अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिए ।

इतना कह यह गाथा कही—

यं लद्धं तेन तुद्धब्बं अतिलोभो हि पापको,
हंसराजं गहेत्त्वान सुवर्णा परिहायथ ॥

[जो मिले उससे संतुष्ट रहना चाहिए । अतिलोभ करना पाप है । हंसराज को पकड़कर स्वर्ण से हाथ धोया ।]

तुद्धब्बं का मतलब है संतोष करना चाहिए ।

इतना कह शास्ता ने अनेक प्रकार से निन्दा कर नियम बना दिया कि जो भिक्षुणी लहसुन खाए उसे पाचित्तिय (-दोष) लगे^१।

फिर जातक का मेल बैठाय। उस समय की ब्राह्मणी यह थुल्लनन्दा हुई। तीन लड़कियाँ इस समय की तीन बहनें। स्वर्ण-राजहंस तो मैं ही था।

१३७. बब्बु जातक

“यत्थेको लभते बब्बु...” शास्ता ने इसे जेतवन में विहार करते समय काणमाता के शिक्षा-पद^२ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में अपनी कानी लड़की के कारण काण-माता कहलाने वाली एक श्रोतापन्न आर्य-श्राविका थी। उसने अपनी कानी लड़की को एक गामड़े में समान जाति के किसी आदमी को दिया। काणा किसी काम से माँ के घर आई।

कुछ दिन बीतने पर उसके स्वामी ने दूत भेजा—मैं चाहता हूँ कि काणा आवे। काणा चली आवे।

काणा ने दूत की बात सुन, माँ से पूछा—माँ! जाती हूँ।

काण-माता ने सोचा कि इतने दिन रहकर खाली हाथ कैसे जाएगी, इस लिए पुए पकाने लगी।

उस समय एक पिण्डपातिक^३ भिक्षु उसके घर आया। उपासिका ने उसे बिठा-

^१ भिक्षुणी-पातिमोक्ख।

^२ पाचित्तिय के भोजन-वर्ग का चौथा शिक्षापद।

^३ जो भिक्षु केवल भिक्षा से ही निर्वाह करता है, निमन्त्रण आदि ग्रहण नहीं करता।

कर पात्रभर पुए दिलवाए । उसने निकल दूसरे(भिक्षु) से कहा । उसे भी वैसे दिलवाए । उसने भी निकलकर दूसरे से कहा । उसे भी वैसे ही । इस प्रकार चार जनों को पुए दिलवाए । सब तैयार पुए समाप्त हो गए । काणा का जाना नहीं हुआ ।

उसके स्वामी ने दूसरा दूत भेजा और दूसरे के बाद तीसरा भेजा । तीसरे दूत के हाथ उसने कहला भेजा कि यदि काणा नहीं आएगी तो मैं दूसरी भाय्या ले आऊँगा । तीनों बार उसी तरह जाना न हो सका । काणा का स्वामी दूसरी स्त्री ले आया । काणा ने जब यह सुना तो रोने लगी ।

शास्ता को पता लगा तो पहन कर पात्र-चीवर ले, काण-माता के घर जा बिछे आसन पर बैठ कर पूछा—

“यह क्यों रोती है ?”

“इस कारण से ।”

शास्ता ने धर्मकथा कह काणा-माता को दिलासा दिया । फिर उठकर विहार को गए ।

उन चार भिक्षुओं को तीन बार तैयार पुए ले आकर काणा के गमन में बाधक होने की बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! चार भिक्षु तीन बार काण-माता के यहाँ तैयार किए सब पुए खागए । इससे काणा का जाना रुक गया । स्वामी ने लड़की को छोड़ दिया । अब इससे महाउपासिका के मन को बहुत दुःख हुआ है ।

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत ।”

भिक्षुओ, उन चार भिक्षुओं ने काण-माता का खाकर केवल अब ही उसे दुःख नहीं दिया है, पहले भी दिया है । इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पत्थर-कट कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर वह अपने शिल्प में पारङ्गत हो गए ।

काशी देश के एक कस्बे में एक बड़ा धनवान् सेठ था। उसका गड़ा हुआ खजाना ही चालीस करोड़ का सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो वह धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई और उस खजाने पर रहने लगी। इस प्रकार वह कुल नष्ट हो गया। वंश उजड़ गया। वह गाँव भी ध्वस्त हो नामशेष रह गया।

उन दिनों बोधिसत्त्व जहाँ पहले गाँव था उसी जगह के पत्थर उखाड़कर उन्हें तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आसपास बोधिसत्त्व को बार बार आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा मेरा बहुत सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मैं और यह इकट्ठे मिलकर इस धन को खाएँगे। एक दिन वह मुँह में एक कार्पाषण पकड़े हुए बोधिसत्त्व के पास पहुँची। बोधिसत्त्व ने प्रिय-वाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

“अम्म ! कार्पाषण लेकर क्यों आई है ?”

“तात ! इसे लेकर स्वयं भी खाएँ और मेरे लिए भी मांस लाएँ।”

बोधिसत्त्व ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर कार्पाषण ले घर जाकर एक मासे का मांस खरीदकर उसे लाकर दिया। उसने उसे ले अपने निवासस्थान पर जा जी भरकर खाया।

उसके बाद से वह इसी तरह प्रतिदिन बोधिसत्त्व को कार्पाषण देती। वह भी इससे मांस ला देता।

एक दिन उस चुहिया को बिल्ले ने पकड़ लिया। वह बोली—“स्वामी ! मुझे न मारें।”

“क्यों ? मुझे भूख लगी है ! मैं मांस खाना चाहता हूँ। मैं बिना मारे नहीं रह सकता।”

“क्या केवल एक दिन एक ही बार मांस खाना चाहते हैं, अथवा नित्य प्रति ?”

“मिले तो नित्य खाना चाहूँगा।”

“यदि ऐसा है, तो मुझे छोड़ दें। मैं नित्य प्रति मांस दिया करूँगी।”

“अच्छा तो ध्यान रखना” कह बिल्ले ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद से उसके लिए जो मांस आता उसके वह दो हिस्से करके एक बिल्ले को देती एक स्वयं खाती।

फिर एक दिन उसे एक दूसरे बिल्ले ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मना-

कर अपने आप को छुड़ाया। उसके बाद से तीन हिस्से करके खाने लगी। फिर एक और ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने को छुड़ाया। उसके बाद से चार हिस्से करके खाने लगी। फिर एक ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह समझाकर अपने को छुड़ाया। उसके बाद से पाँच हिस्से करके खाने लगी।

केवल पाँचवाँ हिस्सा मिलने से वह चुहिया आहार की कमी से क्लान्त तथा कृश हो गई। उसका मांस और रक्त कम पड़ गया। बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा—“अम्म ! म्लान क्यों पड़ गई है ?”

“इस कारण से।”

“इतनी देर तक मुझे क्यों नहीं बताया। मैं जानता हूँ इसका क्या उपाय करना चाहिए।”

इस प्रकार उसे दिलासा दे शुद्ध स्फटिक पत्थर की एक गुफा बनाकर बोधिसत्त्व ने कहा—

“अम्म ! तू इस गुफा में प्रवेश कर, वहाँ रह जो कोई आए उसे कठोर वचन से डाँट।”

चुहिया गुफा में पड़कर लेट रही। एक बिल्ले ने आकर कहा—मेरा मांस दे।

चुहिया बोली—अरे दुष्ट बिलार ! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूँ। अपने पुत्रों का मांस खा।

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूँगा। उसका हृदय स्फटिक गुहा से टकराया और उसी समय चूर चूर हो गया। आंखें निकल आई सी हो गई। वह वहीं मर कर एक छिपे हुए स्थान पर गिरा। इस प्रकार दूसरे चार जने भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

उसके बाद से चुहिया निर्भय हो गई। वह बोधिसत्त्व को प्रतिदिन दो तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्त्व को ही दे दिया। वे दोनों जीवन भर मित्र-भाव से रह यथाकर्म (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने पूर्वजन्म की यह कथा कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

यत्थेको लभते बब्बु दुत्तियो तत्थ जायति,
तत्तियो च चत्तुत्थो च इदं ते बब्बुका बिलं ॥

[जहाँ एक बिल्ले को (मांस) मिलता है दूसरा वहीं जाता है। तीसरा भी वहीं जाता है और चौथा भी वहीं। हे बिल्ले ! यह तेरा बिल^१ है।]

यत्थ जिस जगह। बब्बु, बिल्ला। दुत्तियो तत्थ जायति, जहाँ एक को चुहिया अथवा मांस मिलता है, दूसरा बिल्ला भी वहीं जाता है। वैसे ही तत्तियो च चत्तुत्थो च, इस प्रकार वहाँ चार बिल्ले हुए। वे दिन प्रति दिन मांस खाते हुए। ते बब्बुका इदं स्फटिक का बना हुआ बिल पेट में गड़ाकर सभी मर गए।

इस प्रकार शास्ता ने धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाय।

उस समय के चारों बिल्ले चार भिक्षु हुए। चुहिया काण-माता हुई। पत्थर तराशनेवाला जौहरी तो मैं ही था।

१३८. गोघ जातक

“किं ते जटाहि बुम्मेध...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

वर्तमान-कथा जैसी कथा पहले आई है,^१ वैसी ही है।

^१ प्रतीत होता है कि यह गाथा चुहिया द्वारा कही गयी थी। इसमें ‘बिल’ शब्द का अर्थ ‘हिस्सा’ होना चाहिए। जातककार ने यह गाथा बुद्ध-भाषित बनाई है; और बिल का जो अर्थ किया है वह मेल नहीं खाता।

^२ भीमसेन जातक (८०)।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व गोह के रूप में पैदा हुए ।

उस समय पाँच-अभिञ्जा-प्राप्त (एक) उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्ण-कुटी में रहता था । ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे । बोधिसत्त्व उसके चङ्क्रमण करने की जगह के पास एक बिल में रहते थे । प्रतिदिन दो तीन बार तपस्वी के पास आकर धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुन, तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवासस्थान को लौट जाते । आगे चलकर तपस्वी ग्रामवासियों को पूछकर वहाँ से चला गया । उस शीलव्रतसम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी आश्रम में रहने लगा । बोधिसत्त्व उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गए ।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलों में से मक्खियाँ निकलीं । उन्हें खाने के लिए गोहें घूमने लगीं । ग्रामवासियों ने बाहर निकल बहुत सी गोहें पकड़, चिकनी भोजन-सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मांस तैयार कर उस तपस्वी को दिया ।

तपस्वी ने गोह का मांस खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा । उसने पूछा—यह मांस बड़ा मीठा है । किसका मांस है ? जब उसे पता लगा कि किसका मांस है, तो वह सोचने लगा कि मेरे पास बड़ी गोह आती है । उसे मारकर उसका मांस खाऊँगा । उसने पकाने के बरतन और उनके साथ घी, नमक आदि मँगवा कर एक ओर रख लिए । स्वयं मुद्गर ले, काषाय वस्त्र से ढक, पर्ण-कुटी के सामने शान्तचित्त की तरह बैठ बोधिसत्त्व की प्रतीक्षा करने लगा ।

बोधिसत्त्व शाम को तपस्वी के पास जाने के लिये निकले । समीप पहुँचते ही उसकी इन्द्रियों में विकार देखकर सोचने लगे—यह तपस्वी उस तरह नहीं बैठा है जैसे और दिनों बैठा रहता था । आज यह मेरी ओर दूषित दृष्टि से देख रहा है । इसकी परीक्षा करूँगा । वे जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी उधर खड़े हुए । गोह के मांस की गन्ध आई । उसे सूँघकर बोधिसत्त्व ने सोचा—इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह-मांस खाया होगा । इसीसे यह रस-तृष्णा में आसक्त हो गया । आज मेरे समीप पहुँचने पर मुझे मुद्गर से मार मांस

पकाकर खाना चाहता होगा। वह उसके पास न जा, वापिस लौटकर घूमने लगे।

तपस्वी ने बोधिसत्त्व को न आता देख समझा कि यह जान गया होगा कि मैं इसे मारना चाहता हूँ। इसी से नहीं आता है। न आने पर भी यह कहाँ बचकर जाएगा। उसने मुद्गर निकाल फेंककर मारा। वह उसकी पूँछ के सिरों में ही लगा।

बोधिसत्त्व जल्दी से बिल में प्रविष्ट हो दूसरे छेद से सीस निकालकर बोले—“कुटिल जटिल ! मैं तुझे सदाचारी समझ कर तेरे पास आया। लेकिन अब मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया। तेरे जैसे महाचोर को इस प्रब्रजित भेष से क्या ?” इस प्रकार उसकी निन्दा करते हुए यह गाथा कही—

कि ते जटाहि दुम्मेध कि ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥^१

[हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ) ? और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है।]

कि ते जटाहि दुम्मेध, भो, दुर्बुद्धि ! मूर्ख ! यह जटाएँ प्रब्रजित को धारण करनी चाहिए। प्रब्रज्या-गुण से तू रहित है। तुझे इन जटाओं से क्या लाभ ? कि ते अजिनसाटिया, मृग-चर्म के अनुकूल संयम का अभाव है, तब इस मृग-चर्म से क्या ? अब्भन्तरं ते गहनं—तेरा भीतर राग, द्वेष तथा मोह से मलिन है, ढका हुआ है। बाहिरं परिमज्जसि, सो तू अभ्यन्तर को मैला ही रख स्नान आदि से तथा (श्रमण-) चिह्न धारण करके बाहर को साफ करता है। तू वैसा ही है जैसे काञ्ची से भरा हुआ तम्बा हो, बिष से भरा घड़ा हो, साँप से भरी हुई बाँबी हो अथवा गूह से भरा हुआ चित्रित घड़ा हो। तुझ चोर के यहाँ रहने से क्या ? शीघ्र भाग। यदि नहीं जाएगा तो ग्रामवासियों को कहकर तेरा निग्रह करवाऊँगा।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उस कुटिल तपस्वी को धमकाकर बिल में चले गए । कुटिल तपस्वी भी वहाँ से चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय कुटिल तपस्वी यह ढोंगी था । पहला शीलवान् तपस्वी सारिपुत्र था । गोहपण्डित तो मैं ही था ।

१३९. उभतोभट्ट जातक

“अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—“आयुष्मानो ! जैसे कोई श्मशान की लकड़ी हो, जो दोनों ओर से जलती हो और जिसके बीच में गृह लगा हुआ हो, वह न जंगल में जलावन का काम देती है, न गाँव में ही जलावन का काम देती है । इसी प्रकार देवदत्त ऐसे कल्याणकर शासन में प्रब्रजित हो दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया, दोनों ओर से बाहर हो गया, गृहस्थी के भोगों को भी नहीं भोगता और श्रमणत्व के उद्देश्य को भी पूरा नहीं करता ।”

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ । ‘भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अभी उभयभ्रष्ट नहीं हुआ है, पूर्व समय में भी भ्रष्ट हुआ है ।’ इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मादत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए ।

उस समय एक गाँव में मछुए रहते थे । एक मछुआ जाल ले अपने छोटे

पुत्र के साथ जिस तालाब में मछुए साधारणतः मछली पकड़ते थे, वहाँ गया। जाकर जाल फेंका। जाल पानी से छिपे हुए एक ठूँठ में जा फँसा। मछुए ने जब देखा कि वह निकलता नहीं है तो सोचा कि जाल में कोई बड़ी मछली फँसी होगी। मैं लड़के को (उसकी) माँ के पास भेजकर पड़ोसी से झगड़ा करा दूँ। तब कोई इसमें से हिस्सा पाने की आशा न करेगा। उसने पुत्र से कहा—“तात ! जा। माँ से कह कि हमें बड़ी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पड़ोसी से झगड़ा कर ले।”

पुत्र को भेजने के बाद जब वह जाल को न खींच सका तो रस्सी टूटने के भय से उसने अपना ऊपर का कपड़ा उतार जमीन पर रक्खा और पानी में उतरा। मछली के लोभ में मछली को ढूँढ़ते हुए ठूँठ से टकरा गया। उसकी दोनों आँखें फूट गईं। जमीन पर रक्खे हुए उसके कपड़े को चोर ले गए।

वह पीड़ा से पगला हो, हाथ से आँखों को दबाए हुए पानी से बाहर निकल काँपता हुआ कपड़े खोजने लगा।

उसकी भार्य्या ने भी सोचा कि मैं झगड़ा करके ऐसा कर दूँ कि कोई कुछ आशा न रखे। उसने एक कान में ताड़ का पत्ता पहना, एक आँख में हाँडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता ले पड़ोसी के घर गई। उसकी एक पड़ोसन बोली—“तूने एक ही कान में ताड़ का पत्ता डाला है, एक ही आँख में कज्जल लगाया है और गोद में कुत्ते को ऐसे लेकर जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो एक घर से दूसरे घर घूम रही है। क्या तू पगली हो गई है?”

“मैं पगली नहीं हूँ। तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अब मैं मुखिया^१ के पास जाकर तुझपर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊँगी।”

इस प्रकार परस्पर झगड़कर दोनों मुखिया के पास गईं। दोपी का पता लगाने से वही दण्डित हुई।

लोग उसे बाँधकर पीटने लगे कि जुर्माना दे।

वृक्षदेवता ने गाँव में उसका यह हाल और जंगल में उसके पति की विपत्ति को देख एक टहने पर खड़े होकर कहा—भो ! पुरुष ! जल में भी तेरा काम

^१ ग्रामभोजक।

बिगड़ा, स्थल पर भी । तू दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया । इतना कह यह गाथा कही—

अकली भिक्षा पटो नट्ठी सखीगेहे च भण्डनं,
उभतो पबुट्ठकम्मन्तो उवकम्हि थलम्हि च ॥

[आँख फूट गई । वस्त्र खोया गया । सखी के घर में झगड़ा हुआ । जल और स्थल दोनों में ही तेरा काम बिगड़ गया ।]

सखीगेहे च भण्डनं, सखी का मतलब है सहायिका, उसके घर में तेरी भाय्या ने झगड़ा किया । झगड़ा करके बाँधी गई, पीटी गई और दण्डित हुई । उभतो पबुट्ठ कम्मन्तो, इस प्रकार दोनों जगह में तेरा काम बिगड़ा ही । कौन से दो स्थानों में ? उवकम्हि थलम्हि च, आँख फूटने से और वस्त्र नष्ट होने से जल में काम बिगड़ा, सखी के घर पर झगड़ा होने से स्थल पर काम बिगड़ा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मछुआ देवदत्त था । वृक्षदेवता तो मैं ही था ।

१४०. काक जातक

“निच्छं उब्बिग हवया . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जाति-सेवा के बारे में कही । वर्तमान कथा बारहवें निपात की भइसाल जातक^१ में आएगी ।

^१ भइसाल जातक (४६५) ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मादत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कौए की योनि में पैदा हुए ।

एक दिन राजा का पुरोहित नगर के बाहर नदी पर स्नान कर, सुगन्धित लेप कर, मालाएँ पहन, सुन्दर वस्त्र धारण किये नगर में प्रविष्ट हुआ । नगर-द्वार के तोरण पर दो कौए बैठे थे । उनमें से एक ने दूसरे को कहा—

“मित्र ! मैं इस ब्राह्मण के सिर पर बीट करूँगा ।”

“यह अच्छा नहीं है । यह ब्राह्मण ऐश्वर्यशाली है । ऐश्वर्यशालियों के साथ बैर करना बुरा है । यह क्रुद्ध होने पर सभी कौओं को भी नष्ट कर सकता है ।”

“मुझसे बिना किए नहीं रहा जाता ।”

“अच्छा तो पता लगेगा” कह दूसरा कौआ उड़ गया ।

जब ब्राह्मण तोरण के नीचे आया उसने ओलम्बक^१ गिराते हुए की तरह उसके सिर पर बीट गिरा दी । ब्राह्मण क्रुद्ध हो कौओं का वैरी हो गया ।

उस समय मजदूरी पर धान कूटनेवाली एक दासी धूप में घर के दरवाजे पर धान फैला उनकी देखभाल कर रही थी । उसे बैठे बैठे नींद आ गई । उसे असावधान जान एक लम्बे बालोंवाला बकरा आकर धान खा गया । उसने जाग उसे देखकर भगाया ।

बकरे ने दूसरी तीसरी बार भी उसे उसी प्रकार सोता देख आकर धान खाया । उसने भी उसे तीनों बार भगाया । तब वह सोचने लगी—इस प्रकार यह बार बार खाकर आधा धान खा जायगा । मेरी बड़ी हानि होगी । अब मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगी कि यह फिर न आए ।

वह जलती हुई लकड़ी ले सोई हुई की तरह बैठ रही । जब बकरा धान खाने आया उसने उठकर जलती हुई लकड़ी से मारा । बालों में आग लग गई । शरीर जलने पर वह आग बुझाने के लिए जल्दी से भागकर हस्तिशाला के पास

^१ शत्रु-यक्ष के हाथी के नगर-द्वार में प्रवेश करने पर उसके ऊपर जोर से फेंकी जाने वाली नोकदार लकड़ी ।

गया और वहीं एक तृण-कुटी से शरीर रगड़ा। उस कुटी को आग लग गई। वहाँ से उठी ज्वाला हस्तिशाला में जा लगी। हस्तिशाला के जलने से हाथियों की पीठ जली। बहुत से हाथियों के शरीर में जैखम हो गए। वैद्य हस्तियों को निरोग न कर सका, तो उसने राजा से कहा। राजा ने पुरोहित से पूछा—“आचार्य्य ! हाथियों का वैद्य हाथियों की चिकित्सा नहीं कर सकता। कोई दवाई जानते हैं ?”

“महाराज, जानता हूँ।”

“किस चीज की जरूरत होगी ?”

“महाराज, कौवे की चर्बी।”

राजा ने आज्ञा दी—तो कौवों को मारकर कौवों की चर्बी लाओ।

उसके बाद से कौवे मारे जाने लगे; और चर्बी न पाकर जहाँ तहाँ उनका ढेर लगाया जाने लगा। कौवों पर बड़ी भारी विपत्ति आई।

उस समय बोधिसत्त्व अस्सी हजार कौओं के साथ महादमशान वन में रहते थे। एक कौवे ने जाकर बोधिसत्त्व को कौओं पर आई विपत्ति का समाचार कहा। उसने सोचा—“मेरे अतिरिक्त कोई मेरी जातिवालों के दुःख को दूर नहीं कर सकता। मैं दूर करूँगा।”

बोधिसत्त्व दस पारमिताओं का ख्यालकर, मैत्री-पारमिता को प्रमुख कर एक ही उड़ान में उड़ खुले हुए बड़े रोशनदान में प्रविष्ट हो राजा के आसन के नीचे जा बैठे। उन्हें एक मनुष्य पकड़ने लगा। राजा ने रोका—शरण में आए को मत पकड़ो। बोधिसत्त्व ने थोड़ा विश्राम ले मैत्री-पारमिता का ध्यान कर आसन के नीचे से निकल राजा से कहा—महाराज ! राजा को चाहिए कि वह उत्तेजना के बशीभूत होकर राज्य न करे। जो भी कार्य करना हो वह सोच विचार कर करना चाहिए। जो करने से हो सके, वही कार्य करना चाहिए; दूसरा नहीं। यदि राजा ऐसा कार्य करते हैं जिसका कोई फल नहीं होता तो वह जनता के लिए मरण होता है, महान् भय का कारण होता है। पुरोहित ने वैर के वश हो झूठ कहा है। कौवों को चर्बी होती ही नहीं।

राजा प्रसन्न हुआ। उसने बोधिसत्त्व को सोने का सुन्दर पीड़ा दिया। वहाँ बैठने पर उसके परों को सौ-पाक सहस्र-पाक तैल लगवाया। सोने के बाल में राज-भोजन दिलवाया। पानी पिलवाया। अच्छी तरह से खा चुकने पर जब

बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे तब राजा ने पूछा—“पण्डित, तू कहता है, कौवों को चर्बी नहीं होती। उनको चर्बी क्यों नहीं होती?”

बोधिसत्त्व ने इन इन कारणों से नहीं होती बताते हुए सारे घर को अपने शब्द से गुंजाते हुए धर्म-कथा की; और यह गाथा कही—

निच्छं उब्बिग्गाहवया सम्बलोकविहेसका,
तस्मा तेसं वसा नत्थि काकानस्माकञ्जातिनं ॥

[हृदय नित्य उद्विग्न रहता है। सारे संसार को कष्ट देते हैं। इसलिए राजा! हमारी जाति के लोग—जो कौवे हैं—चर्बी-रहित होते हैं।]

महाराज! कौवे सदैव उद्विग्न हृदय होते हैं, भयभीत ही विचरते हैं। सारे संसार को कष्ट देते हैं—क्षत्रिय आदि को भी, स्त्री-पुरुष को भी, लड़के लड़कियों को भी—सभी को तकलीफ पहुँचाते हैं—इसलिए इन दो कारणों से हमारे जातिवालों को चर्बी नहीं होती। पहले भी नहीं हुई। आगे भी नहीं होगी।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने यह बात स्पष्ट कर राजा को समझाया—महाराज! राजा किसी भी बात को बिना सोचे-विचारे नहीं करते।

राजा ने प्रसन्न हो राज्य बोधिसत्त्व को भेंट किया। बोधिसत्त्व ने राज्य राजा को लौटा दिया। फिर उसे पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर उससे सभी प्राणियों को अभय-दान देने के लिए कहा। राजा ने धर्मोपदेश सुन सभी प्राणियों को अभय-दान दे कौवों के लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। प्रतिदिन अम्मण भर चावल का भात पकाकर नाना प्रकार के रसों से मिलाकर कौओं को दान दिया जाता। बोधिसत्त्व को राज-भोजन ही मिलता।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाय। उस समय बाराणसी का राजा आनन्द था। कौवों का राजा तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१५. ककण्टक वर्ग

१४१. गोघ जातक (२)

“न पापजनसंसेवी . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु की संगत करने वाले भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान कथा **महिलामुल्ल जातक**^१ की कथा के ही समान है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गोह के रूप में पैदा हुए। बड़े होने पर वह नदी के किनारे एक बड़े बिल में सैकड़ों गोहों के साथ रहने लगे।

उनके पुत्र गोह-पिल्ले की एक गिरगिट के साथ दोस्ती हो गई। वह उसके साथ आनन्द मनाता और गले लगाने के लिए उस पर आ पड़ता।

उस गिरगिट के साथ उसकी दोस्ती की बात गोहराज से कही गई। गोहराज ने पुत्र को बुलाकर कहा—

“तात ! तू अनुचित स्थान में विश्वास कर रहा है। गिरगिट की जाति नीच होती है। उनका विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि तू उसका विश्वास करेगा, तो तेरे और गिरगिट के कारण यह सारा गोह-कुल विनाश को प्राप्त होगा। अब से इसके साथ दोस्ती मत रख।” उसने दोस्ती नहीं ही छोड़ी।

जब बोधिसत्त्व के बार बार कहने से भी उनकी मित्रता जैसी की तैसी रही, तब बोधिसत्त्व ने सोचा कि इस गिरगिट के कारण हमको अवश्य खतरा होगा।

^१ महिलामुल्ल जातक (२६)

खतरे के समय के लिए भागने का मार्ग तैयार होना चाहिए। उसने एक तरफ हवा आने का रास्ता बनवा लिया।

बोधिसत्त्व का पुत्र भी शनैः शनैः बड़े शरीर वाला हुआ; गिरगिट पहले ही जितना रहा। वह समय-समय पर उसका आलिंगन करने के लिए गिरगिट पर आ पड़ता। गिरगिट को ऐसा मालूम देता कि मानो उस पर पर्वत आ पड़ा है। उसने कष्ट पाते हुए सोचा कि यदि यह और कुछ दिन इस प्रकार मेरा आलिङ्गन करता रहा तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। इसलिए किसी शिकारी के साथ मिलकर इस गोह-कुल को ही नष्ट करवाऊँ।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होने पर बाँबी से मक्खियाँ निकलीं। जहाँ-तहाँ से गोह निकलकर मक्खियों को खाने लगे। एक गोह-शिकारी गोह के बिल को फोड़ने के लिए कुदाल और कुत्ते साथ में ले जंगल में घूम रहा था। गिरगिट ने उसे देखकर सोचा कि आज अपना मनोरथ पूरा कहेगा। उसने पास आ, थोड़ी दूर पर ठहर पूछा—“हे ! पुरुष ! जंगल में क्यों घूम रहे हो ?” उसने कहा—“गोहों के लिए। गिरगिट बोला—“मैं कई सौ गोहों का निवासस्थान जानता हूँ। आप आग और पुआल लेकर आएँ।” उसे वहाँ ले जाकर कहा, “यहाँ पुआल रख, आग लगाकर धुआँ करें। चारों तरफ कुत्तों को बिठाएँ। अपने आप मुग्धर लेकर बैठें। जो जो गोह निकलें उन्हें मार-मारकर डेर लगाएँ।” फिर स्वयं एक जगह पर सिर उठाकर पड़ रहा—आज शत्रु की पीठ देखने को मिलेगी।

शिकारी ने पुआल का धुआँ किया। धुआँ बिल में घुसा। गोह जब धुएँ से अंधे हुए तब मृत्यु-भय से भयभीत हो भागने लगे। शिकारी ने जो जो गोह निकले उन्हें मारा। उसके हाथ से बच्चों को कुत्तों ने लिया। गोहों के लिए महाविनाश उपस्थित हुआ।

बोधिसत्त्व को मालूम हुआ कि गिरगिट के कारण महान् खतरा पैदा हो गया। वह सोचने लगे कि पापी का साथ नहीं ही करना चाहिए। पापी की संगत से सुख नहीं हो सकता। एक पापी गिरगिट के कारण इतने गोह नाश को प्राप्त हुए। इस प्रकार सोचते हुए हवा आने के बिल से भागते हुए यह बात कही—

‘शत्रु की पीठ देखना मिलने का भावार्थ है पलायन; यहाँ विनाश से तात्पर्य है।’

न पापजनसंसेवी अच्चन्तसुखनेधति,
गोधाकुलं ककष्टाव कलिं पापेति अत्तानं ॥

[पापी की संगत करने वाले को निरन्तर सुख कभी नहीं मिलता । जैसे गिर-
गिट के कारण गोह-कुल नष्ट हुआ, इसी प्रकार वह अपना विनाश करता है ।]

पापजनसंसेवी, (पापी की संगत करनेवाला) आदमी अच्चन्तसुखं, केवल
सुख ही सुख वा निरन्तर सुख न एधति, नहीं प्राप्त करता, जैसे क्या ? गोधा
कुलंककष्टाव, जैसे गिरगिट से गोह-कुल को सुख नहीं मिला । इसी प्रकार पापी
जन की संगत करनेवाले को सुख नहीं मिलता । पापी जन की संगत करने वाला
निश्चय से कलिं पापेति अत्तानं, कलि कहते हैं विनाश को, पापी जन की संगत करने
वाला निश्चयपूर्वक अपने को और अपने साथ रहने वालों को नष्ट करता है ।

पालि में फलं पापेति पाठ है । वह पाठ अट्ठकथा में नहीं है । उस अर्थ
का भी यहाँ मेल नहीं बैठता । इसलिए जैसे यहाँ कहा गया, वैसे ही ग्रहण करना
चाहिए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय गिरगिट
देवदत्त था । बोधिसत्त्व का पुत्र उपदेश न माननेवाला गोह-पिल्ला विपक्ष-सेवी
भिक्षु था । गोह-राज तो मैं ही था ।

१४२. सिगाल जातक

“एतं हि ते बुराज्जानं...” यह शास्ता ने वेणुवन में विहार करते समय
बेवबत्त के (तथागत को) मारने का प्रयत्न करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में भिक्षुओं की बातचीत सुनकर तथागत ने कहा—भिक्षुओ ! देवदत्त ने केवल अभी मेरे बध की कोशिश नहीं की । पहले भी की ही है । लेकिन मुझे मार नहीं सका । स्वयं ही दुखी हुआ । यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गीदड़ होकर पैदा हुए । वह शृगाल राजा बन शृगालगण सहित श्मशान में रहने लगे ।

उस समय राजगृह में उत्सव था । अधिकांश मनुष्य सुरा पीते थे; वह था ही सुरा-उत्सव । अनेक धूर्त बहुत सी सुरा और मांस ले आये; और मस्त होकर सुरा पीने तथा मांस खाने लगे । रात्रि के पहिले पहर में ही उनका मांस समाप्त हो गया । सुरा तो बहुत थी ।

एक बोला—“मांस का टुकड़ा दो ।”

दूसरे ने कहा—“मांस तो समाप्त हो गया” “मेरे खड़े रहते कहीं मांस समाप्त हो सकता है?” कह उसने सोचा कि कच्चे श्मशान में मृत मनुष्यों को खाने के लिए आए हुए शृगालों को मार कर मांस लाऊँगा । वह एक मोगरी ले नाली के रास्ते शहर से निकल श्मशान जा मोगरी सहित मृतक की तरह सीधा ही लेट रहा ।

उस समय शृगालों के दल से घिरे हुए बोधिसत्त्व वहाँ आए । उसे देखकर वह समझ गए कि यह मरा नहीं है, लेकिन तब भी सोचा कि अच्छी तरह परीक्षा करूँगा । उन्होंने उस आदमी के नीचे की हवा की ओर जा उसके शरीर की गन्ध सूँघ, जाना कि यह वास्तव में मृत नहीं है । तब सोचा कि इसे लज्जित करके जाऊँगा । उन्होंने मोगरी के सिर को पकड़कर खींचा । धूर्त ने मोगरी नहीं छोड़ी । पास आते हुए को भी न देखते हुए की तरह मोगरी को और भी जोर से पकड़ लिया । बोधिसत्त्व ने लौटकर कहा—“हे ! पुरुष ! यदि तू मुदा होता, तो मेरे मोगरी खींचने पर उसे जोर से न पकड़ता । इसलिए तेरा मृत अथवा जीवित होना इस प्रकार दुर्ज्ञेय है ।” इतना कह यह गाथा कही—

एतं हि ते दुराजानं यं सेसि मतसायिकं,

यस्स ते कड्ढमानस्स हत्था वण्ढो न मुञ्चति ॥

[तू किस कारण से मुर्दे की तरह पड़ा है, यह जानना कठिन है। तेरे हाथ से तो खींचने पर डण्डा नहीं छूटता।]

एतं हि ते दुराजानं, तेरी यह बात जाननी कठिन है। यं सेसि मतसायिकं, जिस कारण से तू मुर्दे की तरह लेटा है। यस्स ते कड्डमानस्स, जब डण्डे का सिरा खींचने पर वह तेरे हाथ से नहीं छूटता; तब तू वास्तव में मुर्दा नहीं है।

ऐसा कहने पर उस धूर्त ने यह देख कि यह शृगाल मेरे जीवित होने की बात जानता है डण्डा फेंककर मारा। डण्डा नहीं लगा। धूर्त बोला—जा, इस बार तू बच गया। बोधिसत्त्व ने रुककर उत्तर दिया—हे! पुरुष! मुझे छोड़ देने पर भी तू आठ महान् नरकों तथा सोलह उस्सद नरकों से नहीं छूटेगा। इतना कह चल दिए।

धूर्त को कुछ हाथ न लगा। वह श्मशान से निकल, खाई में स्नान कर जिस मार्ग से नगर से बाहर आया था, उसी से नगर में प्रविष्ट हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धूर्त देवदत्त था। शृगाल-राजा तो मैं ही था।

१४३. विरोचन जातक

“लसी च ते निष्फलिता . . .” इसे शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के गयाशीर्ष^१ पर सुगत (तथागत) की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त का ध्यान (-बल) जाता रहा और उसको लोगों से जो प्राप्ति

^१ गया का ब्रह्मयोनि-पर्वत।

होती थी वह बन्द हो गई तथा लोगों ने उसका सत्कार करना छोड़ दिया तो उसने सोचकर एक उपाय निकाला। उसने बुद्ध से पाँच बातों^१ की याचना की, जिन्हें शास्ता ने अस्वीकार किया। तब उसने दोनों अग्रश्रावकों^२ के पाँच सौ शिष्यों को जो अभी प्रव्रजित हुए तथा धर्म-विनय से सुपरिचित न थे बहकाया और उन्हें गया शीर्ष पर ले जाकर संघ में भेद पैदा कर एक सीमा^३ में पृथक विनय-कर्म^४ करने लगा।

शास्ता ने उन भिक्षुओं के आने का समय देख दोनों अग्रश्रावकों को भेजा। उन्हें देख देवदत्त प्रसन्न हुआ। रात को धर्मोपदेश देते समय उसने सोचा कि मैं बुद्ध की नकल करूँगा। वह बोला—सारिपुत्र ! भिक्षु-संघ आबस्य रहित है। तुम भिक्षु-संघ को कुछ धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ में दर्द होता है। मैं इसे जरा तानूँगा।

इतना कह देवदत्त सो गया।

दोनों अग्रश्रावक उन भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे (आर्य-) मार्ग और फल^५ के प्रति उनका ध्यान जागृत कर सभी को वे वेळुवन साथ ले गए।

कोकालिक ने जब देखा कि बिहार खाली हो गया तब वह देवदत्त के पास गया और बोला—“आयुष्मान् देवदत्त ! तेरे अनुयायियों में भेद पैदा कर अग्र-श्रावक तेरा बिहार खाली कर चले गए। तू पड़ा सो ही रहा है।” उसने उसकी चादर हटा दीवार में कील ठोकने की तरह उसकी छाती में एड़ी से एक ठोकर लगाई। उसी समय उसके मुँह से खून गिर पड़ा। उसके बाद से वह रोगी हो गया।

शास्ता ने स्थविर से पूछा—सारिपुत्र ! तुम्हारे जाने के समय देवदत्त ने क्या किया ?

^१ पाँच बातें यह हैं—(१) जिन्वगी भर वन में ही रहा करे, (२) जिन्वगी भर भिक्षा माँग कर हूँ खाएँ, (३) जिन्वगी भर फँके चीयड़ों के ही चीवर पहने (४) जिन्वगी भर पेड़ के नीचे हो रहूँ, (५) जिन्वगी भर मछली, मांस न खाएँ (चुल्लवग्ग, द्वितीय भाष्यवार)।

^२ सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

^३ सीमित-प्रवेश।

^४ साधिक कर्म।

^५ श्रोत/पत्ति मार्ग आदि चार आर्य-मार्गों के चार फल।

“भन्ते ! हमें देखकर देवदत्त ने सोचा कि बुद्ध की तरह व्यवहार करूँगा । बुद्ध की नकल करता हुआ वह विनाश को प्राप्त हुआ ।”

“सारिपुत्र ! देवदत्त केवल अभी मेरी नकल करने जाकर विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व केसरी (सिंह) होकर पैदा हुए और हिमालय की कञ्चनगुफा में रहने लगे ।

एक दिन वे कञ्चनगुफा से निकल जम्हाई ले, चारों दिशाओं की ओर नजर उठा, सिंहनाद कर शिकार के लिए निकले । उन्होंने एक बड़े भारी भैंसे को मारा । उसका मांस खाया । फिर एक तालाब में उतर मणि-वर्ण जल की कोख पूर्ण करते हुए की तरह गुफा की ओर प्रस्थान किया ।

शिकार के लिए निकले एक गीदड़ ने उन्हें एकाएक देखा । जब वह भाग न सका तो वह केसरी के पैरों में जाकर गिर पड़ा ।

“जम्बुक ! क्या बात है ?”

“स्वामी ! मैं आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूँ ।”

“अच्छा, आ मेरी सेवा कर । मैं तुझे अच्छे-अच्छे मांस खिलाऊँगा ।” कह जम्बुक को कञ्चनगुफा में ले गया ।

गीदड़ तब से सिंह का मारा हुआ मांस ही खाता रहा । कुछ ही दिन में वह मोटा हो गया ।

एक दिन गुफा में पड़े ही पड़े उसे केसरी ने कहा—“जम्बुक ! जा, पर्वत की चोटी पर चढ़कर पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी, घोड़े तथा भैंसे आदि में से जिस किसी का मांस खाना चाहे, आकर मुझसे कह कि मैं अमुक पशु का मांस खाना चाहता हूँ । और मुझे प्रणाम कर यह भी कह कि ‘हे स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ ।’ मैं उसे मार, उसका मांस खा, तुझे भी दूँगा ।”

गीदड़ पर्वत की चोटी पर चढ़ नाना प्रकार के पशुओं को देख जिसका भी मांस खाना चाहता कञ्चनगुफा में आकर सिंह से निवेदन कर उसके पाँव में गिरकर कहता—स्वामी ! अपना पराक्रम प्रकट करें । सिंह जल्दी से छलाँग मारकर

चाहे मस्त हाथी ही होता उसकी हत्या कर उसका मांस स्वयं खाता और शृगाल को भी देता। गीदड़ पेट भर कर मांस खा, गुफा में जा सो रहता।

इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हुआ उसके दिल में अभिमान पैदा हो गया। मेरे भी तो चार पैर हैं। मैं क्यों रोज-रोज दूसरे पर निर्भर रहता हूँ। अब से मैं भी हाथी आदि को मारकर मांस खाऊँगा। सिंह भी 'हे मृगराज ! स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ' कहने पर ही हाथियों को मारता है; मैं भी सिंह से यह कहलवाऊँगा कि 'हे जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा' और एक बढ़िया हाथी को मार उसका मांस खाऊँगा।

उसने शेर से कहा—स्वामी ! मैंने बहुत देर तक आपके मारे हुए हाथियों का मांस खाया। मैं भी एक हाथी को मारकर उसका मांस खाना चाहता हूँ। जिस जगह आप कञ्चनगुफा में लेटते हैं, मैं वहाँ लेट रहूँगा। आप पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी को देख मेरे पास आकर कहें 'जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा।' इतनी सी बात के लिए अनुदार न हों।

सिंह ने कहा—जम्बुक ! तेरी सामर्थ्य हाथी मारने की नहीं है। गीदड़-कुल में पैदा होकर कोई गीदड़ हाथी को मारकर उसका मांस खा सके, ऐसा गीदड़ दुनिया में नहीं है। तू ऐसी इच्छा मत कर। मेरे द्वारा मारे जाने वाले हाथियों का मांस खाकर ही रह।

ऐसा कहने पर भी वह नहीं माना। बार-बार कहता ही रहा।

सिंह ने जब देखा कि वह नहीं मानता तो स्वीकार कर कहा—अच्छा ! तो मेरी रहने की जगह पर जाकर लेट रह। जम्बुक को कञ्चनगुफा में लिटा पर्वत की चोटी पर चढ़ मस्त हाथी को देख गुफा के द्वार पर जाकर कहा—जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा।

शृगाल कञ्चनगुफा से निकला, जम्हाई ली, चारों ओर देखकर तीन बार आवाज की। फिर मस्त हाथी के सिर पर आक्रमण करने जाकर उसके पाँव में गिरा। हाथी ने दाहिना पाँव उठाकर उसके सिर पर रख दिया। सिर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं।

उसके शरीर को हाथी ने पाँव से इकट्ठा किया, और उस पर लीद करके चिंघाड़ता हुआ जंगल में चला गया।

बोधिसत्त्व ने यह हाल देख, 'जम्बुक ! अब अपना पराक्रम दिखा' कह,
यह गाथा कही—

लसी च ते निष्फलिता मत्थको च विदाळितो,
सब्बा ते फामुका भग्गा अज्ज खो त्वं विरोचसि ॥

[तेरे सिर का भीजा निकल गया है। मस्तक फट गया है। तेरी सभी हड्डियाँ
टूट गई हैं। आज तू अपना पराक्रम दिखा रहा है।]

लसी का मतलब है माथे का भीजा। निष्फलिता, निकल आई।

बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही। जब तक जीवन था तब तक जीवित रह कर्मा-
नुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। सिंह मैं ही था।

१४४. नंगुटठ जातक

“बहुम्येतं असम्भि जातवेव . . .” इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय
आजीविकों^१ के मिथ्या-मत के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन की पिछली तरफ आजीवक नाना प्रकार की मिथ्या-
तपस्याएँ करते थे। बहुत से भिक्षुओं ने उनके उकड़ू-बैठना, चिमगादड़-ब्रत,

^१ नग्न-साधुओं का एक सम्प्रदाय।

काँटों पर सोना, तथा पञ्चाग्नि ताप आदि मिथ्या तपों के भेदों को देखकर भगवान से पूछा—भन्ते ! इस मिथ्या-तप से कुछ भी उन्नति होती है ?

शास्ता ने उत्तर दिया—“भिक्षुओं, इस प्रकार के मिथ्या-तप से न कल्याण ही होता है, न उन्नति ही होती है। पूर्व समय में पण्डितों ने यह समझा कि इस प्रकार के तप से कल्याण होगा वा उन्नति होगी। वे जन्म-दिन पर रक्खी हुई अग्नि लेकर जंगल गए। वहाँ अग्नि-पूजा आदि से कुछ भी लाभ न देख, आग को पानी से बुझा बे कठिण अभ्यास कर अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।” इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनके पैदा होने के दिन माता-पिता ने जन्म-अग्नि लेकर रक्खी। सोलह वर्ष की आयु होने पर वे बोले—

“पुत्र ! तेरे जन्म के दिन हमने आग रक्खी है। यदि गृहस्थ होना चाहता है तो तीनों वेद सीख। यदि ब्रह्मलोक जाना चाहता है तो आग लेकर जंगल चला जा, वहाँ अग्नि की पूजा करते हुए महाब्रह्मा को प्रसन्न कर ब्रह्मलोक गामी होना।”

उसने कहा, मुझे गृहस्थी से काम नहीं। वह आग ले जंगल में प्रवेश कर, वहाँ आश्रम बना अग्नि-पूजा करता हुआ आरण्य में रहने लगा।

उसे एक दिन किसी प्रत्यन्त-ग्राम से दक्षिणा में एक बैल मिला। उस बैल को आश्रम पर ले जाकर उसने सोचा—अग्नि-भगवान को गो-मांस खिलाऊँगा। तभी उसे ख्याल आया—यहाँ नमक नहीं है। अग्नि-भगवान् बिना नमक के खा न सकेंगे। गाँव से नमक लाकर अग्नि-भगवान को नमक सहित खिलाऊँगा।

वह बैल को वैसे ही बाँध नमक लेने के लिए गाँव गया। उसके जाने पर बहुत शिकारी वहाँ आए। उन्होंने बैल को देख उसे मार डाला और उसका मांस पका खाकर उसकी पूँछ, जाँघ तथा चर्म वहीं छोड़कर शेष मांस लेकर चले गए।

ब्राह्मण ने लौटकर जब केवल पूँछ आदि को देखा तो सोचने लगा—यह अग्नि-भगवान् अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके। मेरी तो क्या रक्षा करेंगे ? यह अग्नि-पूजा निरर्थक है। इससे कल्याण वा उन्नति नहीं है।

उसका मन अग्नि-पूजा की ओर से उदासीन हो गया। वह बोला—भो

अग्नि-भगवान् ! तुम अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके। मेरी क्या रक्षा करोगे ? मांस तो नहीं है, इतने से ही सन्तुष्ट होओ। यह कह पूँछ आदि को आग में फेंकते हुए यह गाथा कही—

**बहुम्येतं असन्निभ ! जातबेद ! यंतं बालक्षिनाभिपूजयाम,
मंसारहस्स नत्थज्ज मंसं नंगुटम्यि भवं पटिग्गहातु ॥**

[हे असत्पुरुष ! अग्निदेव ! यह भी बहुत समझें कि हम पूँछ से तेरी पूजा कर रहे हैं। तुझे मांस मिलना योग्य था, लेकिन मांस नहीं है। इसलिए आप जनाव पूँछ ग्रहण करें।]

बहुम्येतं, इतना भी बहुत है, असन्निभ, असत्पुरुष ! असाधुजातिक। जात-बेद, अग्नि को सम्बोधन करता है। अग्नि जात होते ही, पैदा होते ही, अनुभव होती है, ज्ञात होती है, प्रकट होती है—इसलिए जातबेद कहलाती है। यं तं बाल-क्षिनाभिपूजयाम, आज हम तुझे जो अपनी पास की चीज भी सुरक्षित नहीं रख सकता उसकी पूँछ से पूजा कर रहे हैं। यही प्रकट करता है कि यह भी तेरे लिए बहुत कर रहे हैं। मंसारहस्स, तुझे मांस चाहिए था। आज तेरे लिए मांस नहीं है। नंगुटम्यि भवं परिग्गहातु, अपनी चीज को रख सकने में असमर्थ आप यह खुर-सहित जाँघ का चर्म और पूँछ ही ग्रहण करें।

इस प्रकार कह बोधिसत्त्व आग को पानी से बुझा ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो अभिर्ज्जा तथा समापत्तिर्या प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

आग को बुझानेवाला तपस्वी उस समय मैं ही था।

१४५. राध जातक

“न त्वं राध ! धिजानासि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए पूर्व-भार्या के प्रति आसक्ति के बारे में कही। वर्तमान-कथा इन्द्रिय-जातक^१ में आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर कहा—भिक्षु, स्त्रियों को बचाया नहीं जा सकता। पहरेदार रखने से भी उनकी देखभाल नहीं हो सकती। तू भी पहले पहरेदार रखकर भी नहीं बचा सका। अब कैसे बचा सकेगा ? इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तोते की योनि में पैदा हुए। काशी देश के एक ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व और उसके छोटे भाई को पुत्र की तरह पाला। उन दोनों में से बोधिसत्त्व का नाम हुआ पोट्टपाद; दूसरे का राध।

हाँ, उस ब्राह्मण की ब्राह्मणी अनाचारिणी थी, दुःशीला। वह व्यापार के लिए जाने लगा तो दोनों भाइयों से बोला—तात ! यदि माता ब्राह्मणी अनाचार करे, तो उसे रोकना। बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—तात ! अच्छा ! यदि रोक सकेंगे रोकेंगे : नहीं रोक सकेंगे तो चुप रहेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मणी को तोतों को सौंपकर व्यापार करने गया।

उसके जाने के दिन से ब्राह्मणी ने अनाचार करना आरम्भ किया। (घर में) प्रवेश करनेवालों की और बाहर निकलने वालों की गिनती नहीं रही। उसकी करतूत देख राध ने बोधिसत्त्व से कहा—“भाई ! हमारा पिता हमें कह गया था

^१ इन्द्रिय जातक (४२३)

कि यदि माता अनाचार करे तो उसे रोकना । अब वह अनाचार कर रही है । हम उसे रोकें ।” बोधिसत्त्व ने कहा—तात ! तू अपनी बेसमझी के कारण, मूर्खता के कारण, ऐसा कह रहा है । स्त्रियों को उठाए लेकर फिरा जाए, तब भी उनकी देखभाल नहीं हो सकती । जो काम किया नहीं जा सकता, उसे न करना चाहिए । इतना कह यह गाथा कही—

न त्वं राध ! विजानासि अङ्गुल्ले अनागते,
अव्यायतं बिलपसि विरत्ता कोसियायने ॥

[राध ! तू नहीं जानता । अभी आधी रात भी नहीं हुई । न जानने के कारण ही तू बकवास करता है । उसका (अपने पति की ओर से) मुँह मुड़ा है ।]

न त्वं राध ! विजानासि अङ्गुल्ले अनागते, तात ! राध ! तू नहीं जानता, आधी रात न होने पर ही पहले पहर में ही इतने आदमी आए । अब कौन जानता है कि कितने आदमी आएंगे ? अव्यायतं बिलपसि, तू व्यर्थ बकवास करता है । विरत्ता कोसियायने, माता कोसियायनि ब्राह्मणी का दिल विरक्त है । हमारा पिता के प्रति प्रेम नहीं है । यदि उसका उसमें प्रेम या स्नेह होता तो इस प्रकार अनाचार न करती । इन शब्दों से इस बात को प्रकट किया ।

इस प्रकार कह राध को ब्राह्मणी के साथ बोलने नहीं दिया ।

वह भी जब तक ब्राह्मण नहीं आया तब तक यथारुचि अनाचार करती रही । ब्राह्मण ने लौटकर पोठुपाद से पूछा—तात ! तेरी माँ कैसी है ? बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को जो जो हुआ सब कह दिया । फिर कहा—“तात ! इस प्रकार की दुश्चरित्रा से तुम्हें क्या प्रयोजन ? माता का दोष प्रकट करने के बाद से अब हम यहाँ नहीं रह सकते ।” वह ब्राह्मण के पाँव में गिरकर राध के सहित उड़कर जंगल चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार आर्य-सत्य प्रकाशित किए । सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्धिन्न भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जने थे । राध आनन्द था । पोठुपाद मैं ही था ।

१४६. काक जातक

“अपि नु हनुका सन्ता . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत से वृद्ध भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे गृहस्थ होने के समय श्रावस्ती के धनी परिवार के थे। एक दूसरे के मित्र थे। परस्पर मिलकर पुण्य करते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होंने सोचा कि हम बूढ़े हुए। हमें गृहस्थी से क्या लाभ? शास्ता के पास रमणीय बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो हम दुःख का अन्त करें।

वे अपनी सारी जायदाद लड़के लड़कियों को दे, रोते हुए रिश्तेदारों को छोड़, शास्ता से प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रजित हुए। लेकिन प्रव्रजित होने पर प्रव्रज्या के अनुकूल श्रमण-धर्म की पूर्ति नहीं की। बूढ़े होने से धर्म भी नहीं सीख सके। गृहस्थ रहने के समय की तरह प्रव्रजित होने पर भी विहार के एक कोने में पर्ण-शाला बनवा कर उसमें इकट्ठे ही रहते थे। भिक्षा माँगने के लिए भी प्रायः और कहीं न जाकर अपने लड़के लड़कियों के घर जाकर वहीं खाते थे।

उनमें से एक की पहली भार्य्या सभी वृद्ध भिक्षुओं का उपकार करनेवाली थी। इसलिए बाकी जनों को जो भिक्षा मिलती उसे लेकर भी उसी के घर जा बैठकर खाते। वह भी उनको जो सूप-व्यञ्जन तैयार होता देती। किसी बीमारी से वह मर गई।

वह वृद्ध स्थविर विहार जाकर एक दूसरे के गले मिल विहार के आस-पास यह कहते हुए रोने लगे—“जिसके हाथों में मधुर-रस था, वह उपासिका मर गई।” उनकी आवाज सुनकर इधर-उधर से भिक्षुओं ने आकर पूछा—“आयुष्मानो! क्यों रो रहे हो?” वे बोले—“हमारे मित्र की पहली भार्य्या मर गई है। उसके

हाथ में मधुर-रस था। वह हमारा बहुत उपकार करने वाली थी। अब वैसी स्त्री कहाँ मिलेगी? इसी वजह से रो रहे हैं।”

उनको विलाप करते देख भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—“आयु-प्मानो! इस कारण से वृद्ध स्थविर एक दूसरे के गले में हाथ डाल रोते हुए घूम रहे हैं।”

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?”

“अमुक बातचीत” कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, यह केवल अभी उसके मरने पर रोते हुए नहीं घूम रहे हैं। पहले भी इन्होंने इसके कौए की योनि में पैदा हो समुद्र में मरने पर सोचा कि समुद्र का पानी उलीचकर इसे निकाल लाएँगे। वे परिश्रम करते हुए (कठिनाई से) पण्डितों द्वारा जीवित बचाए गए।”—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौवा अपनी कौवी को लेकर चोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे गया। उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मांस तथा सुरा आदि से नाग को बलि चढ़ा चले गए थे। कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर आदि देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मांस आदि खाकर बहुत-सी सुरा पीली। सुरापान से वे दोनों नशे में मस्त हो गए। उन्होंने सोचा कि समुद्र-क्रीड़ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर आई और कौवी को समुद्र में बहा ले गई। उसे एक मच्छ मांस खाकर निगल गया। कौआ रोने पीटने लगा—मेरी भार्या मर गई।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे—क्यों रोते हो? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्या को लहर ले गई। वे सब एक स्वर से रोने लग गए।

उनको यह स्थान हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य है? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को निकाल लेंगे।

वे मुँह भर-भरकर पानी बाहर छोड़ने लगे। निमक के पानी से गला सूखने पर वह स्थल पर जाकर विश्राम लेते।

जब उनकी दाढ़ें थक गईं, मुख सूख गए, आँखें लाल पड़ गईं तो उन्होंने दीन दुखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा—“भो ! हम तो समुद्र से पानी लाकर बाहर गिराते हैं; लेकिन जिस-जिस जगह से पानी लाते हैं वह फिर पानी से भर जाती है। हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे।” इतना कह, यह गाथा कही—

अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्तति,
ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि॥

[हमारी दाढ़ें थक गईं और मुँह सूखता है। हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन पार नहीं पाते। महासमुद्र भरता ही जाता है।]

अपि नु हनुका सन्ता, हमारी दाढ़ें थक गईं। ओरमाम न पारेम, हम अपना बल लगाकर समुद्र का पानी निकाल बाहर करना चाहते हैं; लेकिन हम खाली नहीं कर सकते, यह पूरतेव महोदधि।

इस प्रकार कहते हुए वे सभी कौवे रोने लगे—उस कौवी की ऐसी चोंच थी ! ऐसी गोल-गोल आँखें थीं ! ऐसा सुन्दर आकार-प्रकार था ! ऐसा मधुर शब्द था ! वह इस चोर समुद्र के कारण नष्ट हो गई।

उन्हें इस प्रकार विलाप करते देख समुद्र-देवता ने भयानक रूप दिखाकर भगाया। इस प्रकार उनका कल्याण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवी यह पूर्व की भार्य्या थी। कौवा बूढ़ा स्थविर था। बाकी कौवे अन्य बूढ़े स्थविर थे। समुद्र-देवता तो मैं ही था।

१४७. पुष्परत्न जातक

“नयिबं दुक्खं अबुं दुक्खं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उससे पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? वह बोला—हाँ, सचमुच। “तुझे किसने उत्तेजित किया ?” पूछने पर उसने कहा—“मेरी पहली भार्या ने। भन्ते ! उस स्त्री के हाथ में मधुर-रस है। मैं उसके बिना नहीं रह सकता।”

शास्ता ने कहा—“भिक्षु ! यह तेरा अनर्थ करनेवाली है। तू इसके कारण पहले भी सूली पर चढ़ाया गया। इसी के कारण रोता हुआ मरकर तू नरक में पैदा हुआ। अब फिर तू उसे ही क्यों चाहता है ?” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मादत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व आकाश स्थित देवता हुए।

बाराणसी में कार्तिक मास की रात्रि का उत्सव हुआ। नगर देवनगर की तरह सजाया गया। सब लोग उत्सव मनाने में मस्त थे।

एक दरिद्र आदमी के पास केवल एक ही मोटे कपड़े का जोड़ा था। उसने उसे अच्छी तरह धुलवाकर, स्त्री कराके, उसमें सैकड़ों, हजारों चुनन देकर रक्खा था।

उसकी भार्या बोली—“स्वामी ! मेरी इच्छा है कि केसर के रंग का एक वस्त्र पहन तेरे गले से लग कार्तिक के उत्सव में बिचरूँ।”

स्वामी बोला—“भद्रे ! हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ से आयागा ? शुद्ध वस्त्र पहन कर खेल ।”

“केसर रंग न मिलने पर उत्सव न खेलूंगी । तू दूसरी स्त्री लेकर खेल ।”

“भद्रे ! मुझे क्यों कष्ट देती है । हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ ?”

“स्वामी ! पुरुष की इच्छा हो तो क्या नहीं है ? क्या राजा के केसर-बाग में बहुत केसर नहीं है ?”

“भद्रे ! वह स्थान राक्षसों से सुरक्षित तालाब की तरह बहुत बलवान आदमियों से सुरक्षित है । वहाँ नहीं जा सकता । तू उसकी इच्छा मत कर । जो है उसी से सन्तुष्ट रह ।”

“स्वामी ! रात को अन्धकार होने पर क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ आदमी नहीं जा सकता ?”

उसके बार बार कहने से आसक्ति होने के कारण उसने उसकी बात स्वीकार कर कहा—“अच्छा, भद्रे ! चिन्ता मत कर ।”

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, रात को, जीवन का मोह छोड़, नगर से निकल, राजा के केसर-बाग पर जा, वहाँ बाड़ को तोड़, बाग में दाखिल हुआ । पहरदारों ने बाड़ के शब्द को सुन ‘चोर है’ समझ घेर कर पकड़ लिया । फिर गाली दे, पीट, बाँधकर दिन होने पर राजा के पास ले गए । राजा ने आज्ञा दी—जाओ इसे सूली पर चढ़ा दो ।

वे उसकी बाहों को पीछे बाँध, बध्य-भेरी के बजते हुए उसे नगर से बाहर ले गए और वहाँ सूली पर चढ़ा दिया । बड़ी वेदना हुई । कौवे सिर पर बैठ कर बछी की नोक सदृश चोंच से उसकी आँखें निकालने लगे । वैसे कष्ट को भी भूलकर वह यही सोचता रहा—‘ओह ! मैं घने पुष्प के रंग से रंगे वस्त्र पहने, गले में दोनों हाथ डाले उस स्त्री के साथ कार्तिक रात्रि के उत्सव में न धूम सका ।’ इस प्रकार चिन्ता करते हुए यह गाथा कही—

नयिबं दुष्खं अबुं दुष्खं यं मं तुदति बायसो,

यं सामा पुष्करत्तेन कत्तिकं नानुभोत्सति ॥

[न मैं इसे ही दुःख समझता हूँ, न उसे ही जो कि कौआ मुझे ठोंगे मारता है ।

मुझे दुःख है तो यह है कि मेरी श्यामा फूल के रेंगे वस्त्र से कार्तिक के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी ।]

नयिदं दुःखं अबुं दुःखं यं मं तुबति वायसो, यह जो सूली पर चढ़ने का शारीरिक और मानसिक दुःख है और यह जो लोहे जैसी चोंच से कौआ मुझे ठोंगे मारता है, यह सब मेरे लिए दुःख नहीं है । केवल वही दुःख मेरे लिए दुःख है । कौनसा ? यं सामा पुष्परत्नेन कत्तिकं नानुभोस्सति, जो वह प्रियङ्गु श्यामा मेरी भाय्या एक केसरी वस्त्र पहन, एक ओढ़, इस प्रकार घने रंगीन लाल वस्त्र जोड़े को धारण कर मुझे गले लगा कार्तिक रात्रि के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी । यही मेरा दुःख है । यही मुझे कष्ट देता है ।

वह इस प्रकार उस स्त्री के बारे में विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति-पत्नी । उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला आकाशदेवता मैं ही था ।

१४८. सिगाल जातक

“नाहं पुनं न च पुनं...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता का निग्रह करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ महाधनवान्, सेठों के पुत्र, जिनकी परस्पर मित्रता थी, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, शासन में दिल से प्रब्रजित हो जेतवन के उस हिस्से में रहने लगे जिसमें खनाथपिण्डिक ने कार्षापण बिछवाए थे ।

एक दिन आधी रात के समय उनके मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ। उन्होंने उद्विग्न होकर एक बार छोड़े हुए कामुकता के विचार को फिर अपनाने की सोची।

शास्ता ने आधी रात के समय अपने सर्वज्ञता रूपी ज्ञान-दण्ड-प्रदीप को उठाकर देखा कि इस समय जेतवन के भिक्षुओं के मन में क्या विचार उत्पन्न हो रहे हैं। उन्हें पता लगा कि उन भिक्षुओं के मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ है।

बुद्ध अपने शिष्यों की उसी तरह रक्षा करते हैं जैसे एक ही पुत्रवाली स्त्री अपने पुत्र की अथवा एक ही आँखवाला अपनी आँख की। पूर्वाह्न आदि जिस किसी समय में भी उनके मन में बुरे विचार आते हैं, वे उन्हें अधिक न बढ़ने देकर तुरन्त निग्रह करते हैं। इसलिए उनके मन में ऐसा हुआ कि यह तो चक्रवर्ती राजा के नगर के अन्दर ही चोरों के दाखिल हो जाने जैसी बात है। मैं अभी उन्हें धर्मोपदेश कर, उनके बुरे संकल्पों का निग्रह कर उन्हें अहंत्व दूँगा।

उन्होंने सुगन्धित गन्धकुटी से निकल, आयुष्मान् आनन्द स्थविर को जो कि धर्म के खजानची थे, मधुर स्वर से बुलाया—“आनन्द !”

स्थविर “क्या आज्ञा है भन्ते !” कह प्रणाम करके खड़े हुए।

“आनन्द ! करोड़ों कार्षापण फैलाए जाने की सीमा के अन्दर जितने भिक्षु हैं, उन सब को गन्धकुटी के आँगन में एकत्र कर !”

बुद्ध ने सोचा कि यदि मैं केवल उन पाँच सौ भिक्षुओं को बुलवाऊँगा, तो उनके मन में होगा कि शास्ता ने हमारे मन के बुरे विचारों को जान लिया। वे उद्विग्न हो जाएँगे और धर्मोपदेश ग्रहण न कर सकेंगे। इसलिए कहा कि सभी को इकट्ठा कर।

“अच्छा भन्ते !” कह स्थविर ने चाबी^१ ले, एक आँगन से दूसरे आँगन घूम, सभी भिक्षुओं को गन्धकुटी के आँगन में इकट्ठा कर बुद्ध के लिए आसन बिछाया। शास्ता बिछे हुए आसन पर पालथी मार, शरीर को सीधा रख वैसे ही बैठे मानो शिला रूपी पृथ्वी पर सुमेरु पर्वत प्रतिष्ठित हुआ हो। बारी बारी करके छः वर्ण की घनी बुद्ध रश्मियाँ निकल रही थीं। वह रश्मियाँ भी हाथ जितनी ऊँची हो, छत जितनी ऊँची हो, कंगूरे जितनी ऊँची हो, छीज छीज कर आकाश में बिजली

^१ अवापुरण—दरवाजा खोलने का लकड़ी का कोई औजार।

की तरह फैलीं। ऐसा हुआ जैसे समुद्र की कोख को क्षुब्ध करके उसमें से बाल-सूर्य निकला हो।

भिक्षुसंघ भी शास्ता को प्रणाम करके बड़े आदर के साथ उन्हें घेरकर इस प्रकार बैठा जैसे शास्ता लाल कम्बल की कनात से घिरे हुए हों। बुद्ध ने भिक्षुओं को ब्रह्मस्वर से सम्बोधन कर कहा—

“भिक्षुओ, भिक्षु को काम-भोग सम्बन्धी वितर्क, क्रोध सम्बन्धी वितर्क, विहिंसा सम्बन्धी वितर्क—इन तीन बुरे संकल्पों को मन में जगह नहीं देनी चाहिए। यदि मन में कोई बुरा विचार आ जाए तो उसे छोटा न समझना चाहिए। बुरा विचार शत्रु की तरह होता है। शत्रु कभी छोटा नहीं होता। मौका मिलने से वह नाश ही कर डालता है। इसी प्रकार थोड़ा सा भी बुरा विचार यदि उसे बढ़ने का मौका मिले तो महाविनाश कर डालता है। बुरा विचार हलाहल विष की तरह होता है, ऐसे फोड़े की तरह होता है, जिसने चमड़ी और रोएँ उखाड़ लिए हों, विपैले साँप की तरह होता है, बिजली और आग की तरह होता है। इससे चिमटना ठीक नहीं। डरते रहना चाहिए। जिस समय पैदा हो उसी समय ज्ञानबल से अथवा भावना-बल से उसे इस तरह त्याग देना चाहिए जिस तरह कमल के पत्ते पर पड़ी हुई बूँद उसे छोड़ देती है। पुराने पण्डितों ने थोड़े से भी बुरे विचार को सहन न कर उसका इस प्रकार निग्रह कर दिया कि वह फिर पैदा न हो।” इतना कह बुद्ध ने पूर्वजन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सियार की योनि में पैदा हो जंगल में नदी के किनारे बसने लगे।

एक बूढ़ा हाथी गङ्गा के किनारे मर गया। शिकार की खोज में घूमते हुए सियार ने हाथी के शरीर को देखकर सोचा कि मुझे बड़ा शिकार मिला है। उसने सूँड़ पर जाकर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो हल की फाल पर मुँह लगा। यहाँ कुछ खाने योग्य नहीं है, समझ उसने दाँतों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो खम्भे पर मुँह लगा हो। कान पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो छाज के कोने पर मुँह लगा हो। पंटे पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो धान की कोठी पर मुँह लगा हो। पैरों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो ऊखल पर मुँह लगा हो। पूँछ पर मुँह मारा।

ऐसा लगा मानो मूसल पर मुँह लगा हो। यहाँ भी कुछ खाने योग्य नहीं है, सोच कहीं भी कुछ मजा न आने पर उसने गुदा-मार्ग में मुँह मारा। ऐसा लगा मानो नरम नरम पूए हों।

उसने सोचा कि अब मुझे इस शरीर में खाने योग्य कोमल जगह हाथ लग गई। उसके बाद से वह खाता हुआ पेट के अन्दर घुस, वहाँ बृक्क, हृदय आदि को खाकर प्यास के समय रक्त पी, लेटने की इच्छा होने पर पेट में ही फैलकर लेटा। वह सोचने लगा कि यह हाथी का शरीर मुझे रहने का सुख देता है इसलिए घर की तरह है; खाने की इच्छा होने पर मांस की कमी नहीं; मुझे किसी दूसरी जगह जाने की क्या आवश्यकता? वह किसी दूसरी जगह न जा, हाथी के पेट में ही मांस खाता हुआ रहने लगा।

जैसे जैसे समय गुजरता गया ग्रीष्म ऋतु की वायु के तथा सूर्य की किरणों के स्पर्श से वह लाश सूखकर उसमें बल पड़ गया। जिस द्वार से सियार ने प्रवेश किया था, वह दरवाजा बन्द हो गया। पेट में अन्धेरा छा गया। सियार को ऐसा हुआ मानो लोकान्तरिक^१ नरक में चला गया हो। लाश के सूखने पर मांस भी सूखने लगा। लोहू भी कम पड़ गया। निकलने को दरवाजा न मिलने पर, भय-भीत हो वह दौड़ता हुआ, इधर उधर कुरेदता हुआ, बाहर निकलने के लिए द्वार खोजता घूमने लगा।

इस प्रकार देगची में आटे का गोला उबलने की तरह पसीना बहाते रहने पर कुछ दिन में बड़ी भारी वर्षा हुई। उसने उस लाश को भिगोकर पहले की दशा में कर दिया। गुदा-मार्ग खुलकर तारे की तरह दिखाई देने लगा। सियार ने वह छेद देखा तो समझा कि अब मेरी जान बची। वह हाथी के सिर तक गया, फिर जोर से उछलकर गुदा-मार्ग को सिर से धक्का दे बाहर निकल आया। शरीर गीला होने के कारण उसके सभी बाल गुदा-मार्ग में ही सट गए।

ताड़-स्कन्ध के सदृश लोमरहित शरीर को देखकर उसका चित्त उद्विग्न हुआ। वह थोड़ी देर दौड़ा। फिर रुका और बैठ कर अपने शरीर को देखते हुए सोचने लगा—

“मुझे यह दुःख किसी दूसरे ने नहीं दिया है। यह लोभ के हेतु से, लोभ के

^१ इस नरक में अन्धेरा गुप्त रहता है।

कारण से, लोभ की वजह से ही मुझे भोगना पड़ा है। अब से मैं लोभ के वशीभूत न होऊँगा। फिर हाथी के शरीर में प्रवेश न करूँगा।”

उसका हृदय संवेग से भर गया और यह गाथा कही—

ताहं पुनं न च पुनं न चापि अपुनप्पुनं,
हृत्थिबोन्दि पवेक्खामि तथा हि भयतज्जितो ॥

[मैं ऐसा भयभीत हो गया हूँ कि मैं अब फिर, फिर और भी फिर, फिर अर्थात् कभी भी, हाथी के शरीर में प्रवेश नहीं करूँगा।]

न चापि अपुनप्पुनं, आकार निपात मात्र है। इस सारी गाथा का अर्थ यह है कि इससे फिर और उससे फिर तथा जो कहा गया है उससे भी फिर फिर हाथी के शरीर कहे जाने वाले हृत्थि बोन्दि न पवेक्खामि। किस लिए? तथा हि भय तज्जितो, मैं इसी बार प्रवेश करने से भी भयभीत हो गया; मरण-भय से त्रास को तथा उद्विग्नता को प्राप्त हुआ।

इतना कह और वहाँ से भाग फिर उस अथवा अन्य किसी भी हाथी के शरीर को खड़े होकर देखा तक नहीं। उस के बाद से लोभ के वशीभूत नहीं हुआ।

शास्ताने यह धर्मदेशना ला कर कहा—“भिक्षुओ, अन्दर जो मैल पैदा हो जाए उस चित्त के मैल को बढ़ने न देकर वहीं निग्रह करना चाहिए।” इतना कह आर्य-सत्त्वों का प्रकाशन कर, जातक का सारांश निकाला। सत्त्वों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह पाँच सौ भिक्षु अर्हत् हो गए। शेष में से कुछ स्त्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी हुए।

उस समय सियार तो मैं ही था।

१४९. एकपण्ण जातक

“एक पण्णो अयं रुक्खो . . .” यह शास्ता ने वैशाली के पास महावन की कूटागार शाला में रहते हुए वैशाली के एक दुष्ट-स्वभाव लिच्छवि-कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वैशाली में गावुत गावुत^१ की दूरी पर तीन प्राकारें बनी थीं। तीनों जगहों पर गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थीं तथा कोठे थे। इस प्रकार अत्यन्त शोभायमान था।

वहाँ सदैव राज्य करवाते हुए रहनेवाले राजाओं की संख्या सात हजार सात सौ सात होती थी। उतने ही उपराजा होते थे। उतने ही सेनापति। उतने ही भण्डारी।

उन राजकुमारों में एक कुमार दुष्ट लिच्छवि-कुमार कहलाता था। वह क्रोधी था, प्रचण्ड था, कठोर था। डण्डे से छोड़े गए जहरीले साँप की तरह क्रोध से सदैव जलता रहता था। कोई भी उसके सामने दो तीन शब्द भी नहीं बोल सकता था। उसे न उसके माता पिता, न रिश्तेदार और न यार-दोस्त ही समझा सके। तब उसके माता-पिता ने सोचा—“यह कुमार अत्यन्त कठोर स्वभाव का है। दुस्साहसी है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड़ और कोई इसे विनयी नहीं बना सकता। हो सकता है कि यह उन्हीं लोगों में से हो जो बुद्ध के विनीत बनाने से ही विनीत बनते हैं।” वे उसे शास्ता के पास ले गए और प्रणाम करके बोले—भन्ते ! यह कुमार प्रचण्ड है, कठोर है, क्रोध से जलता है। इसे उपदेश दें।

शास्ता ने उस कुमार को उपदेश दिया—“कुमार ! प्राणियों के प्रति प्रचण्ड

^१ गव्यूति = २ मील।

नहीं होना चाहिए, दुस्साहसी नहीं होना चाहिए, कष्ट देने वाला नहीं होना चाहिए । कठोर वाणी जिस माता ने जन्म दिया है उसको भी, पिता को भी, पुत्र को भी, भाई बहन को भी, भार्या का भी, मित्र-बन्धुओं को भी अप्रिय होती है, अच्छी नहीं लगती । जो आदमी उसने के लिए आए सर्प की तरह, जंगल में लूटमार करने के लिए तैयार चोर की तरह, खाने के लिए आए यक्ष की तरह उद्विग्न होता है, वह दूसरे जन्म में नरक आदि में पैदा होता है । इस जन्म में क्रोधी आदमी सजा-धजा रहने पर भी दुर्वर्ण ही होता है । इसका पूर्ण चन्द्र की सी शोभा वाला भी चेहरा आग से जले कमल के सदृश अथवा मैले कञ्चन के शीशे की तरह भोंडा हो जाता है, देखने में बुरा लगता है । क्रोध के कारण ही प्राणी शस्त्र लेकर स्वयं अपने को मार डालते हैं । विष खा लेते हैं । रस्सी से फाँसी लटक जाते हैं । प्रपात से गिर पड़ते हैं । इस प्रकार क्रोध के वशीभूत हो मरकर वह नरक आदि में पैदा होते हैं । दूसरों को कष्ट देनेवाले भी इस जन्म में निन्दा को प्राप्त हो मरने पर नरक आदि में उत्पन्न होते हैं । फिर जब मनुष्य होकर पैदा होते हैं तो पैदा होने के ही समय से लेकर प्रायः रोगी रहते हैं । आँख की बीमारी तथा कान की बीमारी आदि रोगों में एक से उठने पर दूसरी बीमारी में फँस जाते हैं । रोग से मुक्त न हो सकने के कारण नित्य दुखी रहते हैं । इसलिए सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना रखनी चाहिए । सभी का हित-चिन्तक होना चाहिए । सभी के प्रति कोमल चित्त वाला होना चाहिए । क्योंकि इस प्रकार का (क्रोधी) आदमी नरक आदि के भय से मुक्त नहीं होता ।

वह कुमार शास्ता का एक ही उपदेश सुनकर मान-रहित हो गया, शान्त इन्द्रिय हो गया; क्रोध-रहित हो गया; मैत्री-चित्तवाला हो गया तथा कोमल-चित्त का हो गया । उसे कोई गाली देता, मारता तो भी वह उसकी ओर रुककर न देखता । वह ऐसा साँप हो गया जिसके दाँत उखाड़ दिए गए हों, ऐसा केकड़ा हो गया जिसका डंक जाता रहा हो, ऐसा बैल हो गया जिसके सींग न हों ।

उसका समाचार जानकर भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—
आयुष्मानो ! **दुष्ट लिच्छवि-कुमार** को चिरकाल तक उपदेश देते रहकर भी न माता-पिता, न रिश्तेदार-मित्र आदि ही उसे विनीत बना सके । सम्यक् सम्बुद्ध ने उसे एक ही उपदेश से ऐसा कर दिया जैसे किसी मस्त हाथी को शान्त कर दिया हो । यह ठीक ही कहा गया है—भिक्षुओं ! हाथी-दमन करने वाला जब हाथी

को दमन करता है तो दमन किया हुआ हाथी एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम दिशा में, चाहे उत्तर दिशा में अथवा दक्षिण में । भिक्षुओ, घोड़ा-दमन करनेवाला जब घोड़े को दमन करता है तो दमन किया हुआ घोड़ा एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व-दिशा में, चाहे पच्छिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में । भिक्षुओ, बैल को दमन करने वाला जब उसे दमन करता है, तो दमन किया हुआ बैल एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व-दिशा में, चाहे पच्छिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में । लेकिन भिक्षुओ, जिसे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शिक्षित करते हैं वह आठ दिशाओं में जाता है । रूपवान् रूपों को देखता है, यह एक दिशा है . . . सञ्जा तथा वेदना का जो निरोध है उसे प्राप्त कर विचरता है, यह आठवीं दिशा है । वह शिक्षकों में अनुपम पुरुष-दमन सारथि कहलाते हैं ।^१ आयुष्मानो ! सम्यक् सम्बुद्ध के समान पुरुषों का दमन करनेवाला सारथि नहीं है ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ ! मैंने इसे केवल अब ही एक ही उपदेश से शिक्षित नहीं किया है; पहले भी एक ही उपदेश से शिक्षित किया है ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने उबीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला में तीनों वेद और सभी शिल्प सीखे । फिर कुछ समय घर में रहकर माता पिता के मरने पर ऋषियों की प्रब्रज्या के ढंग से प्रब्रजित हो अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय में प्रवेश किया । चिरकाल तक वहाँ रहने के बाद नमक और खटाई खाने के लिए जनपद में आकर बाराणसी पहुँच राजा के उद्यान में रहा । फिर एक दिन अच्छी तरह से वस्त्र पहन, आच्छादित हो, तपस्वी के रूपरंग में भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रविष्ट हो, राजा के आँगन में पहुँचा ।

राजा ने झरोखे से देखा तो उसकी चाल-ढाल से मन प्रसन्न हुआ । उसने देखा कि यह तपस्वी शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त मनवाला है । चलता है तो नीची

^१ मज्झिम निकाय (३) ।

नजर करके युग-मात्र^१ देखता हुआ चलता है। मालूम होता है कि कदम कदम पर एक एक हजार की थैली रखता हुआ सिंह की तरह चला आ रहा है। 'यदि कहीं पर शान्त-धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी' सोच एक अमात्य की ओर देखा।

'देव ! क्या आज्ञा है ?'

'इस तपस्वी को ले आओ।'

वह 'देव ! अच्छा' कह बोधिसत्त्व के पास गया। वहाँ पहुँचकर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उनके हाथ से भिक्षा-पात्र लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा—“महापुण्य-वान् ! क्या बात है ?”

“भन्ते ! महाराज आपको याद कर रहे हैं।”

“हम राजकुल में आने जाने वाले नहीं हैं, हम हिमवन्त-निवासी हैं।”

अमात्य ने जाकर राजा से यह बात कही। राजा बोला—हमारे यहाँ आने जाने वाला कोई भिक्षु नहीं है। उन्हें जाकर ले आओ।

अमात्य ने जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, प्रार्थना कर, साथ लिवा राज-भवन में पहुँचाया।

राजा ने बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, श्वेत छत्र लगे हुए सोने के सिंहासन पर बिठा, अपने लिए तैयार किए गए नाना प्रकार के भोजन खिलाकर पूछा—‘भन्ते ! कहाँ रहते हैं ?’

‘महाराज ! हम हिमवन्त-निवासी हैं।’

‘अब कहाँ जा रहे हैं ?’

‘महाराज ! वर्षा-ऋतु के अनुकूल निवास स्थान की खोज है।’

‘तो भन्ते ! हमारे ही उद्यान में रहें।’

उनसे स्वीकृति ले अपना भी भोजन समाप्त कर राजा बोधिसत्त्व के साथ उद्यान गया। वहाँ पर्णशाला बनवा, उसमें रात के रहने योग्य तथा दिन में रहने योग्य स्थान तैयार करवा, प्रब्रजितों की आवश्यकताएँ दे, उनकी सेवा आदि के लिए उद्यानपाल को भार सौंप स्वयं नगर को लौटा। उस समय से बोधिसत्त्व उद्यान में रहने लगे। राजा भी दिन में दो तीन बार उनकी सेवा में जाता।

^१ युग, दो हाथ तक।

उस राजा का बुद्ध कुमार नाम का पुत्र था। वह क्रोधी था, कठोर था। न उसे राजा ही विनीत बना सका, न बाकी रिश्तेदार। आमात्यों और ब्राह्मण गृहपतियों ने क्रुद्ध होकर इतना कहा कि 'हे स्वामी ! ऐसा न करें। ऐसा न कर सकेंगे।' इतने से भी वह उसे कुछ न समझा सके।

राजा ने सोचा मेरे शीलवान् तपस्वी के अतिरिक्त कोई दूसरा इस कुमार को विनीत नहीं बना सकता।

वह कुमार को बोधिसत्त्व के पास ले गया और उन्हें सौंपते हुए कहने लगा—भन्ते ! यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है। हम इसे विनीत नहीं कर सकते। आप इसे किसी ढंग से शिक्षा दें। इतना कह चला गया।

बोधिसत्त्व ने कुमार के साथ उद्यान में घूमते हुए नीम का एक पौदा देखा जिसके एक ओर एक पत्ता, दूसरी ओर दूसरा पत्ता—इस प्रकार कुल दो पत्ते थे। बोधिसत्त्व ने कुमार से कहा—कुमार ! इस पौदे के पत्ते खाकर इसका रस चखो। उसने उसका एक पत्ता मुँह में रखते ही उसका रस चख "थू" करके जमीन पर धूका। "कुमार यह क्या ?" "भन्ते ! यह पौदा अभी हलाहल विष के समान है; बड़े होने पर तो यह बहुत मनुष्यों की जान लेगा।" इतना कहते हुए उसने नीम के पौदे को उखाड़कर हाथों से मल डाला और यह गाथा कही—

एकपण्णो अयं खखो न भुम्या चतुरंगुलो,
फलेन विसकप्पेन महायं किं भविस्सति॥

[इस पौदे का केवल एक पत्ता है और यह भूमि से चार अंगुल ऊँचा नहीं। विष जैसे पत्तेवाला यह बड़ा होकर क्या होगा ?]

एकपण्णो, दोनों ओर एक एक पत्ता है। न भुम्या चतुरंगुलो, भूमि से चार अंगुल भी ऊँचा नहीं बढ़ा है। फलेन, अर्थात् पत्ते से। विसकप्पेन, हलाहल विष जैसे से। इतना छोटा होता हुआ भी ऐसे कड़वे फल वाला है। महायं किं भविस्सति, जब यह वृद्धि पाकर बड़ा होगा तब कैसा होगा ? निश्चय से मनुष्य की जान लेने वाला होगा। इसी से उखाड़ कर हाथ से मलकर फेंक दिया—यह कहा।

तब बोधिसत्त्व ने उसे कहा—‘कुमार ! तूने इस पौदे को यह सोचकर कि यह अभी से इतना तीता है, बड़े होने पर इससे किसी की क्या उन्नति होगी, तोड़ कर, मरोड़ कर फेंक दिया । जैसे तूने इसके प्रति बरताव किया, ठीक इसी तरह तेरे राष्ट्र के बासी भी यह सोचेंगे कि यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है, बड़ा होने पर राज्य करके क्या करेगा ? इससे हमारी उन्नति कहाँ होगी ? वह तुझे राज्य न दे, नीम के पौदे की तरह उखाड़कर तुझे राष्ट्र से निकाल देंगे । इसलिए नीम के पौदे के स्वभाव को छोड़ अब से शान्ति, मैत्री तथा दया से युक्त हो ।’

उस समय से उसने अभिमान छोड़ दिया । नम्र हो गया । शान्ति, मैत्री और दया से युक्त हो बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया । फिर दान आदि पुण्य कर्म करता हुआ यथाकर्म (परलोक) सिधारा ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना “भिक्षुओ ! मैंने केवल अभी इस दुष्ट लिच्छवि कुमार को सीधा नहीं किया, पहले भी सीधा किया है” कह जातक का मेल बैठाया ।

उस समय दुष्ट कुमार यह लिच्छवि-कुमार था । राजा आनन्द था । उपदेश देनेवाला तपस्वी मैं ही था ।

१५०. सञ्जीव जातक

“असन्तं यो पगण्हाति . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजातशत्रु राजा द्वारा किए गए दुर्गुणी के आदर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसने बुद्धों के विरोधी, दुश्चरित्र, पापी बेवबत्त के प्रति श्रद्धावान् हो, उस दुष्ट असत्पुरुष को ऊँचा स्थान दे उसका आदर करने की इच्छा से बहुत सा धन खर्च करके गया-सीस पर एक विहार बनवा दिया । उसी को बात मान अपने पिता को जो कि सोतापन्न आर्य-श्रावक था मरवा डाला । इस प्रकार अपने सोतापन्न होने की सम्भावना में बाधा डाल विनाश को प्राप्त हुआ ।

जब उसने सुना कि देवदत्त को जमीन निगल गई तो उसे डर हुआ कि कहीं उसे भी जमीन न निगल जाए। भयभीत होने से उसका राज्य-सुख जाता रहा। शय्या पर सोता तो उसे सोने में मजा न आता। तीव्र वेदना से पीड़ित हाथी के बच्चे के समान वह इधर उधर विचरता। उसे ऐसा दिखाई देने लगा जैसे पृथ्वी फट गई हो, उसमें से अबीचि-ज्वाला^१ निकल रही हो, और पृथ्वी उसे निगले जा रही हो; तप्त लोह शय्या पर लिटाकर लोह की कीलें ठोंकी जा रही हों। इससे उस राजा को चोट खाए मुर्गे की तरह क्षण भर के लिए भी शान्ति न थी; कांपता ही रहता था।

उसने सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन कर उनसे क्षमा मांगने की तथा शंका मिटाने की इच्छा की। लेकिन अपने अपराध के भार के कारण उसकी जाने की हिम्मत न हुई।

राजगृह नगर में कार्तिकोत्सव था। नगर देवनगर की तरह अलंकृत था। महल पर अमात्यगणों से घिरा राजा स्वर्ण सिंहासन पर बैठा था। उसने देखा कि कौमारभृत्य जीवक पास ही बैठा है। उसके मन में आया कि मैं जीवक को लेकर सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाऊँ। लेकिन उसने साथ ही सोचा कि मैं जीवक को सीधा तो यह नहीं कह सकता कि हे जीवक! मैं सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाना चाहता हूँ। अकेला नहीं जा सकता। मुझे बुद्ध के पास ले चल। मैं उसे एक ढंग से कहूँगा—रात्रि के सौन्दर्य की प्रशंसा करके पूछूँगा कि आज हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जिसका सत्संग करने से मन प्रसन्न हो। इसे सुन कर आमात्य अपने अपने शास्ता की प्रशंसा करेंगे। जीवक भी सम्यक् सम्बुद्ध की प्रशंसा करेगा। तब उसे लेकर बुद्ध के पास जाऊँगा।

उसने पाँच पदों से रात्रि की प्रशंसा की—“भो! चाँदनी रात्रि लक्षण-सम्पन्ना है। भो! चाँदनी रात्रि सुन्दर है। भो! चाँदनी रात्रि दर्शनीय है। भो! चाँदनी रात्रि मन को प्रसन्न करने वाली है। भो! चाँदनी रात्रि रमणीय है। आज की रात्रि हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जिसका सत्संग करने से चित्त प्रसन्न हो?”

एक आमात्य ने पूरण कश्यप की प्रशंसा की। एक ने मक्खलि गोशाल की।

^१अबीचि नरक से निकलने वाली ज्वाला।

एक ने अजित केश कम्बल की। एक ने प्रबुध कात्यायन की। एक ने बेलद्विष्ठुत्र सञ्जय की। एक ने निर्ग्रन्थनाथपुत्र की।

राजा उनकी बातचीत सुन चुप रहा। वह माहामात्य जीवक के कहने का ही विश्वास करता था। जीवक ने भी यह सोचकर कि जब राजा मेरे प्रति कुछ कहेगा, तभी देखूंगा मौन ही रक्खा। राजा ने पूछा—“जीवक ! तू क्यों चुप है ?” तब जीवक ने आसन से उठ जिधर भगवान् थें उधर हाथ जोड़कर कहा—देव ! यह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हमारे आम्रवन में रहते हैं। उनके साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं। उन भगवान् की इस प्रकार की कीर्ति है कि वह अर्हत् हैं . . . इस प्रकार नौ तरह^१ के गुण हैं, कह और उनके जन्म के समय से पूर्व निमित्त आदि भेद तथा भगवान् के प्रताप को प्रकाशित कर कहा कि देव ! उन भगवान् बुद्ध का सत्संग करें, धर्म सुनें तथा शंकाएँ मिटाएँ।

राजा का मनोरथ पूरा हुआ। वह बोला—सौम्य ! जीवक ! हाथियों को सजवाओ। हाथियों को सजवा बड़े राजसी टाट-बाट से जीवक के आम्रवन में पहुँच राजा ने देखा सुगन्धित बड़े भवन में तथागत भिक्षु संघ से घिरे बैठे हैं। जैसे महान् सरोवर हो, किन्तु उसकी लहरें शान्त हों, वैसे ही भिक्षु-संघ को इधर उधर से देखकर राजा ने सोचा—ऐसी शान्त परिषद् तो मैंने इससे पहले कभी देखी ही नहीं। उसने भिक्षु-परिषद् के उठने-बैठने के तरीके से ही प्रसन्न हो संघ को प्रणाम किया। फिर संघ की स्तुति करते हुए उसने भगवान् को प्रणाम किया और एक ओर बैठकर श्रमणत्व के फल के बारे में प्रश्न किया। भगवान् ने उसे दो भाणवारों में विस्तार करके सामञ्जस्यफल सूत्र^२ का उपदेश दिया। सूत्र का उपदेश हो चुकने पर वह प्रसन्न हो भगवान् से क्षमा माँग आसन से उठकर चला गया।

राजा के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, यह राजा जल्मी हो गया समझो। भिक्षुओ, राजा को आहत हो गया

^१ इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि , सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो भगवाति ॥

^२ बीघ निकाय, (दूसरा सूत्र)।

समझो। यदि यह ऐश्वर्य के लोभ में पड़कर अपने धार्मिक, धर्म से राज्य करने वाले पिता को जान से न मरवाता; तो इसे इसी आसन पर रज रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु, उत्पन्न हो जाता। देवदत्त के कारण, दुष्ट को बड़ा स्थान देने से, वह जोतापत्ति फल को न प्राप्त कर सका।

किसी दूसरे दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—‘आयुष्मानो ! अजातशत्रु ने दुष्ट का आदर करके, दुश्चरित्र, पापी देवदत्त की प्रेरणा से पितृ-हत्या करके जोतापत्ति फल से हाथ धोया। देवदत्त ने राजा का नाश कर दिया।’

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर ‘भिक्षुओ, केवल अभी अजातशत्रु दुष्ट का सम्मान करके विनाश को प्राप्त नहीं हुआ पहले भी इसने दुष्ट का आदर कर अपना नाश किया है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महा सम्पत्तिशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब शिल्प सीख आए। फिर बाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ विद्यार्थियों को विद्या सिखाने लगे।

उन विद्यार्थियों में एक सञ्जीव नाम का विद्यार्थी था। बोधिसत्त्व ने उसे मुर्दे को जिलाने का मन्त्र सिखाया। उसने मुर्दे को जिलाने का ही मन्त्र सीखा, फिर सुलाने का नहीं सीखा। एक दिन विद्यार्थियों के साथ जब वह लकड़ी बटोरने जंगल गया तो उसने एक मृत-व्याघ्र को देखा। उसने अपने साथियों से कहा—‘मैं इस मृत-व्याघ्र को जिलाऊँगा।’

विद्यार्थी—“नहीं जिला सकेगा।”

सञ्जीवक—“तुम लोगों के देखते ही देखते जिलाऊँगा।”

विद्यार्थी—“यदि जिला सकता है तो जिला।”

इतना कहकर वे विद्यार्थी वृक्ष पर चढ़ गए। सञ्जीवक ने मन्त्र पढ़कर मृत-व्याघ्र पर कंकर फेंके। व्याघ्र उठकर जल्दी से आया और सञ्जीवक का गला काट उसे मार स्वयं भी वहीं गिर पड़ा। सञ्जीवक भी वहीं गिर पड़ा। दोनों एक ही स्थान पर मुर्दे हो गए।

विद्यार्थियों ने लकड़ी ले आकर आचार्य्य को वह समाचार सुनाया । आचार्य्य ने विद्यार्थियों को बुलाकर कहा—तात ! दुष्ट को बड़प्पन देनेवाले, जहाँ सम्मान नहीं करना चाहिए, वहाँ सम्मान प्रदर्शित करनेवाले, इस प्रकार के दुःख को अवश्य प्राप्त होते हैं । इतना कह यह गाथा कही—

असन्तं यो पगण्हाति असन्तञ्चुपसेवति,
तमेव घासं कुशते व्यग्घो सञ्जीविको यथा ॥

[जो दुश्चरित्र को बड़प्पन देता है, जो दुराचारी की संगत करता है, उसे वह दुराचारी वैसे ही खा जाता है जैसे जीवन-प्राप्त व्याघ्र ।]

असन्तं—तीन प्रकार' के दुश्चरित्र से युक्त, दुश्शील, पापी । यो पगण्हाति, क्षत्रिय, आदि में जो कोई इस प्रकार के दुराचारी प्रव्रजित को चीवर आदि देकर अथवा गृहस्थ को उपराज वा सेनापति आदि का पद देकर बड़प्पन देता है, सत्कार तथा सम्मान प्रदर्शित करता है । असन्तञ्चुपसेवति, जो इस प्रकार के दुश्शील की संगति करता है । तमेव घासं कुशते, उसी दुष्ट आदमी को, बड़प्पन देनेवाले को वह दुराचारी खा जाता है, नष्ट करता है । कैसे ? व्यग्घो सञ्जीविको यथा, जैसे सञ्जीवक नाम के विद्यार्थी ने मृत-व्याघ्र को मन्त्र पढ़कर जिलाया, जीवन-दान दे आदृत किया । उसने उस जीवन-दान देनेवाले सञ्जीवक का ही प्राण ले लिया । इस प्रकार जो कोई भी दुष्ट आदमी का आदर करता है, वह दुष्ट अपना आदर करनेवाले ही को नष्ट करता है । इस तरह दुष्टों को बड़प्पन देनेवाले नाश को प्राप्त होते हैं ।

बोधिसत्त्व इस गाथा द्वारा विद्यार्थियों को उपदेश दे, दानादि पुण्य करके कर्मानुसार परलोक सिधारे । शास्ता ने भी यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय मृत-व्याघ्र को जिलानेवाला विद्यार्थी अजातशत्रु था । चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था ।

'काय, वाक तथा मन के पाप-कर्म ।

दूसरा परिच्छेद

१. दळह वर्ग

१५१. राजोवाद जातक

“बळहं बळहस्स क्षिपति...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय राजा को दिये गए उपदेश के बारे में कही। वह उपदेश तेसकुण जातक^१ में आयेगा।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोशल-नरेश पाप-कर्म सम्बन्धी किसी ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था, फैसला करके प्रातःकाल का भोजन कर चुकने पर गीले हाथों ही, अलंकृत रथ में बैठ शास्ता के पास गया। वहाँ पुष्पित कमल सदृश चरणों में गिर कर प्रणाम किया और एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—हन्त ! महाराज ! दिन चढ़े तुम कहाँ से आए ?

राजा—भन्ते ! आज पापकर्म सम्बन्धी एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था, फैसला करने में लगे रहने के कारण समय नहीं मिला। अभी उसका फैसला कर, भोजन करके, गीले हाथों ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

शास्ता—महाराज ! धर्म से, न्याय से, मुकद्दमे का फैसला करना शुभ-कर्म है। यह स्वर्ग का मार्ग है। लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि तुम मेरे जैसे सर्वज्ञ से उपदेश लेते हुए भी धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमे का फैसला करते हो। आश्चर्य तो इसी में है कि पूर्व के राजा लोग जिन्होंने ऐसे पण्डितों का ही उपदेश सुना जो सर्वज्ञ नहीं थे धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमों के फैसले करते हुए चार अग-

^१जातक (५२१)

तियों' से बचकर दस-राजधर्मों से विरुद्ध न जा, धर्मानुसार राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरनेवाले हुए।

इतना रह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पुटरानी की कोख में रह, गर्भ की सम्यक् रक्षा होने पर माता की कोख से बाहर निकले। नाम-करण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्तकुमार ही रक्खा गया।

क्रम से बढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सब शिल्पों में निष्णात हो, पिता के मरने पर राजा हो धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न हो वह मुकुटमों का फैसला करता। उसके धर्म से राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही व्यवहारों (=मुकुटमों) का फैसला करते। मुकुटमों का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकुटमे करनेवाले भी नहीं रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकुटमे करनेवालों का शोर नहीं होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकुटमा लिए आता न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गए।

बोधिसत्त्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकुटमा करनेवाले नहीं आते। शोर नहीं होता। न्यायालय छोड़ने योग्य हो गए। अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे यह पता लग जाएगा कि यह-यह मेरे दुर्गुण हैं तो उन्हें छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूँगा।

उसके बाद से वह खोजने लगे कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला जो उनके दोष कहे। जो मिला प्रशंसा करनेवाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशंसा ही करते होंगे' सोच महल के बाहर रहनेवालों की परीक्षा की। वहाँ भी कोई न मिला, तो नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारों दरवाजों पर स्थित गाँवों में खोजा। वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशंसा ही सुनने को मिली। तब बोधिसत्त्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया। अमात्यों को राज्य सँभाल वह रथ पर चढ़

‘छन्द, द्वेष, भय तथा मोह के वशीभूत हो पक्षपात करना।

केवल सारथि को साथ ले भेष बदल नगर से निकला। जनपद में खोजते हुए वह राज्य की सीमा तक चला गया। जब वहाँ भी उसे कोई दोष दिखानेवाला नहीं मिला, प्रशंसा ही सुनाने वाले मिले तो प्रत्यन्त-देश^१ की सीमा पर से महामार्ग से नगर की ओर लौटा।

उसी समय मल्लिक नाम का कोशल-नरेश भी धर्म से राज्य करता हुआ अपने दोष कहने वाले को ढूँढ़ने के लिए निकला था। जब उसे महल के अन्दर रहने वालों आदि में कोई दोष कहनेवाला नहीं मिला, प्रशंसा करने वाले ही मिले तो वह जनपद में खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। वे दोनों, गाड़ियों के एक नीचे रास्ते पर आमने सामने हुए। रथों के लिए एक दूसरे को गुजरने देने की जगह नहीं थी।

मल्लिक राजा के सारथि ने वाराणसी राजा के सारथि से कहा—अपने रथ को लौटा ले।

वाराणसी राजा के सारथि ने कहा—तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ में वाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।

दूसरे ने भी कहा—इस रथ में कोशल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हैं। तू अपने रथ को मोड़ कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।

वाराणसी राजा के सारथि ने सोचा—यह भी राजा है। अब क्या करना चाहिए? उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछकर जो आयु में छोटा होगा उसका रथ लौटवाकर जो बड़ा होगा उसके रथ के लिए जगह करवाऊँगा। ऐसा निश्चय कर उसने दूसरे सारथि से कोशल राजा की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु वाले निकले। फिर राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल-भेद आदि के बारे में पूछा। दोनों तीन-तीन सौ योजन राज्य के स्वामी निकले। दोनों की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र तथा कुल-भेद सब एक सदृश था। तब सोचा जो अधिक शीलवान् होगा उसे जगह दी जायगी। उसने पूछा—“सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?”

उसने अपने राजा के दुर्गुणों को भी गुण बताते हुए कहा कि हमारे राजा में यह गुण है, यह गुण है, और यह गाथा कही—

^१ राज्य-सीमा के बाहर।

बळहं बळहस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
साधुम्मि साधुना जेति असाधुम्मि असाधुना,
एताविसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि ॥

[मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का । भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से । सारथि ! यह राजा ऐसा है । तू मार्ग छोड़ दे ।]

बळहं बळहस्स खिपति, जो बहुत कठोर होता है उसे कठोर वचन से वा प्रहार से ही जीतना चाहिए । ऐसे आदमी के प्रति यह कठोर व्यवहार करता है अथवा कठोर वचन का प्रयोग करता है । इस प्रकार कठोर होकर ही उसे जीतता है—यही प्रगट करता है । मल्लिको, उस राजा का नाम है । मुदुना मुदुं, कोमल स्वभाव वाले को स्वयं भी कोमल होकर जीतता है । साधुम्मि साधुना जेति असाधुम्मि असाधुना, जो सज्जन हैं, उनके प्रति स्वयं भी सज्जन बनकर उन्हें सज्जनता से और जो दुर्जन हैं उनके प्रति स्वयं भी दुर्जन बनकर उन्हें दुर्जनता से जीतता है । एताविसो अयं राजा, इस हमारे कोशल राजा का ऐसा सदाचरण है । मग्गा उय्याहि सारथि, अपने रथ को लौटा कर छोटे रास्ते से जा । हमारे राजा को रास्ता दे ।

तब वाराणसी राजा के सारथि ने पूछा—“भो ! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिए ?”

“हाँ ।”

“यदि यही गुण हैं, तो अवगुण कैसे होते हैं ?”

“अच्छा ! यह अवगुण ही सही । तुम्हारे राजा में कौन से गुण हैं ?”

“अच्छा तो सुनो” कह दूसरी गाथा कही—

अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने
जिने कवरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं,
एताविसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि' ॥

‘धम्मपद (१०।३) ।

[क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथि ! तू मार्ग छोड़ दे।]

एताविस्रो, इन अवकोषेन जिने कोषं आदि कहे गए गुणों से युक्त। यह क्रोधी आदमी को स्वयं शान्त रहकर अक्रोध से जीतता है। असाधु को स्वयं भला होकर साधुता से। कदरियं, अत्यन्त कंजूस को स्वयं दाता बनकर दान से। अलिक-बाबिनं, झूठ बोलनेवाले को स्वयं सत्यवादी बनकर सच्चेन जिनाति। मित्र सारथि ! मार्ग से हट जा। इस प्रकार के सदाचार से युक्त हमारे राजा को मार्ग दे। हमारा राजा ही मार्ग पाने के योग्य है।

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथि, दोनों ने उतर कर, घोड़ों को खोल रथ को हटा वाराणसी के राजा को मार्ग दिया। वाराणसी राजा ने मल्लिक राजा को उपदेश दिया कि राजा को यह-यह करना चाहिए। फिर वाराणसी जा वहाँ दानादि पुण्य-कर्म करके जीवन समाप्त होने पर स्वर्ग-मार्ग ग्रहण किया।

मल्लिक राजा ने भी उसका उपदेश ग्रहण कर जनपद में जा अपने दोष बताने वाले को बिना खोजे ही अपने नगर पहुँच दानादि पुण्य-कर्म करके स्वर्ग को प्रयाण किया।

शास्ता ने कोशल-नरेश को उपदेश देने के लिये यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मल्लिक राजा का सारथि भोगल्लान था। राजा आनन्द था। वाराणसी राजा का सारथि सारिपुत्र था। राजा तो मैं ही था।

१५२. सिगाल जातक

“असमेविल्लत कम्मन्तं . . .” यह शास्ता ने कूटागार शाला में रहते समय वैशाली निवासी एक नाई के लड़के के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उसका पिता राजाओं, रानियों, राजकुमारों तथा राजकुमारियों की हजामत बनाता, केश ठीक करता, शतरंज^१ बिछाता तथा और भी सभी कार्य करता था। वह श्रद्धावान् था। उसने बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण गही थी। वह पंचशीलों की रक्षा करता था। बीच-बीच में वह शास्ता का धर्मोपदेश सुनता हुआ, अपना समय व्यतीत करता था।

एक दिन वह राजा के यहाँ काम करने जाते समय अपने पुत्र को साथ ले गया। पुत्र ने वहाँ एक देवप्सरा सदृश सजी हुई लिच्छवि कुमारी को देखा। वह उस पर आसक्त हो गया। पिता के साथ राजभवन से लौटने पर उसने कहा कि यह कुमारी मिलेगी तो बचूंगा; नहीं तो यहीं मेरा मरण होगा। इतना कह वह खाना-पीना छोड़ चारपाई पर पड़ रहा।

उसके पिता ने पास आकर कहा—तात ! अनधिकार इच्छा मत कर। तू नाई का लड़का है। तेरी जाति छोटी है। लिच्छवि कुमारी क्षत्री की लड़की है। ऊँची जाति वाली। वह तेरे लिए योग्य नहीं है। तेरे लिए तेरी समान जाति और गोत्र की कोई दूसरी लड़की ला दूँगा।

उसने पिता का कहना नहीं माना। उसके माता, भाई, बहन, चाची, चाचा

^१ दोनों ओर आठ-आठ मोहरों के स्थान होने से शतरंज का पुराना नाम अट्ठपव है।

सभी रिश्तेदारों तथा मित्रों आदि ने समझाने की कोशिश की। वे नहीं समझा सके। वह वहीं सूख-सूख कर मर गया।

उसका पिता शरीर का दाह-कर्म आदि कृत्य करके जब शोक कम हुआ तो शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से बहुत-सा गन्ध-माला-लेप आदि ले, महावन पहुँच शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

“उपासक ! क्यों इन दिनों दिखाई नहीं देता ?”

उसने वह हाल कहा।

शास्ता बोले—“उपासक ! तेरा लड़का केवल अभी अनधिकार इच्छा करके विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।”

उपासक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश में सिंह होकर पैदा हुए। उनसे छोटे छः भाई थे और एक बहन थी। सभी काञ्चन-गुफा में रहते थे।

उस गुफा से थोड़ी ही दूर रजत पर्वत पर एक स्फटिक गुफा थी। उसमें एक सियार रहता था। समय गुजरने पर उन सिंहों के माता-पिता मर गए। वह अपनी बहन सिंह बच्ची को गुफा में छोड़ जाते और स्वयं शिकार के लिए बाहर निकल मांस ला कर उसे देते। वह सियार उस सिंह बच्ची को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसके माता-पिता जब थे, तब तो उसे अवसर न मिलता था। अब इन सातों जनों के शिकार के लिए चले जाने पर स्फटिक गुफा से उतर काञ्चन-गुफा के द्वार पर जा सिंह बच्ची के सामने इस प्रकार कुछ लौकिक ढंग की गुप्त बातचीत कहता—

“सिंह की बच्ची ! मैं भी चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। तू मेरी भाय्यी बन। मैं तेरा पति बनूँगा। हम मिलकर प्रसन्नता पूर्वक रहेंगे। अब से तू मेरी प्रेमिका हो जा।”

वह उसकी बातचीत सुन सोचने लगी—

“यह सियार चौपायों में सबसे निचले दर्जे का निकृष्ट प्राणी है, वैसे ही जैसे चाण्डाल। हम उत्तम राजकुल के हैं। यह मुझसे असम्भ्य अनुचित बातचीत करता

है। मैं इस प्रकार की बातचीत सुनकर जीकर ही क्या करूँगी ? साँस रोक कर मर जाऊँगी।”

फिर उसने सोचा—

“मेरा इस प्रकार यूँ ही मरना ठीक नहीं। मेरे भाई आते हैं। उन्हें कहकर मरूँगी।”

सियार को भी जब उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला तो उसने सोचा यह मुझसे सम्बन्ध नहीं करेगी। वह अफसोस करता हुआ स्फटिक-गुफा में जाकर पड़ रहा।

एक सिंह बच्चा भैंस वा हाथी में से किसी को मार मांस खा, बहन का हिस्सा लाकर बोला—“मांस खा।”

“भाई ! मैं मांस नहीं खाऊँगी। मैं मरूँगी।”

“क्यों ?”

उसने वह हाल कहा।

“अब वह सियार कहाँ है ?”

उसने स्फटिक-गुफा में पड़े हुए सियार को आकाश में है समझा और बोली—
“भाई ! क्या नहीं देखते हो ? यह रजत पर्वत पर आकाश में स्थित है।”

सिंह बच्चा नहीं जानता था कि वह स्फटिक-गुफा में लेटा है। उसने उसे आकाश में लेटा हुआ समझ सोचा “इसे मारूँगा” और सिंह-वेग के साथ उछल कर, स्फटिक-गुफा पर छाती से चोट की। उसका हृदय फट जाने से वह मर कर वहीं गिर पड़ा।

तब दूसरा आया। उसने उसे भी वैसा ही कहा। उसने भी वैसा ही किया और मरकर पर्वत के नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार छओं भाइयों के मरने पर सबसे अन्त में बोधिसत्त्व आए। उसने उन्हें भी वह हाल कहा और यह पूछने पर कि अब वह कहाँ है बताया कि वह रजत पर्वत पर आकाश में लेटा है।

बोधिसत्त्व ने सोचा—सियार आकाश में नहीं ठहर सकते। वह स्फटिक-गुफा में पड़ा होगा। वे पर्वत के नीचे उतरे तो देखा कि छओं भाई मरे पड़े हैं। वे समझ गए कि अपनी मूर्खता के कारण विचार न कर सकने के कारण स्फटिक-गुफा न जानने से उसी से हृदय टकराकर मरे होंगे। ‘बिना विचार जल्दबाजी करनेवालों का काम ऐसा ही होता है’ कह पहली गाथा कही—

असमेक्षितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं,
सानि कम्मानि तप्पेन्ति उण्हं वज्झोहितं मुखे ॥

[जो आदमी बिना विचारे जल्दबाजी में काम करता है, उसके वह काम ही उसे तपाते हैं; जैसे मुँह में डाला हुआ गर्म भोजन ।]

असमेक्षितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं, जो आदमी जिस काम को करना चाहता है, यदि वह उसके दोषों का ख्याल न कर, उन पर विचार न कर जल्दबाज होकर जल्दी में ही उस काम को करने को तैयार होता है, कूद पड़ता है, लग जाता है, उस बिना विचारे जल्दबाजी में काम करने वाले को वे इस प्रकार किये गए सानिकम्मामि तप्पेन्ति, सोच में डाल देते हैं, कष्ट देते हैं। कैसे? उण्हं वज्झोहितं. मुखे जिस तरह खाते समय यदि इसका विचार न कर कि यह ठण्डा है, या गर्म है, गर्म भोजन मुख में डाल दिया जाए तो मुँह भी जलता है, गला भी जलता है और पेट भी जलता है; चिन्ता होती है तथा कष्ट होता है। इसी प्रकार उस तरह के आदमी को वह कर्म तपाते हैं।

उस सिंह ने यह गाथा कह सोचा—मेरे भाई उपाय-कुशल नहीं रहे। सियार को मारने जाकर वह बड़े जोर से कूद कर स्वयं मर गये। मैं ऐसा न कर गुफा में पड़े हुए ही सियार के हृदय को फाड़ डालूँगा।

उसने सियार के चढ़ने-उतरने के रास्ते का ख्याल कर उसके सामने खड़े हो तीन बार सिंहनाद किया। पृथ्वी सहित आकाश गूँज उठा। सियार का हृदय स्फटिक-गुफा में लेटे ही लेटे डर के मारे फट गया। वह वहीं मर गया। शास्ता ने कहा—इस प्रकार वह सियार सिंहनाद सुनकर मर गया।

शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह गाथा कही—

सीहोच्च सीहनादेन बहुरं अभिनादयि
सुत्वा सीहस्स निग्घोसं सिगालो बहुरे वसं
भीतो सन्तासमापादि हवयं चस्स अफ़लि ॥

[सिंह ने सिंहनाद से गुफा को गुंजा दिया। गुफा में रहने वाले सियार ने

जब सिंह की आवाज सुनी तो वह डर कर त्रास को प्राप्त हुआ और उसका हृदय फट गया ।]

सीहो, सिंह चार प्रकार के होते हैं (१) तृण-सिंह (२) पाण्डु-सिंह (३) काल-सिंह (४) लाल हाथ पैर वाला केसरी । उनमें से यहाँ केसरी सिंह से ही मतलब है । बहुरं अभिनादयि सौ बिजलियों के शब्द से भी भयानक सिंहनाद से उस रजत पर्वत को निनादित कर दिया, गुंजा दिया । बहुरे बसं, स्फटिक मिले रजत पर्वत पर रहते हुए । भीतो सन्तासमापादि मृत्यु-भय से डरकर चित्त-त्रास को प्राप्त हुआ । हृदयं बस्स अप्फलि, उस भय से उसका हृदय फट गया ।

इस प्रकार सिंह उस सियार का प्राणान्त कर, भाइयों को एक जगह छिपाकर बहन को उनके मरने का वृत्तान्त कह, उसे दिलासा दे जन्म भर काञ्चन-गुफा में ही रह कर्मानुसार परलोक सिधारा ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर उपासक श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय सियार नाई का लड़का था । सिंह-बच्ची लिच्छवि-कुमारी । छः छोटे भाई कोई स्थविर हुए । ज्येष्ठ-भ्राता सिंह तो मैं ही था ।

१५३. सूकर जातक

“वतुप्पबो अहं सम्म...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन रात में जब धर्म-देशना हो रही थी, जब शास्ता गन्धकुटी के दरवाजे पर मणिमय सीढ़ी पर खड़े होकर भिक्षुसंघ को उपदेश दे गन्धकुटी में चले गए थे, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) शास्ता को प्रणाम कर अपने परिवेण में गये। महा-मोगल्लान भी अपने परिवेण में जा, वहाँ थोड़ी देर विश्राम कर स्थविर के पास चले आए और प्रश्न पूछने लगे। जो-जो प्रश्न पूछा जाता धर्म सेनापति आकाश में चन्द्रमा को उठाते हुए से उसका उत्तर देकर समझा देते। चारों प्रकार की परिषद् बैठी धर्म सुनती रही।

एक बूढ़े स्थविर को सूझा—यदि मैं इस सभा में सारिपुत्र से कोई प्रश्न पुछकर उसे चकरा दूँ तो यह सभा समझेगी कि यह भी बहुश्रुत है और मेरा सत्कार सम्मान करेगी। इसलिए उसने सभा में से उठ सारिपुत्र के पास जाकर एक तरफ खड़े हो कहा—आयुष्मान्! सारिपुत्र। हम भी एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। हमें भी पूछने की आज्ञा दें। लपेटने के बारे में, उधेड़ने के बारे में, निग्रह के बारे में, प्रग्रह के बारे में, विशेष के बारे में, तथा निर्विशेष के बारे में अपना निश्चय कहें^१।

स्थविर ने उसकी ओर देख सोचा—यह बूढ़ा इच्छाओं के वशीभूत है, तुच्छ है, कुछ नहीं जानता। वे उससे बिना कुछ बातचीत किए शरमाये हुए, पंखे^२

^१ यह प्रश्न निरर्थक शब्द-समूह मात्र हैं।

^२ धर्मोपदेश के समय पंखा हाथ में रहता है।

को रखकर आसन से उतर परिवेण में चले गए। मोगल्लान स्थविर भी अपने परिवेण में चले गए।

मनुष्यों ने उसका पीछा किया—पकड़ो इस बूढ़े को, इसने हमें मधुर धर्मोपदेश नहीं सुनने दिया। वह भागता हुआ विहार के सिरे पर एक दरार फटे पाखाने में गिर पड़ा और गन्दगी से पुत गया। आदमियों को उसे देख घृणा हुई। वे शास्ता के पास गए। शास्ता ने उन्हें देख पूछा—“उपासको! क्यों असमय कैसे आए?” मनुष्यों ने वह हाल कहा।

शास्ता ने कहा—“उपासको! न केवल अभी यह बूढ़ा उबल कर अपने बल को न जान महाबलवान् के साथ जूझ कर गूह से लिबड़ गया है, यह पहले भी उबल कर अपने बल को न जान महाबलवान् से जूझ गूह से लिबड़ चुका है।” उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सिंह होकर पैदा हुए, और हिमालय प्रदेश में पर्वत-गुफा में रहने लगे।

उनके नजदीक ही एक तालाब के आस-पास बहुत से सूअर रहते थे। उसी तालाब के आस-पास तपस्वी भी पर्णशालाओं में रहते।

एक दिन सिंह भैंसे या हाथी में से किसी एक को मार, पेट भर मांस खा, उस तालाब में उतर पानी पी ऊपर आया।

उसी समय एक मोटा सूअर उस तालाब के आस-पास चरता था। सिंह ने उसे देख सोचा कि इसे किसी दूसरे दिन खाऊँगा। यदि यह मुझे देख लेगा तो फिर न आएगा। उसके न आने के डर से वह तालाब से उतर एक तरफ को जाने लगा। सूअर ने उसे देखा तो सोचा—यह मुझे देख मेरे भय से सामने से न जा सकने के कारण भागा जा रहा है। आज मुझे इस सिंह से जूझना चाहिए। उसने सिर उठाकर सिंह को युद्ध के लिए ललकारते हुए यह पहली गाथा कही—

चतुप्पदो अहं सम्म! त्वम्पि सम्म! चतुप्पदो,

एहि सीह! निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि॥

[दोस्त! मैं चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। सिंह! आ, रुक। डरकर किस लिए भागता है।]

सिंह ने उसकी बात सुनी तो कहा—दोस्त ! आज हमारा तेरे साथ युद्ध न होगा । आज से सातवें दिन इसी जगह पर संग्राम होवे । इतना कह वह चला गया ।

सुअर प्रसन्न हुआ कि सिंह के साथ युद्ध करूँगा । उसने अपने सब रिश्ते-दारों को कह दिया । वह उसकी बात सुन कर डरे । ‘अब तू हम सभी को नष्ट करेगा । अपनी ताकत को न पहचान कर सिंह के साथ युद्ध करना चाहता है । सिंह आकर हम सब के प्राण ले लेगा । दुस्साहस न कर ।’

उसने भयभीत हो पूछा—“तो अब क्या करूँ ?”

उन्होंने उपाय बताया—दोस्त सुअर ! तू उस जगह जाकर जहाँ यह तपस्वी मल-मूत्र त्यागते हैं सात दिन तक शरीर में गंदगी लपेटकर शरीर को सुखा, सातवें दिन शरीर को ओस की बूंदों से गीलाकर सिंह के आने से पहले ही आकर हवा का रुख देख, जिधर से हवा आती हो उधर खड़े हो जाना । सिंह सफाई पसन्द होता है । वह तेरे शरीर की गन्दगी को सूँघ तुझे विजयी छोड़ चला जाएगा ।

उसने वैसे ही किया और सातवें दिन वहाँ जाकर खड़ा हो गया । सिंह उसके शरीर की गन्दगी को सूँघकर समझ गया कि उसने देह में गूह पोता है । वह बोला—

“दोस्त सुअर ! तूने अच्छा उपाय सोचा है । यदि तूने गूह न पोता होता, तो मैं तुझे यहीं मार देता । लेकिन अब तो मैं तेरे शरीर को न मुँह से डस सकता हूँ न पैरों से ही तुझ पर प्रहार कर सकता हूँ । इसलिए मैं तुझे विजयी मानता हूँ ।”—इतना कह दूसरी गाथा कही—

असुचि पूतिलोभोसि दुग्गन्धो वासि सूकर !

सच्चे युजिस्तुकानोसि जयं सम्म ! दबामि ते ॥

[सुअर ! तू अपवित्र गन्दे बालों वाला है । तेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है । यदि तुझे युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं तुझे विजयी मान लेता हूँ ।]

पूतिलोभोसि—गन्दगी लगे दुर्गन्धपूर्ण बालों वाला है । **दुग्गन्धो वासि,** अनिष्टकर, धृणित, प्रतिकूल दुर्गन्ध फैलाता है । **जयं सम्म ! दबामि ते !**

तुझे विजयी मानता हूँ मैं पराजित हूँ। तू जा। इतना कह सिंह रुक, अपना शिकार कर, तालाब में पानी पी पर्वत-गुफा को ही चला गया।

सुअर ने अपने रिश्तेदारों को कहा—सिंह को मैंने जीत लिया। वे डरे कि फिर किसी दिन आकर सिंह हम सबको जान से मार डालेगा। वे भाग कर किसी दूसरी जगह चले गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सुअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था।

१५४. उरग जातक

“उच्चरगानं पवरो पबिड्ढो” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रेणियों^१ के संघ कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के दो सेवक श्रेणियों के प्रधान थे। वे दोनों महामात्य एक दूसरे को जहाँ कहीं देखते झगड़ा करते। उनके बैर की बात सारे नगर में फैल गई। न राजा और न उनके रिश्तेदार तथा मित्र उनका झगड़ा मिटा सके।

एक दिन प्रातःकाल शास्ता ने उन आदमियों का विचार करते हुए, जिनके ज्ञानी होने की संभावना थी इन दोनों के स्रोतापन्न होने की संभावना को देखा। किसी एक दिन वे श्रावस्ती में भिक्षाचार करते हुए उनमें से एक के घर के दरवाजे पर खड़े हुए।

उसने बाहर निकल पात्र ले शास्ता को घर के अन्दर ले जा आसन बिछा

^१ शिल्पियों के संघ।

कर बिठाया। शास्ता ने बैठते ही उसे मैत्री-भावना की महिमा समझाई, जब उसका चित्त कुछ कोमल हुआ देखा तो आर्य्य-सत्त्यों को प्रकाशित किया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने जब देखा कि वह स्रोतापन्न हो गया तो उसी के हाथ में पात्र रहने देकर उसे साथ ले दूसरे के घर पर पहुँचे। उसने भी बाहर निकल शास्ता को प्रणाम कर 'भन्ते ! घर में प्रवेश करें' कह, घर में ले जाकर बिठाया। दूसरा भी पात्र लिए हुए शास्ता के साथ ही अन्दर गया। शास्ता ने उसे मैत्री-भावना के ग्यारह लाभ^१ बताए। जब जाना कि उसका चित्त कोमल पड़ गया तो आर्य्य-सत्त्यों को प्रकाशित किया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह भी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

वे दोनों स्रोतापन्न हो परस्पर अपने-अपने दोषों को स्वीकार कर, उनके लिए क्षमा माँग एक दूसरे के साथ मिलकर आनन्दपूर्वक रहनेवाले, एक ही विचार के हो गए। उसी दिन भगवान् के सामने बैठकर उन्होंने इकट्ठे खाया।

शास्ता भोजन-कृत्य समाप्त करके विहार गए। वे भी बहुत-सा माला-गन्ध-लेप आदि सुगन्धित वस्तुएँ तथा घी, शहद और शक्कर आदि लेकर शास्ता के साथ ही घर से निकले। भिक्षु-संघ ने शास्ता को आदर प्रदर्शित किया। बुद्ध उपदेश देकर गन्ध-कुटी में प्रविष्ट हुए।

भिक्षुओं ने सायंकाल धर्म-सभा में बातचीत चलाई। 'आयुष्मानो ! शास्ता अविनयी को विनयी बनानेवाले हैं। जिन दो अमात्यों का चिरकाल तक प्रयत्न करके भी न राजा और न उनके रिश्तेदार वा सम्बन्धी मेल करा सके तथागत ने उनको एक ही दिन में विनीत कर दिया।' शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?' 'अमुक बातचीत' कहने पर तथागत ने कहा—'भिक्षुओ, मैंने केवल अभी इन दो जनों का मेल नहीं कराया, पहले भी कराया है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के उत्सव

^१ अंगुत्तर-निकाय, एकादशक निपात।

की घोषणा होने पर बड़ा मेला हुआ। बहुत से मनुष्य, देव, नाग तथा गरुड़ आदि समज्ज^१ देखने के लिए इकट्ठे हुए।

वहाँ एक जगह एक नाग और गरुड़ मेला देखते हुए इकट्ठे खड़े थे। नाग ने गरुड़ को, गरुड़ ने समझ उसके कंधे पर हाथ रख दिया। गरुड़ ने मुड़कर देखा कि मेरे कंधे पर हाथ किसने रक्खा? उसने देखा कि नाग है। नाग ने भी जब गरुड़ को देखा तो उसे जान का डर हुआ। वह नगर से निकल नदी के रास्ते भाग गया। गरुड़ ने भी उसे पकड़ने के लिए पीछा किया।

उस समय बोधिसत्त्व तपस्वी थे। वे उसी नदी के किनारे पर्णशाला में रहते हुए दिन की थकावट मिटाने के लिए नहाने का वस्त्र पहन बल्कल-छाल को बाहर छोड़ नदी में उतर स्नान कर रहे थे।

नाग ने सोचा इस प्रब्रजित की सहायता से जान बचा सकूँगा। उसने अपना असली रूप छोड़ मणि की शकल बना बल्कल के अन्दर प्रवेश किया। गरुड़ ने पीछा करते हुए उसे वहाँ घुसा देख बल्कल के प्रति गौरव होने से उसे न पकड़ बोधिसत्त्व को 'भन्ते ! मैं भूखा हूँ। आप अपने बल्कल को लें। मैं नाग को खाऊँगा' कहने के लिये यह गाथा कही—

इक्षूरगानं पबरो पविट्ठी
सेलस्स वण्णेन पमोक्खमिच्छं
ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो
बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं॥

[यहाँ मणिवर्ण से नागराजा जान बचाने के लिए घुसा है। मैं ब्राह्मण वर्ण का आदर करने के कारण भूखा होता हुआ भी उसे खाने की हिम्मत नहीं करता।]

इक्षूरगानं पबरो पविट्ठी, उस बल्कल में नागों में श्रेष्ठ नागराज प्रविष्ट हुआ है। सेलस्स वण्णेन, मणि के वर्ण से, अर्थात् मणि की शकल बना प्रविष्ट हुआ। पमोक्खमिच्छं, मुझसे बचने की इच्छा से। ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो, मैं तुम्हारे

^१ समज्ज = मेला

ब्रह्म-वर्ण, श्रेष्ठ-वर्ण, की पूजा करने के कारण, गौरव करने के कारण बुभुक्षितो नो विसहामि भोक्तुं वल्कल में घुसे हुए इस नाग को भूख होते भी नहीं खा सकता हूँ ।

पानी में खड़े ही खड़े बोधिसत्त्व ने गरुड़ राज की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

सो ब्रह्मगुत्तो चिरमेव जीव
दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा
सो ब्रह्मवर्णं अपचायमानो
बुभुक्षितो नो वितरासि भोक्तुं ॥

[तू ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर चिरकाल तक जीवित रह । तुझे दिव्य भोजन प्राप्त हों । तू ब्रह्म-वर्ण के गौरव के कारण भूखा होता हुआ भी नहीं खा रहा है ।]

सो ब्रह्मगुत्तो, वह तू ब्रह्म द्वारा गोपित, ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा, देवताओं के भोजन करने योग्य भोजन तुझे मिलें । प्राण-हिंसा करके नाग-मांस खानेवाला न बन ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पानी में खड़े ही खड़े अनुमोदन कर, पानी से निकल वल्कल पहन उन दोनों को अपने आश्रम पर ले जा मैत्री-भावना की प्रशंसा कर दोनों का मेल करा दिया । उसके बाद से वह प्रसन्नता पूर्वक सुख से रहने लगे ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय नाग और गरुड़ यह दो महामात्य थे । तपस्वी तो मैं ही था ।

१५५. गंगा जातक

“जीव बस्स सतं गंगा . . .” यह शास्ता ने जेतवन के समीप राजा प्रसेनजित के बनवाए राजकाराम में रहते हुए अपनी छींक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता को राजकाराम में चारों-प्रकार की परिषद में बैठे धर्मो-पदेश करते समय छींक आई । भिक्षुओं ने जोर से, ऊँचे स्वर से कहा—“भन्ते ! भगवान् ! जीएँ । सुगत ! जीएँ ।” उनके चिल्लाने से धर्मोपदेश में विघ्न पड़ा । भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—

“भिक्षुओ, यदि किसी के छींकने पर “जीएँ” कहा जायगा, तो क्या उस कहने से उसके जीने मरने पर कुछ प्रभाव पड़ेगा ?”

“भन्ते ! नहीं ।”

“भिक्षुओ! छींकने पर “जीएँ” नहीं कहना चाहिए । जो कहे उसे बुद्धत्व का दोष लगेगा ।”

उन दिनों भिक्षुओं को छींक आने पर लोग कहा करते—“भन्ते ! जीएँ ।” भिक्षु बुरा मानते और कुछ न बोलते । लोग खीझ उठते—कैसे हैं यह श्रमण शाक्य-पुत्रीय जो “भन्ते ! जीएँ” कहने पर कुछ नहीं बोलते । भगवान् से यह बात कही गई । भगवान् ने कहा—“भिक्षुओ ! गृहस्थ लोग मंगल-अमंगल को मानने वाले हैं । भिक्षुओ ! गृहस्थ लोगों के ‘भन्ते जीएँ’ कहने पर ‘चिरकाल तक जीते रहो’ कहने की अनुज्ञा देता हूँ ।”

भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—भन्ते ! ‘जीओ’, तथा ‘जीते रहो’ यह कहने की प्रथा कब से आरम्भ हुई ? शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह ‘जीओ’ तथा ‘जीते

‘विनय पिटक में यह शिक्षापद नहीं मिला ।

रहो' कहने की प्रथा पुराने समय में आरम्भ हुई। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनका पिता व्यापार करके गुजारा करता था। उसने सोलह वर्ष के बोधिसत्त्व से मोती आदि की चीजें उठवा ग्राम निगम आदि में धूमते हुए वाराणसी पहुँचकर द्वारपाल के घर पर भोजन बनवाकर खाया। निवासस्थान नहीं था। उसने पूछा—“असमय पर आए हुए अतिथि कहाँ रहते हैं ?”

मनुष्यों ने उत्तर दिया—“नगर के बाहर एक शाला है। लेकिन उसमें भूत-प्रेत आदि रहते हैं। यदि चाहें तो वहाँ रहें।”

बोधिसत्त्व ने कहा—“तात ! चलें ! डरने की जरूरत नहीं। मैं उस यक्ष का दमन कर उसे आपके चरणों पर गिराऊँगा।” वह पिता को लेकर वहाँ गए।

पिता तत्क्षे पर लेटा। वे स्वयं पिता के पैरों को दबाते हुए बैठे।

वहाँ रहनेवाले यक्ष ने बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके उससे यह अधिकार प्राप्त किया था कि उस शाला में जो आदमी आएँ उनमें से किसी को छींक आने पर यदि कोई 'जीवें' कहे और जिसको छींक आई हो वह भी 'जीओ' कहे तो उनको छोड़कर वह शेष सभी को खा सकता है। वह चौखट पर रहता था। उसने बोधिसत्त्व के पिता को छींक लिवाने के लिए अपने प्रताप से सूक्ष्म-चूर्ण बखेरा। चूर्ण आकर उसके नथनों में पड़ा। उसे तत्क्षे पर पड़े ही पड़े छींक आई। बोधिसत्त्व ने उसे 'जीवें' नहीं कहा। यक्ष उसे खाने के लिए चौखट से उतरने लगा। बोधिसत्त्व ने उसे उतरते देख, सोचा इसी ने मेरे पिता को छिंकाया होगा। छींकने पर जो 'जीवें' न कहें उन्हें यह यक्ष खा लेता होगा। उन्होंने पिता को सम्बोधन करके यह पहली गाथा कही—

जीव वस्स सतं गग ! अपरानि च वीसर्ति,

मा मं पिताच्चा खावन्तु जीव त्वं सरवोसतं ॥

[गग ! तू सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। मुझे पिशाच न खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

गङ्गा, यह पिता को उसके नाम से सम्बोधन किया है। अपरानि च बीसति, और भी बीस वर्ष जीवित रहें। मा मं पिसाचा खादन्तु, मुझे पिशाच न खाएँ। जीव त्वं सरदोसतं, तू एक सौ बीस वर्ष जी।

सरदसतं का अर्थ तो सौ वर्ष ही होता है। लेकिन पहले के बीस जोड़ देने से यहाँ एक सौ बीस से मतलब है।

यक्ष ने बोधिसत्त्व का वचन सुन सोचा कि इस माणवक ने 'जीवें' कहा है, इसलिए इसे नहीं खा सकता। इसके पिता को खाऊँगा। इसलिए पिता के पास गया। उसने उसे आते देख सोचा, यह यक्ष उन लोगों को खा लेता होगा, जो 'जीवें' के उत्तर में 'जीओ' न कहते होंगे। इसलिए मैं प्रतिवचन करूँगा। उसने पुत्र के बारे में दूसरी गाथा कही—

त्वम्पि वस्स सतं जीव अपरानि च बीसति,
विसं पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं॥

[तू भी सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। पिशाच विष खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

विसं पिसाचा, पिशाच हलाहल विष खाएँ।

यक्ष ने उसकी बात सुन सोचा, मैं दोनों में से किसी को नहीं खा सकता। वह रुक गया।

बोधिसत्त्व ने पूछा—‘भो यक्ष ! इस शाला में प्रवेश करनेवाले आदमियों को तू क्यों खाता है ?’

“बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके अधिकार प्राप्त किया है।”

“क्या सभी को खाने का अधिकार है ?”

“जीवें और ‘जीओ’ कहने वालों को छोड़ शेष सभी को खाता हूँ।”

“यक्ष ! तूने पहले बुरे कर्म किए। इसलिए तू निर्दयी, कठोर तथा दूसरों

की हिंसा करनेवाला पैदा हुआ। अब फिर उसी तरह के काम करके तू तमोतम-परायण^१ हो रहा है। इसलिए अब से तू प्राणि-हिंसा आदि से विरत हो।”

इस प्रकार उस यक्ष का दमन कर, नरक के भय से उसे डरा, पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर यक्ष को दूत की तरह विनीत कर दिया।

आगे चलकर आने-जाने वाले मनुष्यों ने यक्ष को देखा और जब उन्हें मालूम हुआ कि बोधिसत्त्व ने उसका दमन किया, तो उन्होंने राजा से कहा—“देव! एक तरुण ने उस यक्ष का दमन कर उसे दूत की तरह विनीत कर रक्खा है।”

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर सेनापति के स्थान पर नियुक्त किया। और पिता का बहुत सत्कार किया।

राजा यक्ष को बलि-ग्रहण का अधिकारी बना, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला ‘जीवें’ और ‘जीओ’ कहने की प्रथा उस समय चली, कहा और जातक का मेल बैठाय।

उस समय का राजा आनन्द था। पिता काश्यप था। और पुत्र तो मैं ही था।

१५६. अलीनचित्त जातक

“अलीनचित्तं निस्साय...”, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हिम्मत-हारे भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा ग्यारहवें परिच्छेद (निपात) की संवर जातक^२ में आएगी।

‘अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला=हीनकुल में पैदा होकर नीच कर्म करने वाला।

^२ संवर जातक (४६२)।

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—“भिक्षु, क्या तूने सचमुच हिम्मत छोड़ दी ?”
“भगवान् ! सचमुच ।”

शास्ता ने कहा—“भिक्षु, क्या तूने पूर्व समय में हिम्मत करके मांस के टुकड़े सदृश छोटे से कुमार को बारह योजन के वाराणसी के नगर का राज्य नहीं लेकर दिया था ? अब इस प्रकार के शासन में प्रब्रजित होकर क्यों हिम्मत हारता है ?”
इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के समीप ही बड़ई-ग्राम था । वहाँ पाँच सौ बड़ई रहते थे ।

वह नौका से नदी के स्रोत के ऊपर की तरफ जाते । वहाँ जंगल में घर बनाने की लकड़ी काटकर वहीं एक तल्ले के मकान बना, खम्भे से आरम्भ करके सभी लकड़ियों पर चिह्न लगाते । फिर उन्हें नदी के किनारे ले जा, नौका पर चढ़ा, स्रोत के अनुसार चल नगर में आते । वहाँ जो जैसे घर चाहता, उसे वैसे बना देकर कार्षापण ले, फिर वैसे ही जा, घर के सामान लाते ।

उनके इस प्रकार जीविका चलाते हुए एक बार पड़ाव डालकर लकड़ी काटते समय, उनके पास ही एक हाथी का पाँव खैर की लकड़ी के खूँटे पर पड़ा । उस खूँटे से उसका पाँव बिंध कर उसमें बड़ी पीड़ा होने लगी । पैर सूज गया । उसमें से पीप बहने लगा ।

पीड़ा से पीड़ित हो उसने लकड़ी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि इन बड़इयों से मेरा कल्याण होगा । ऐसा समझ कर वह तीन पैरों से चलकर उनके पास पहुँचा और वहीं नजदीक ही पड़ रहा ।

बड़इयों ने उसका सूजा हुआ पैर देखा तो पास गए । उन्हें उसमें खूँटा दिखाई दिया । उन्होंने तेज कुल्हाड़ी से खूँटे के चारों ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बाँधकर उसे खींचकर निकाला । फिर पीप निचोड़कर, निकालकर गर्म पानी से धोया । उसके अनुकूल दवाई करने से थोड़े ही समय में घाव ठीक हो गया ।

हाथी ने निरोग होकर सोचा—इन बड़इयों ने मेरी जान बचाई । मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए । उस दिन से वह बड़इयों के साथ वृक्ष लाने लगा । छीलने के समय वह उन्हें उलट-उलट कर सामने करता । कुल्हाड़ी आदि औजार

ले आता। सूण्ड में लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड़ लेता। बढ़ई भी भोजन के समय इसे एक-एक पिण्ड देते तो पाँच सौ पिण्ड हो जाते।

उस हाथी का एक बच्चा था, जो एक दम श्वेत वर्ण का था और था मंगल हाथी। हाथी ने सोचा कि मैं बूढ़ा हो गया। अब मुझे अपने लड़के को इन बढ़इयों को काम करने के लिए देकर स्वयं जाना चाहिए। वह बिना बढ़इयों को सूचित किये ही जंगल में गया। वहाँ से लड़के को ले आकर बढ़इयों से बोला—“यह मेरा लड़का है। तुमने मुझे जीवन दान दिया है। मैं डाक्टर की फीस के बदले में इसे देता हूँ। अब से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।” इतना कह, पुत्र को आदेश दे कि पुत्र ! जो कुछ मेरा काम है, वह सब अब से तू करना, उसे बढ़इयों को सौंप स्वयं जंगल में प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी-बच्चा बढ़इयों के कहने के अनुसार सब काम करने लगा। वे भी उसे पाँच सौ पिण्ड देकर पोसते। वह काम समाप्त कर नदी में उतर खेलकर आया करता। बढ़इयों के बच्चे भी उसे सूण्ड आदि से पकड़ जल और स्थल में सभी जगह उससे खेलते। श्रेष्ठ हाथी हों, घोड़े हों, अथवा मनुष्य हों, कोई भी पानी में मल-मूत्र नहीं त्यागते। वह भी पानी में मल-मूत्र न कर बाहर नदी के किनारे पर ही करता था।

एक दिन नदी के ऊपर के हिस्से में वर्षा हुई। हाथी की आधी सूखी लेण्डी पानी से बहकर नदी के रास्ते जा वाराणसी नगर के पत्तन पर एक झाड़ी में जा अटकी।

राजा के हाथी-सेवक पाँच सौ हाथियों को नहलाने के लिए ले गए। श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी की गन्ध सूँघकर एक भी हाथी ने पानी में उतरने की हिम्मत न की। सभी पूँछ उठाकर भागने लगे। हाथी-सेवकों ने हथवानों को खबर की। उन्होंने सोचा पानी में कुछ खतरा होगा। पानी खोज करने पर जब उन्होंने झाड़ी में श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी देखी तो समझ गए कि यही कारण है। उन्होंने चाटी मँगवाई और उसे पानी से भर, उसमें उसे धोल हाथियों के शरीर पर छिड़कवा दिया। शरीर सुगन्धित हो गए तब हाथी नदी में उतरकर नहाए।

हथवानों ने राजा को वह समाचार सुना सलाह दी कि देव ! वह हाथी खोजवाकर मँगवाया जाना चाहिए। राजा नौकाओं के बेड़े से नदी में उतर ऊपर जाने वाले बेड़े से बढ़इयों के निवासस्थान पर पहुँचा। वह हाथी-बच्चा

नदी में खेल रहा था। जब उसने भेरी शब्द सुना तो जाकर बड़इयों के पास खड़ा हो गया। बड़इयों ने राजा की अगवान्नी करते हुए कहा—देव ! यदि लकड़ी की आवश्यकता थी, तो कष्ट क्यों किया ? क्या भोजकर मँगाना उचित न होता ?

“अरे ! मैं लकड़ी के लिए नहीं आया। मैं तो इस हाथी के लिए आया हूँ।”

“देव ! पकड़वा कर ले जाएँ।”

हाथी-बच्चे ने जाना नहीं चाहा।

“अरे, हाथी क्या करता है ?”

“देव ! जिससे बड़इयों का पोषण हो, वह लाता है।”

राजा ने “अच्छा, भाई !” कहा और हाथी की सूण्ड के पास, पूँछ के पास और चारों पैरों के पास एक-एक लाख कार्षापण रखवाए। हाथी इतने पर भी नहीं गया। सब बड़इयों को दुशाले तथा बड़इयों की स्त्रियों को पहनने के वस्त्र मिलने पर तथा साथ खेलनेवाले लड़कों के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर वह बड़इयों को पीछे आने न दे, स्त्रियों और लड़कों को देखता हुआ राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर गया। वहाँ नगर और हस्ति-शाला को अलंकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्ति-शाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहना, अभिषेक कर, उसे राजा की खास सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपने बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

इस प्रकार समय गुजरता गया। बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरे होते होते राजा मर गया। लोगों ने सोचा कि यदि हाथी को राजा के मरने की बात का पता लगेगा तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए वह हाथी से राजा के मरने की बात को गुप्त रखकर उसकी सेवा करते रहे।

ठीक पड़ोस के कोशल-राजा ने जब सुना कि वाराणसी-नरेश मर गए तो

उसने राज्य को खाली देख बड़ी सेना ला नगर घेर लिया। नगर-निवासियों ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोशल-राजा के पास सन्देश भेजा—

“हमारे राजा की पटरानी गर्भवती है। अंग-विद्या के जानने वालों का कहना है कि अब से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र को जन्म देगी तो हम आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेंगे। इतने दिन प्रतीक्षा करें।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया।

देवी ने सातवें दिन पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने कहा यह हमारे उदास-चित्त की उदासी को दूर करता हुआ पैदा हुआ है, और उसका नाम अलीनचित्त कुमार रक्खा।

उसके पैदा होने के ही दिन से नगर-निवासी कोशल-नरेश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध का नेता न होने से बड़ी सेना भी युद्ध करती हुई थोड़ी-थोड़ी पीछे हटने लगी।

अमात्यों ने रानी से वह समाचार कह पूछा—

“आर्ये ! इस प्रकार सेना के पीछे हटने से हमें डर लगता है कि हम हार न जाएँ। राजा का मित्र मंगल हाथी न राजा के मरने की बात को जानता है, न पुत्र उत्पन्न होने की बात जानता है और न कोशल-नरेश के आकर युद्ध करने की बात जानता है। हम इसे यह सब कह दें ?”

उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया। फिर पुत्र को अलंकृत कर कोमल वस्त्र की गद्दी पर लिटा महल से उतर अमात्यों को साथ ले हस्ति-शाला में गई। वहाँ बोधिसत्त्व को हाथी के पैरों पर रखकर बोली—

“स्वामी ! तुम्हारा मित्र तो मर गया। हमने तुम्हारे हृदय के फट जाने के डर से तुमसे नहीं कहा। यह तुम्हारे मित्र का पुत्र है। कोशल-राजा आकर नगर को घेरे हुए तारे पुत्र से युद्ध कर रहा है। सेना पीछे हट रही है। या तो तू अपने पुत्र को स्वयं ही मार डाल अथवा राज्य जीतकर इसे दे।”

उसी समय हाथी ने बोधिसत्त्व को सूण्ड में ले उठा कर सिर पर रक्खा। रोया पीटा। फिर बोधिसत्त्व को उतार कर देवी के हाथ में लिटाया और कोशल-नरेश को पकड़ने के लिए हस्ति-शाला से निकल पड़ा।

मन्त्री-गण कवच उतार, सज-सजाकर दरवाजे खोल उसके पीछे-पीछे हो लिए। हाथी ने नगर से निकल श्रौच-नाद किया। लोगों को डरा कर भगा दिया।

सेना की पाँत को तोड़ कोशल-राजा को बालों से पकड़ लाकर बोधिसत्त्व के पैरों में डाल दिया। वह मारने के लिए उठा, तो उसे रोका। अब से सावधान रह। यह मत समझ कि कुमार बालक है। इस प्रकार उपदेश दे उसे उत्साहित किया।

उस समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य एक प्रकार से बोधिसत्त्व के ही हाथ में आ गया। कोई भी शत्रु विरोध न कर सका।

सात वर्ष की अवस्था होने पर बोधिसत्त्व का अभिषेक हुआ। वह अलीन-चित्त राजा के नाम से धर्मानुकूल राज्य करते रह कर मरने पर स्वर्ग सिधारा। शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा ला त्म्यक् सम्बुद्ध होने की अवस्था में यह दो गाथाएँ कहीं—

अलीनचित्तं निस्साय पट्ठठा महती चमू
कोसलं सेना-सन्तुट्ठं जीवगाहं अगाहयी
एवं निस्सयसम्पन्नो भिक्खु आरद्धवीरियो
भावयं कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया
पापुणे अनुपुब्बेन सबसञ्जोजनक्खयं ॥

[अलीनचित्त के कारण बड़ी सेना प्रसन्न हुई। अपने राज्य से असन्तुष्ट कोशल नरेश को जिन्दा पकड़वा लिया। इसी प्रकार यदि भिक्षु प्रयत्नशील हो और उसका सहायक हो तो वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए कुशल-कर्मों का अभ्यास कर त्रम से सञ्जोजनों का क्षय कर सकता है।]

अलीनचित्तं निस्साय, अलीनचित्त राजकुमार के कारण पट्ठठा महती चमू, हम लोगों को राज्य-परंपरा देखनी मिली, इसलिए बड़ी सेना प्रसन्न हुई। कोसलं सेनासन्तुट्ठं, कोशल नरेश को, जो अपने राज्य से असन्तुष्ट हो पराया राज्य लेने को आया। जीवगाहं अगाहयी बिना मारे ही उस सेना ने उस हाथी से राजा को जीवित पकड़वाया। एवं निस्सय सम्पन्नो, जैसे वह सेना उसी प्रकार कोई कुल-पुत्र बुद्ध अथवा बुद्ध-श्रावक सदृश किसी हितैषी को या उसके आश्रय से युक्त। भिक्खू, जो शुद्ध है, उसी का यह नाम है। आरद्धचिरियो, प्रयत्न-शील; चार प्रकार के दोषों से रहित प्रयत्न से युक्त। भावयं कुसलं धम्मं, कुशल, निर्दोष

संतीस बोधि-पाक्षिक धर्मों की भावना करता हुआ । योगक्षेमस्स पत्तिया चारों प्रकार के योग से क्षेम अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिए उस धर्म का अभ्यास करते हुए । पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसञ्जोजनक्खयं इस प्रकार विपश्यना से इस कुशल-धर्म का अभ्यास करते हुए वह किसी हितैषी का आश्रय-प्राप्त भिक्षु क्रम से विपश्यना-ज्ञान और पहले मार्ग-फल प्राप्त करते हुए अन्त में दसों सञ्जोजनों का नाश होने पर पैदा होने के कारण सब्बसञ्जोजनक्खय स्वरूप कहे जाने वाले अर्हत्व को प्राप्त करता है । क्योंकि निर्वाण प्राप्त होने पर सभी सञ्जोजनों का क्षय हो जाता है, इसलिए उसे भी सञ्जोजनक्षय ही कहा जा सकता है । इसलिए यह अर्थ हुआ कि निर्वाण कहे जाने वाले सभी सञ्जोजनों के क्षय को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार भगवान् ने अमृतमहानिर्वाण को धर्मोपदेश में मुख्य स्थान दे, आगे चार आर्य-सत्त्वों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया । सत्त्वों का प्रकाशन समाप्त होने पर हिम्मत-हारा भिक्षु अर्हत्व पद लाभी हुआ ।

उस समय माता महामाया, पिता शुद्धोदन महाराजा था । राज्य लेकर देनेवाला यह हिम्मत-हारा भिक्षु था । हाथी का पिता सारिपुत्र । अलीनचित्त कुमार तो मैं ही था ।

१५७. गुण जातक

“येन कामं पणामेति” यह (उपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर को एक हजार वस्त्र मिलने के बारे में कहा ।

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर की कोशल-नरेश के महल में धर्मोपदेश करने की कथा पहले महासार जातक^१ में आ ही गई है।

जिस समय स्थविर राजा के महल में धर्मोपदेश दे रहे थे राजा के लिए हजार-हजार के मूल्य के हजार वस्त्र लाए गए। राजा ने उनमें से पाँच सौ वस्त्र पाँच सौ देवियों को दिए। उन सबों ने वे वस्त्र लेकर दूसरे दिन आनन्द स्थविर को दे दिए। स्वयं पुराने ही वस्त्र पहन कर राजा के जलपान करने की जगह गई।

राजा ने पूछा—“मैंने तुम्हें हजार-हजार के मूल्य के वस्त्र दिलवाए। तुम उन्हें बिना पहने क्यों आई?”

“देव! वह हमने आनन्द स्थविर को दे दिए।”

“आनन्द स्थविर ने सभी ले लिए?”

“देव! हाँ।”

उसे क्रोध आया—‘सम्यक् सम्बुद्ध ने तीन चीवरों की अनुज्ञा दी है। मालूम होता है आनन्द स्थविर दुशालों का व्यापार करेंगे। उन्होंने इतने ज्यादा वस्त्र ग्रहण किए हैं।’ जलपान समाप्त करके राजा विहार गया। वहाँ स्थविर के कमरे (परिवेण) में प्रवेश कर, उन्हें प्रणाम कर बैठा। फिर राजा ने पूछा—“भन्ते! हमारे घर की स्त्रियाँ आपके पास धर्म सुनती व सीखती हैं?”

“हाँ महाराज! ग्रहण करने योग्य ग्रहण करती हैं, सुनने योग्य सुनती हैं।”

“क्या वे केवल सुनाती हैं, अथवा तुम्हें कपड़ा वा वस्त्र भी देती हैं।”

“महाराज! आज हजार-हजार के मूल्य के पाँच सौ वस्त्र दिए।”

“भन्ते! तुमने उन्हें ले लिया?”

“महाराज! हाँ।”

“भन्ते! क्या शास्ता ने केवल तीन ही चीवरों की आज्ञा नहीं दी है?”

“महाराज! हाँ। शास्ता ने एक भिक्षु को केवल तीन ही चीवरों का उपयोग करने की आज्ञा दी। लेकिन ग्रहण करना मना नहीं किया है। इसलिए

^१ महासार जातक (९२)।

मैंने भी दूसरे ऐसे (भिक्षुओं) को देने के लिए जिनके चीवर फट गए हैं वे वस्त्र ग्रहण कर लिए।”

“वे भिक्षु तुमसे वस्त्र पाकर अपने पुराने चीवरों का क्या करेंगे?”

“पुराने वस्त्र का उत्तरासंग^१ बना लेंगे।”

“पुराने उत्तरासंग का क्या करेंगे?”

“अन्तरवासक^२ बना लेंगे।”

“पुराने अन्तरवासक का क्या करेंगे?”

“बिछावन बना लेंगे।”

“पुराने बिछौने का क्या करेंगे?”

“जमीन पर बिछा लेंगे।”

“जमीन पर जो पहले बिछाते थे, उसका क्या करेंगे?”

“पाँव झाड़ने का काम लेंगे।”

“पाँव झाड़ने के पुराने कपड़े का क्या करेंगे?”

“महाराज! जो श्रद्धापूर्वक दिया गया है, वह फेंका नहीं जा सकता। इसलिए पाँव झाड़ने के पुराने कपड़े को कुल्हाड़ी से कूटकर मिट्टी में मिलाकर शयनासन की जगहों पर मिट्टी का लेप करेंगे।”

“भन्ते! आपको दिया हुआ वस्त्र पाँव झाड़ने का कपड़ा बनने पर भी फेंका नहीं जा सकता?”

“महाराज! हाँ, हमें दिया फेंका नहीं जा सकता। उपयोग में ही लाया जाता है।”

राजा ने सन्तुष्ट हो प्रसन्नता के मारे घर पर रखे दूसरे पाँच सौ वस्त्र भी मँगवा कर स्थविर को दिए। स्थविर ने दान का अनुमोदन किया। उसे सुन स्थविर को प्रणाम कर राजा स्थविर की प्रदक्षिणा कर चला गया।

स्थविर ने जो पाँच सौ चीवर पहले मिले थे वह उन भिक्षुओं को बाँट दिए जिनके चीवर पुराने हो गए थे।

स्थविर के पाँच सौ शिष्य थे। उनमें एक छोटी आयु का भिक्षु स्थविर की

^१ ऊपर ओढ़ने की चादर जैसा चीवर।

^२ नीचे पहनने का चीवर, जैसे धोती।

बहुत सेवा करता था। परिवेण में झाड़ू लगाता। पीने और काम में लाने का पानी लाकर उपस्थित करता। दातुन लाकर देता। मुख धोने तथा स्नान करने के लिए जल देता। पाखाने, अग्नि-शाला तथा सोने-बैठने के स्थान को ठीक-ठाक करके रखता। हाथ-पैर दबाना तथा पीठ मलना आदि करता। स्थविर ने यह सोच कि इसने मेरा बड़ा उपकार किया है पीछे मिले सब वस्त्र उसी को देना उचित समझ दे डाले। उसने भी वह सब वस्त्र बाँट कर अपने गुरु-भाइयों को दिए।

वे सभी भिक्षु जिन्हें वस्त्र मिला वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें रंग कणिकार पुष्प के सदृश, काषाय वस्त्र पहन शास्ता के पास गए। वहाँ प्रणाम कर एक ओर बैठे भिक्षु कहने लगे—

“भन्ते ! क्या खोतापन्न आर्य-श्रावक भी मुँह देखकर दान देते हैं ?”

“भिक्षुओं, आर्य-श्रावक मुँह देखकर दान नहीं देते।”

“भन्ते ! हमारे उपाध्याय धर्म-भण्डागारिक स्थविर ने हजार-हजार की कीमत के पाँच सौ वस्त्र एक ही छोटी आयु के भिक्षु को दे दिए। उसने जो उसे मिले बाँट कर हमें दिए।”

“भिक्षुओं, आनन्द मुख देखकर दान नहीं देता। उस भिक्षु ने इसकी बहुत सेवा की। उसने अपने उपकार का प्रत्युपकार करने के विचार से गुणवान होने के ब्याल से, उचित होने से सोचा कि उपकारी का प्रत्युपकार करना चाहिए; और इसी लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए दिए। पुराने पण्डितों ने भी अपना उपकार करने वाले का बदले में उपकार किया है।” उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सिंह की योनि में पैदा हो पर्वत-गुफा में रहते थे।

उन्होंने एक दिन गुफा से निकल पर्वत के नीचे की ओर देखा। उस पर्वत के चारों ओर बड़ा भारी तालाब था। उसके एक (तरफ) ऊँची जगह पर कड़े दलदल के ऊपर कोमल हरी घास उगी थी। खरगोश, हरिण और हलके मृग उसके ऊपर बिचर कर उसे खाते। उस दिन भी एक मृग उन तिनकों को खाता हुआ घूम रहा

था। सिंह उस मृग को पकड़ने के लिए पर्वत पर से उछल कर मृग की तरफ कूदा। मृग मरने के भय से डरकर चिल्लाता हुआ भाग गया। सिंह वेग को न रोक सकने के कारण दलदल पर गिरकर नीचे चला गया। ऊपर न आ सकने के कारण चारों पैर खंभे की तरह हो गए। उसे एक सप्ताह तक वहीं निराहार खड़ा रहना पड़ा।

एक सियार शिकार खोज रहा था। उसे देख भय से भागा। सिंह ने उसे बुलाकर कहा—“भो! सियार! भाग मत। मैं दलदल में फँसा हूँ। मेरे जीवन की रक्षा कर।” सियार उसके पास जाकर बोला—“मैं तो तुझे निकालूँ, लेकिन डर लगता है कि तू निकलकर मुझे खा न जाए।”

“डर मत। मैं तुझे नहीं खाऊँगा। तेरा बड़ा उपकार करूँगा। मुझे किसी उपाय से निकाल।”

सियार ने उससे प्रतिज्ञा करवा चारों पैरों के इर्द-गिर्द से दलदल हटा चारों पैरों से चार नालियाँ पानी की ओर बना दीं। पानी ने घुसकर गारे को नरम कर दिया।

उसी समय सियार सिंह के पेट के नीचे घुस कर चिल्लाया—स्वामी! जोर लगाएँ। स्वयं सिंह के पेट में सिर से टक्कर लगाई। सिंह जोर लगाने से गारे के ऊपर आया और कूद कर स्थल पर जा खड़ा हुआ।

थोड़ी देर विश्राम कर तालाब में उतर गारे को धो, स्नान कर सिंह ने एक भैंसे का बध किया। उसे दाढ़ों से चीर उसका मांस उधेड़ सियार के आगे रख कहा—सौम्य! ले खा। सियार के खा चुकने पर अपने खाया। सियार ने एक मांस-पेशी मुँह में ली।

शेर ने पूछा—“सौम्य! यह किसके लिए?”

सियार बोला—“तुम्हारी दासी है। यह उसके लिए।”

सिंह बोला—‘ले लें।’ स्वयं भी सिंहनी के लिए मांस लेकर उसने सियार से कहा—“सौम्य! आ अपने पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ से सखि के निवास स्थान पर जाएँगे।” वहाँ पहुँच, मांस खिला चुकने पर उसने सियार और सियारनी को आवासन दिया—अब से मैं तुम्हारी देख-भाल करूँगा। वह उन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गया। वहाँ गुफा के द्वार पर ही दूसरी गुफा में बसाया।

उसके बाद से सिंह सिंहनी और सियारनी को छोड़ सियार के साथ शिकार के लिए जाता। वहाँ नाना पशुओं को मार कर दोनों वहीं खाते। सिंहनी और

सियारनी को भी ला कर देते। इस प्रकार समय व्यतीत होता रहा। सिंहनी ने तथा सियारनी ने भी दो-दो पुत्रों को जन्म दिया। वे सब इकट्ठे रहने लगे।

एक दिन सिंहनी के मन में आया—यह सिंह सियार को, सियारनी को, तथा उसके बच्चों को बहुत प्यार करता है। इसका सियारनी से सम्बन्ध अवश्य होगा। इसीलिए उससे स्नेह करता है। मैं इसे कष्ट देकर, डराकर भगाऊँ।

जिस समय सिंह सियार को साथ ले शिकार के लिए जाता सिंहनी सियारनी को डराती, धमकाती—तू यहाँ क्यों रहती है ? यहाँ से भागती क्यों नहीं ? उसके बच्चे भी सियारनी के बच्चों को वैसे ही तंग करते, धमकाते।

सियारनी ने सियार से सब हाल कहा और बोली—“पता नहीं, सिंहनी सिंह के ही कहने से ऐसा व्यवहार करती है। हम यहाँ बहुत दिन रह चुके। वह हमारी जान भी ले सकता है। अपने निवास-स्थान पर ही चलो।”

सियार ने उसकी बात सुन सिंह के पास जाकर कहा—

“स्वामी ! हम तुम्हारे पास बहुत समय रहे। अधिक देर तक समीप रहने वाले अप्रिय हो जाते हैं। हमारे शिकार के लिए चले जाने पर सिंहनी सियारनी को तंग करती है। उसे डराती है कि यहाँ क्यों रहती है ? यहाँ से भाग। सिंह-बच्चे भी सियार-बच्चों को डराते धमकाते हैं। यदि किसी को किसी का अपने पास रहना अच्छा न लगे तो ‘जाओ’ कह कर उसे निकाल देना चाहिए, तंग करने की क्या जरूरत है ?”

इतना कह यह पहली गाथा कही—

येन कामं पणामेति धम्मो बलवत्तं मग्गि ।

उन्नतन्ति विज्जानाहि जातं सरणतो भयं ॥

[हे सिंह ! बलवान् का यही स्वभाव है कि जहाँ चाहता है भगा देता है। हे उन्नत दाँत वाले (सिंह) ! यह जान ले कि शरण-स्थल से ही भय पैदा हो गया ।]

येन कामं पणामेति धम्मो बलवत्तं बलवान् अथवा ऐश्वर्यशाली अपने सेवक को जिस दिशा में चाहता है उस दिशा में भगा देता है, निकाल देता है, यह बलवानों का धर्म है। यह ऐश्वर्य-शालियों का स्वभाव है। यही परम्परा है। इसलिए यदि हमारा रहना अच्छा न लगता हो, तो हमें सीधा निकाल दें। कष्ट देने

से क्या लाभ ?—यही अर्थ प्रकट करने के लिए यह कहा । मिगी, सिंह को सम्बोधन करता है । वह मृगराज होने से मृगों का मालिक है, इसीलिए मिगी । उन्न-दन्ति—यह भी उसी का सम्बोधन है । ऊँचे दाँतों वाला होने से उन्नदन्ति । उन्न-तदन्ति, यह भी पाठ है । बिजानाहि, यही ऐश्वर्यशालियों का स्वभाव है, यह जान लें । जातं सरणतो भयं, हमें तुमसे प्रतिष्ठा मिली, इससे तुम्हीं हमारे शरण । अब तुम्हारे ही पास से भय पैदा हो गया । इसलिए हम अपने निवास-स्थान को जायेंगे ।

दूसरा अर्थ—मिगी (सिंहनी) उन्नदन्ती मेरे बच्चों और स्त्री को ताड़ती है । येन कामं पणामेति जिस-जिस तरह से चाहता है उस-उस तरह से निकाल देता है, प्रवर्तित करता है, तंग करता है—इसे तू जान ले । इसमें हम क्या कर सकते हैं ? धम्मो बलवत्तं यह बलवानों का स्वभाव है । हम जाते हैं । किस लिए ? क्योंकि जातं सरणतो भयं ।

उसकी बात सुनकर सिंह ने सिंहनी से पूछा—“भद्रे ! अमुक समय में शिकार के लिए गया था और सातवें दिन इस सियार और सियारनी के साथ लौटा था, इसकी कुछ याद है ?”

“हाँ, याद है ।”

“मेरे एक सप्ताह तक न आ सकने का कारण जानती है ?”

“स्वामी ! नहीं जानती हूँ ।”

“भद्रे ! मैं एक मृग को पकड़ने जाकर, चूक कर, दलदल में फँस गया । उसमें से न निकल सकने के कारण सप्ताह भर भूखा खड़ा रहा । सो, इस सियार ने मेरे प्राण बचाए । यह मुझे जीवन-दान देने वाला मित्र है । जो मित्र का धर्म पूरा कर सके वह मित्र दुर्बल नहीं माना जाता । इसके बाद मेरे मित्र, मेरी सखी तथा उसके बच्चों का इस प्रकार अपमान न करना ।”

इतना कह सिंह ने दूसरी गाथा कही—

अपिच्छेपि दुग्बलो भित्तो मित्तधम्मेषु तिट्ठति
सो आतको च बन्धू च सो भित्तो सो च मे सखा,
वाठिनि ! मातिमिच्छात्थो सिगालो मस पाणबो ॥

[यदि मित्र दुर्बल है, लेकिन वह मित्र के कर्तव्य को पूरा करता है तो वही रिस्तेदार है, बन्धु है, मित्र है, सखा है ! सिंहनी ! अपमान मत कर । सियार मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला है ।]

अपि चेपि, एक 'अपि' जोर डालने के लिए है, दूसरा 'अपि' सम्भावना प्रकट करता है । अन्वय इस प्रकार है—**दुब्बलो चेपि मित्तो मित्तबम्मेसु अपि तिट्ठति** यदि स्थित रह सकता है । **सो जातको च बन्धु च सो, मैत्री चित्त होने से मित्तो । सो च मे सहायक होने से सखा । बाठिनि ! मातिमञ्जात्थो, भद्रे ! दाढ़ वाली ! सिंहनी ! मेरे मित्र अथवा मेरी सखी का अपमान न कर । यह सिंगालो मम प्राणवो ।**

उसने सिंह की बात सुन सियारनी से क्षमा मांगी । फिर उसके तथा उसके बच्चों के साथ मिल-जुल कर रहने लगी । सिंह-बच्चे भी सियार के बच्चों के साथ खेलते हुए मौज करते हुए रहने लगे । माता-पिता के मरने पर भी मैत्री बनाए रख मिल-जुल कर रहे । सात पीढ़ी तक उनकी मैत्री बराबर बनी रही ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों का, प्रकाशन समाप्त होने पर कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए ।

उस समय सियार आनन्द था । सिंह तो मैं ही था ।

१५८. सुहनु जातक

“नयिबं विसमसीलेन . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो भिक्षुओं के बारे में जिनका स्वभाव बड़ा उद्दण्ड था, कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में भी एक उद्दण्ड, कठोर, दुस्साहसी भिक्षु था और एक दूसरा देहात (जनपद) में भी था।

एक दिन देहात का भिक्षु किसी काम से जेतवन गया। श्रामणेर और छोटी आयु के भिक्षु उसके चण्ड-स्वभाव की बात जानते थे। उन्होंने दोनों उद्दण्ड भिक्षुओं का झगड़ा देखने की इच्छा से कुतूहलवश उस भिक्षु को जेतवन वासी भिक्षु के परिवेण में भेज दिया।

दोनों उद्दण्ड भिक्षु एक दूसरे को देखते ही परस्पर एक हो गए, मित्र बन गए। वह एक दूसरे के हाथ, पैर, पीठ दबाना आदि करने लगे।

भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चलाई—“भिक्षुओ! उद्दण्ड भिक्षु दूसरों के प्रति तो बड़े उद्दण्ड हैं, कठोर हैं तथा दुस्साहसी हैं लेकिन दोनों परस्पर एक हो गए, मेल कर लिया, प्रेमी बन गए।”

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?”

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ! केवल अभी नहीं पहले भी यह औरों के प्रति तो उद्दण्ड, कठोर तथा दुस्साहसी थे लेकिन दोनों परस्पर एक हो गए थे, मेल से रहते थे तथा प्रेमी थे।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उस राजा के सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। वे उसे अर्थ तथा धर्म की बातों में सलाह देते थे। वह राजा थोड़ा लोभी स्वभाव का था। उसके यहाँ महासोण नाम का एक दुष्ट घोड़ा था।

गान्धार (=उत्तरापथ) देश के घोड़ों के व्यापारी पाँच सौ घोड़े लाए। राजा को घोड़ों के आने की खबर दी गई।

पहले बोधिसत्त्व घोड़ों की कीमत लगा उसे कम न कर दिलवाते थे। राजा को उससे संतोष न होता था। इसलिए उसने दूसरे अमात्य को बुलाकर कहा—“तात! तू घोड़ों की कीमत लगा। लेकिन कीमत लगाने से पहले महासोण को

ऐसा कर कि वह इन घोड़ों में जाकर उन्हें काट कर जख्मी कर दे। जब वे दुर्बल हो जायें और उनका मूल्य घट जाए, तब उनकी कीमत लगाना।”

उसने ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर वैसा ही किया। घोड़ों के व्यापारियों ने असन्तुष्ट हो, उसने जो किया वह बोधिसत्त्व से कहा।

बोधिसत्त्व ने पूछा—“क्या तुम्हारे नगर में दुष्ट घोड़ा नहीं है ?

“स्वामी ! सुहनु नाम का दुष्ट, चण्ड, कड़े स्वभाव का घोड़ा है।”

“अच्छा तो फिर आते समय उस घोड़े को लेते आना।”

उन्होंने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया। फिर आते समय उस घोड़े को साथ लिवाकर आए।

राजा ने सुना कि घोड़ों के व्यापारी आए। उसने खिड़की खोलकर घोड़ों को देखा और महासोण को छुड़वा दिया। घोड़ों के व्यापारियों ने भी महासोण को आते देख सुहनु को छोड़ा। वे दोनों पास आने पर एक दूसरे का शरीर चाटने लगे। राजा ने बोधिसत्त्व से पूछा—“मित्र ! यह दो घोड़े दूसरों के प्रति चण्ड हैं, कड़े स्वभाव के हैं, दुस्साहसी हैं। दूसरे घोड़ों को काट कर रोगी कर देते हैं। लेकिन एक दूसरे के शरीर को चाटते हुए आनन्द-पूर्वक खड़े हैं। यह क्या बात है ?”

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया, “महाराज ! यह परस्पर विरोधी स्वभाव के नहीं हैं, समान स्वभाव के, समान धातु के हैं” और यह दो गाथाएँ कहीं—

नयिबं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह,

सुहनुपि ताविसोयेव यो सोणस्स स गोचरो॥

पक्खन्दिना पगग्गेन निच्चं सन्दान खादिना,

समेति पापं पापेन समेति असत्ता असं॥

[सुहनु और सोण का स्वभाव विरोधी नहीं है। जैसा सुहनु है, वैसा ही सोण। उछल-कूद करने वाले, प्रगल्भ तथा हमेशा लगाम खा जाने वाले इस घोड़े का पाप-कर्म और असत्कर्म दूसरे के बराबर है।]

नयिबं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह, यह जो सुहनु दुष्ट घोड़ा सोण के साथ प्रेम करता है, यह अपने विरुद्ध स्वभाव वाले के साथ नहीं। यह अपने समान शील वाले के ही साथ करता है। यह दोनों दुष्ट स्वभाव वाले होने से समान स्वभाव

वाले वा समान धातु वाले हैं। सुहृन्पि ताविसोयेव यो सोणस्स सगोचरो, जैसा सोण सुहृन् भी वैसा ही। यो सोणस्स सगोचरो, जो सोण की चरने की जगह है, वही उसकी भी। जैसे सोण अश्व-गोचर है अश्वों को काटता हुआ ही चरता है, उसी तरह सुहृन् भी। इस प्रकार उनकी समान गोचरता प्रदर्शित की गई है। उनके आचरण की एकता दिखाने के लिए पक्खन्दिना आदि कहा गया है।

पक्खन्दिना, अश्वों के ऊपर कूद पड़ने के स्वभाव वाला। पगडभेन, काय-प्रगल्भता आदि दुश्शीलता से युक्त। निरुच्चं सन्धानत्ताविना, हमेशा अपनी लगाम खा जाने की आदत वाले से। सन्नेति पापं पापेन, इन दोनों में से एक का पाप, दुष्टता दूसरे के बराबर है। अत्तता असं इन दोनों में से एक दुष्ट दुराचारी के साथ दूसरे का असं बुरा काम बराबरी करता है। जैसे गूँह आदि के साथ गूँह आदि मिल जाता है, कोई अन्तर नहीं रहता, वैसे ही।

इतना कहकर बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया—“महाराज ! राजा को अधिक लोभी नहीं होना चाहिए। दूसरों का धन नष्ट करना उचित नहीं।” फिर घोड़ों की कीमत लगवा उचित मूल्य दिलवाया।

घोड़ों के व्यापारी यथोचित मूल्य पाकर संतुष्ट लौटे। राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दो घोड़े यह दो दुष्ट भिक्षु थे। राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१५९. मोर जातक

“उदेतयं चक्षुम। . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को भिक्षु शास्ता के पास ले गये। शास्ता ने पूछा—“भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न हो गया ?”

“भन्ते ! सचमुच।”

“क्या देखकर उद्विग्न हुआ ?”

“एक अलंकृत-शरीर स्त्री को देखकर।”

“भिक्षु ! स्त्री तुम्हारे ही जैसों के चित्त को कैसे नहीं उद्वेलित करेगी। स्त्री-शब्द को सुनकर पुराने समय में पण्डितों ने सात सौ वर्ष तक कामुकता से दूर रह मौका मिलने पर क्षण भर में ही दुराचरण किया। शुद्ध प्राणी भी अशुद्ध हो जाते हैं। उत्तम यश वाले भी बे-इज्जत हो जाते हैं। अशुद्धों की तो बात ही क्या।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने मोर का जन्म ग्रहण किया। वह जिस समय अण्डे में थे, उस समय उस अण्डे का रंग कर्णिका फूल की कली के सदृश था। जब अण्डा फोड़कर बाहर आए तो सुनहरा

रंग था—देखने योग्य, चित्त प्रसन्न कर देने वाला । पङ्क्तियों के बीच में लाल रंग की पाँति विराजित थी ।

उसने अपने जीवन की रक्षा के ख्याल से तीन पर्वत पंक्तियाँ लाँघकर चौथी पर्वत-शृंखला में एक दण्डक-हिरण्य पर्वत के नीचे रहना शुरू किया । रात्रि का प्रभात होने पर वह पर्वत के शिखर पर बैठ, उगते सूर्य को देख अपने घूमने फिरने की जगह को सुरक्षित करने के लिए ब्रह्मा (= महान्) मन्त्र बनाता हुआ यह कहता—

उबेतयं चक्षुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता बिहरेमु दिवसं ॥

[यह चक्षुमान एक राजा जिसका रंग सुनहरा है और जो पृथ्वी को प्रकाशित करता है उदय हो रहा है । मैं इस पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले, सुवर्ण वर्ण को नमस्कार करता हूँ । आज इसके द्वारा रक्षित होकर दिन में घूमें ।]

उबेति, प्राचीन लोकधातु से ऊपर उठता है । चक्षुमा, सारे ब्रह्माण्ड के निवासियों के अन्धकार को दूर कर आँख प्राप्त कराने से वह जिस आँख का देने वाला हुआ उसी आँख वाला होने से चक्षुमा । एकराजा, सारे चक्रवाल में प्रकाश फैलाने वालों में सर्वश्रेष्ठ होने से एकराजा । हरिस्सवण्णो, हरि जैसा रंग, अर्थात् स्वर्ण-वर्ण । पठवि को प्रकाशित करता है, इसलिए पठविप्पभासो । तं तं नमस्सामि इसलिए ऐसे उन्हें नमस्कार करता हूँ, वन्दना करता हूँ । तयज्जगुत्ता बिहरेमु दिवसं, उससे सुरक्षित होकर, उसकी हिफाजत में हम आज का दिन सुख-पूर्वक उठ-बैठ चल-फिर कर गुजारें ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से सूर्य को नमस्कार कर इस दूसरी गाथा से अतीत काल के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धों तथा बुद्ध-गुणों को स्मरण करते—

ये ब्राह्मणा वेदगु सन्ध धम्मे
ते मे नमो ते च भं पालयन्तु

नमस्तु बुद्धानं नमस्तु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सोपरित्तं कत्वा मोरो चरति एसना ॥

[जो ब्राह्मण सब धर्मों के जानने वाले हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे मेरी रक्षा करें। बुद्धों को नमस्कार है। बोधि को नमस्कार है। विमुक्तों को नमस्कार है। विमुक्ति को नमस्कार है—वह मोर इसे अपनी रक्षा (का साधन) बना खोजता रहता था।]

ये ब्राह्मण, जिन्होंने पापों को बहा दिया है, जो विशुद्ध होने से ब्राह्मण कहे गए हैं। वेदगु, जो वेद के पार गए वह भी वेदगु और वेद द्वारा जो पार गए वह भी वेदगु। यहाँ मतलब है कि जितने संस्कृत असंस्कृत धर्म हैं उन सभी को प्रकट करके गए इसलिए वेदगु। तभी कहा गया है—सब्व धम्ममे। सब स्कन्ध, आयतन, धातु धर्मों को स्वलक्षण तथा सामान्य लक्षण की दृष्टि से अपने ज्ञान को प्रकट करके गए अथवा तीनों मारों के मस्तक को मर्दित कर दस सहस्र लोकधातु को उन्नादित कर बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त कर संसार के पार पहुँचे। ते मे नमो, वे मेरे इस नमस्कार को स्वीकार करें। ते च मं पालयन्तु इस प्रकार मुझसे नमस्कृत वे भगवान् मेरी पालना करें, रक्षा करें, हिंफाजत करें। नमस्तु बुद्धानं नमस्तु बोधिया नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया, यह मेरा नमस्कार अतीत में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धों को पहुँचे, उन्हीं की चार-मागों तथा चार-फलों का ज्ञान स्वरूप जो बोधि है उस बोधि को पहुँचे, उन्हीं की अर्हत्व-फल रूपी विमुक्ति को प्राप्त करने वाले विमुक्तों को पहुँचे, जो उनकी पाँच प्रकार की विमुक्ति है अर्थात् तदंग-विमुक्ति, विक्खम्भन-विमुक्ति, समुच्छेद-विमुक्ति, पटिप्पस्सद्विमुक्ति तथा निस्सरण-विमुक्ति; उस विमुक्ति को भी पहुँचे। इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना, यह दो पद शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त करके कहे। इनका अर्थ है “भिक्षुओं वह मोर इसे परित्राण बना, उसे रक्षा का साधन बना अपने गोचर-भूमि में फल-फूल के लिए नाना प्रकार से खोजता फिरता था।”

इस प्रकार दिन भर घूम कर शाम को पर्वत के शिखर पर बैठ डूबते हुए सूर्य को देख बुद्धगुणों का ध्यान कर निवास-स्थान की रक्षा के लिए फिर ब्रह्म-मन्त्र बाँधता हुआ ‘अपेतयं’ आदि कहता—

अपेतयं चक्षुमा एकराजा
 हरिस्तवण्णो पठविण्यभासो
 तं तं नमस्सामि हरिस्तवण्णं पठविण्यभासं
 तयज्ज गुत्ता विहरेमु रत्ति ॥
 ये ब्राह्मणा वेदगु सव्वधम्मं
 ते मे नमो ते च मं पालयन्तु
 नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
 नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
 इमं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि ॥

[ये... अस्त हो रहा है। इसे रक्षा (का साधन) बना वह मोर रहने को- गया।]

अपेति, जाता है, अस्त को प्राप्त होता है। इबं सो परित्तं कत्वा मोरो वास-
 मकप्पयि, यह भी बुद्धत्व प्राप्त करने पर कहा। इसका अर्थ है—भिक्षुओं !
 वह मोर इसे परित्राण बना, इसे रक्षा (का साधन) बना, अपने निवासस्थान पर
 रहने लगा। इस परित्राण के प्रताप से उसे न दिन में डर लगा, न रात में, न रोमा-
 ञ्च हुआ।

उस समय वाराणसी से कुछ ही दूर पर शिकारियों का एक गाँव था। वहाँ
 के निवासी एक शिकारी ने हिमालय-प्रदेश में घूमते हुए उस दण्डक-हिरण्य पर्वत
 पर बैठे हुए बोधिसत्त्व को देख आकर पुत्र को कहा।

वाराणसी-नरेश की खेमा नामक देवी ने स्वप्न में देखा कि सुनहरे रंग का
 मोर धर्मोपदेश कर रहा है। उसने राजा से कहा—“देव ! मैं सुनहरे रंग के
 मोर से धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ।”

राजा ने अमात्यों से पूछा। अमात्य बोले—ब्राह्मण जानते होंगे। ब्राह्मणों
 ने कहा—सुनहरे रंग के मोर होते हैं। “कहाँ होते हैं ?” पूछने पर बोले—
 “शिकारी जानते होंगे।”

राजा ने शिकारियों को इकट्ठा कर पूछा। वह शिकारी-पुत्र बोला—“महा-

राज ! हाँ ! दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है । वहाँ सुनहरे रंग का मोर रहता है ।”

“तो उसे बिना मारे, जीवित ही बाँध कर लाओ ।”

शिकारी ने जाकर उसके घूमने की भूमि पर जाल फैलाया । मोर के आने की जगह पर भी जाल न कसा । शिकारी उसे न पकड़ सका । सात साल घूमते रह कर वह वहीं मर गया ।

खेमा देवी की भी इच्छा पूरी न हुई । वह भी मर गई ।

राजा को क्रोध आया कि मोर के कारण मेरी रानी की जान गई । उसने एक सोने के पट्टे पर लिखाया—“हिमालय प्रदेश में दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है । वहाँ सुनहरे रंग का मोर रहता है । जो उसका मांस खाते हैं वह अजर-अमर हो जाते हैं ।” उस सोने के पट्टे को उसने एक सन्दूकची में रखवा दिया ।

उसके मरने पर दूसरे राजा ने उस स्वर्ण-पट्टे को पढ़कर अजर-अमर होने की इच्छा से दूसरे शिकारी को भेजा । वह भी जाकर बोधिसत्त्व को न पकड़ सका । वहीं मर गया । इस प्रकार छः राज-पीढ़ियाँ गईं ।

सातवें राजा ने राज्य पाकर एक शिकारी को भेजा । उसने जाकर देखा कि बोधिसत्त्व की चलने-फिरने की जगह पर भी फंदा नहीं लगता । वह समझ गया कि अपनी रक्षा करके ही मोर चरने आता है । वह देहात में आया और वहाँ से एक मोरनी ले, उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह ताली बजाने पर नाचने लगती और चुटकी बजाने पर आवाज लगाती । ऐसा सिखा कर वह मोरनी को लेकर गया । प्रातःकाल ही जब अभी मोर ने परित्राण द्वारा अपने को रक्षित नहीं किया था उसने फंदे के खूँटे गाड़, फंदा फैला मोरनी से आवाज लगवाई । मोर ने जब मोरनी का असाधारण शब्द सुना तो कामासक्त हो परित्राण न कर सकने के कारण जाकर फंदे में फँस गया ।

शिकारी ने उसे पकड़ ले जाकर वाराणसी के राजा को दिया । राजा ने उसका सौंदर्य देख प्रसन्न हो उसे आसन दिलाया ।

बोधिसत्त्व ने बिछे आसन पर बैठ, पूछा—“महाराज ! मुझे क्यों पकड़वाया ?”

“जो तेरा मांस खाते हैं, वह अजर-अमर हो जाते हैं । मैंने तेरा मांस खाकर अजर-अमर होने की इच्छा से तुझे पकड़वाया है ।”

“महाराज ! मेरा मांस खाने वाले तो अमर हों, और मुझे मरना होगा ?”

“हाँ, मरना होगा।”

“जब मैं मरूँगा, तो मेरा मांस खाने वाले किस लिए नहीं मरेंगे ?”

“तू सुनहरे रंग का है, इसलिए तेरा मांस खाने वाले अजर-अमर होंगे।”

“महाराज ! मैं यूँ ही सुनहरे रंग का पैदा नहीं हुआ हूँ। पहले मैं इसी नगर में चक्रवर्ती राजा था। मैंने अपने आप भी पाँच शीलों की रक्षा की और सारे चक्रवाल के निवासियों से भी करवाई। मर कर मैं त्रयोविंश लोक में पैदा हुआ। वहाँ आयु भर रह कर एक दूसरे पाप-कर्म के फलस्वरूप मोर होकर पैदा हुआ; लेकिन पुराने सदाचार के प्रताप से सुनहरे रंग का हुआ।”

“तू चक्रवर्ती होकर (पंच-) शील की रक्षा कर उसी के फलस्वरूप सुनहरे रंग का हुआ, इस बात पर हम कैसे विश्वास करें ? तेरा कोई साक्षी है ?”

“महाराज ! है।”

“कौन है ?”

“महाराज ! जब मैं चक्रवर्ती था, तो रत्नमय रथ में बैठ कर आकाश में विचरता था। वह मेरा रथ मङ्गल-पुष्करिणी के अन्दर जमीन में गड़वाया हुआ है। उसे मङ्गल-पुष्करिणी से निकलवायें। वह रथ मेरे कथन का साक्षी होगा।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर पुष्करिणी में से पानी निकलवा रथ को बाहर करवाया। तब उसे बोधिसत्त्व की बात पर विश्वास हुआ।

बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म उपदेश दिया—“महाराज ! अमृत महा निर्वाण को छोड़ शंष जितने भी संस्कृत धर्म हैं, वे सब पैदा होकर अभाव को प्राप्त होते हैं, अनित्य हैं, क्षय होने वाले हैं, व्यय होने वाले हैं।” फिर राजा को पंच-शील में प्रतिष्ठित किया।

राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्त्व की राज्य से पूजा की और बड़ा सत्कार किया। उसने राज्य राजा को ही वापिस लौटा कुछ दिन रह कर राजा को उपदेश दिया कि महाराज ! अप्रमादी रहें।

फिर आकाश में उड़कर दण्डकहिरण्य नाम के पर्वत को ही चला गया।

राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल दान आदि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय राजा आनन्द था । सुनहरे रंग का मोर तो मैं ही था ।

१६० . बिनीलक जातक

“एवमेव नून राजानं . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बुद्ध की नकल करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त गया-शीर्ष पर गए हुए दोनों प्रधान श्रावकों के सामने बुद्ध का रंग-ढंग बनाकर लेट रहा, तो दोनों स्वविर धर्मोपदेश दे अपने शिष्यों को लेकर वेळुवन चले आए ।

शास्ता ने पूछा—“सारिपुत्र ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?”

“भन्ते ! सुगत का रंग-ढंग दिखाकर महाविनाश को प्राप्त हुआ ।”

“सारिपुत्र ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ है, पहले भी प्राप्त हुआ है ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, विबेह राष्ट्र में, मिथिला में विदेहराज के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए । बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएँ सीखीं । पिता के मरने पर राज्य गद्दी पर बैठे ।

उस समय एक स्वर्ण-हंसराज का चुगने की जगह पर एक कौवी से सहवास

हो गया। उसे पुत्र हुआ। वह न माता के सदृश था, न पिता के सदृश। उसका रूप रंग भद्दा नीला होने से उसका नाम विनीलक हं: हो गया।

हंसराज सदैव पुत्र को देखने जाता। उसके दो दूसरे हंस-बच्चे पुत्र थे। उन्होंने पिता को हमेशा बस्ती की ओर जाते हुए देखकर पूछा—“तात ! तुम हमेशा बस्ती की ओर क्यों जाते हो ?”

“तात ! एक कौवी से सहवास होकर मुझे एक पुत्र हुआ। उसका नाम विनीलक है। मैं उसे देखने जाता हूँ।”

“यह कहाँ रहते हैं ?”

“विदेह राष्ट्र में मिथिला के पास अमुक जगह पर एक ताड़ के वृक्ष पर रहते हैं।”

“तात ! बस्ती सशक्ति जगह है। वहाँ खतरा होता है। तुम न जाओ। हम जाकर उसे ले आएँगे।”

दोनों हंस-बच्चे पिता के बताए हुए निशान से वहाँ पहुँच उस विनीलक को एक डण्डे पर बिठा चोंच से डण्डे के सिरों को पकड़ मिथिला नगर के ऊपर से चले।

उस समय विदेह राज सर्वश्वेत चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर की परिक्रमा कर रहे थे। विनीलक ने उसे देख मन में कहा—“भुज्जमें और विदेह राज में क्या अन्तर है ? यह चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर में घूमता है। मैं हंस जुते रथ में बैठकर जा रहा हूँ।” उसने आकाश से जाते हुए यह गाथा कही—

एवमेव नून राजानं वेदेहं मिथिलगहं,

अस्सा वहन्ति आजञ्ज्णा यथा हंसा विनीलकं ॥

[जैसे हंस विनीलक को ढो रहे हैं उसी तरह से श्रेष्ठ घोड़े मिथिला के विदेह-राजा (के रथ) को खींचते हैं।]

एवमेव, इसी तरह, नून, संकल्प-विकल्प विषयक निपात है। ‘निश्चय से’ भी ठीक अर्थ है। वेदेहं, वेदेह, राष्ट्र के स्वामी को। मिथिलगहं, मिथिलागहं मिथिला में घर लेकर रहने वाला। आजञ्ज्णा, कारण, अकारण जानने वाले,

यथा हंसा विनीलकं, जैसे यह हंस मुझ विनीलक को ढो रहे हैं, उसी प्रकार खींच रहे हैं ।

हंस-बच्चों ने उसकी बात सुनी तो उन्हें क्रोध आया । उन्होंने सोचा इसे यहीं गिरा जायें । लेकिन फिर सोचा ऐसा करने से हमारा पिता हमें क्या कहेगा ? उसकी निन्दा के डर से वे उसे पिता के पास ले गए और उसकी करतूत पिता से कही ।

पिता को क्रोध आया । वह बोला—‘क्या तू मेरे पुत्रों से बढ़कर है जो उनको नीचा दिखा रथ में जुतनेवाले घोड़ों के समान बनाता है ? अपनी बिसात नहीं जानता ? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है । जहाँ तेरी माँ रहती है, वहीं जा ।’ इस प्रकार धमकाकर दूसरी गाथा कही—

विनील ! बुगं भजसि अभूमि तात ! सेवसि,
गामन्तिकानि सेवस्सु एतं मातालयं तव ॥

[विनील ! तू दुर्ग में रहता है । तात ! तू अयोग्य स्थान में रहता है । तू ग्राम के आस-पास रह । वह तेरा मातृ-गृह है ।]

विनील उसे नाम से बुलाता है । बुगं भजसि, इनके साथ गिरि-दुर्ग में रहता है । अभूमि तात ! सेवसि तात ! गिरि विषम स्थान, तेरे लिए अयोग्य स्थान है । तू अभूमि में वास करता है । एतं मातालयं तव, यह ग्राम के सिरे पर जो कूड़ा फेंकने की जगह है तथा कच्चा श्मशान है वही तेरी माता का निवास-स्थान है । तू वहीं जा ।

इस प्रकार उसे धमका कर पुत्रों को आज्ञा दी—जाओ, इसे मिथिला नगर की कूड़ा डालने की जगह पर ही उतार आओ । उन्होंने वैसा ही किया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय विनीलक देवदत्त था । दो हंस-बच्चे दो अग्र-श्रावक थे । पिता आनन्द था । विदेहराज तो मैं ही था ।

दूसरा परिच्छेद

२. सन्धव वर्ग

१६१. इन्दसमानगोत्त जातक

“न सन्धवं कापुरिसेन कयिरा” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ऐसे भिक्षु के बारे में कही जो किसी की बात न मानता था ।

क. वर्तमान कथा

उसकी कथा नौवें परिच्छेद में ‘गिज्ज जातक’^१ में आएगी । शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—हे भिक्षु ! तूने पहले भी किसी की बात न मानने वाला होने से पण्डितों का कहना न माना और मस्त हाथी के पैरों से रौंदा जाकर चूर-चूर हुआ । इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर घर-बार छोड़ ऋषियों के ढंग की प्रव्रज्या ग्रहण कर पाँच सौ ऋषियों के दल का नेता बन हिमालय प्रदेश में रहने लगे । उन तपस्वियों में एक इन्दसगोत्त नाम का तपस्वी था—किसी की बात न मानता था, किसी का कहना न करता था ।

^१ गिज्ज जातक (४२७) ।

उसने एक हाथी-बच्चा पाल रक्खा था। बोधिसत्त्व ने सुना तो उसे बुलाकर पूछा—‘सचमुच ! तू हाथी-बच्चे को पाल-पोस रहा है ?’

‘सचमुच आचार्य्य ! एक हाथी-बच्चा है, जिसकी माँ मर गई है, उसे पोस रहा हूँ ।’

‘हाथी बड़े होने पर पालन-पोसन करने वाले को ही मारते हैं, तू उसे मत पोस ।’

‘आचार्य्य ! उसके बिना नहीं रह सकता ।’

‘अच्छा ! तो पता लगेगा ।’

उससे पोसा जाकर वह हाथी-बच्चा आगे चल कर बड़े भारी शरीर वाला हो गया ।

एक समय वे ऋषिगण जंगल से फल-मूल लाने के लिए दूर चले गए और कुछ दिन वहीं रहे। हाथी को श्रेष्ठ दक्षिण हवा लगी तो उसका मद फूट पड़ा। उसने उस तपस्वी की पर्णकुटी नष्ट कर डाली। पानी का घड़ा फोड़ दिया। पत्थर का तश्ता फेंक दिया। आलम्बन-तश्ता^१ नोच डाला। फिर उस तपस्वी को मार डाल कर ही जाने के विचार से एक घनी जगह में छिपकर उसके आने के रास्ते की ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

इन्द्रसगोत्त अपना फल-मूल ले, सबके आगे-आगे आ रहा था। उसे देख वह साधारण स्वभाव से ही उसके पास गया।

हाथी ने घनी जगह से निकल, उसे सूण्ड से पकड़, जमीन पर गिरा, सिर पैर से दबा, मार डाला। फिर उसे मसलता हुआ क्रौञ्चनाद करके जंगल में चला गया। शेष तपस्वियों ने बोधिसत्त्व से वह समाचार कहा। बोधिसत्त्व ने यह कहते हुए कि बुरे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए, यह गाथा कही—

न सन्धवं कापुरिसेन कयिरा
अरियो अनरियेन पजानमत्थं
चिरानुबुत्थो पि करोति पापं
गजो यथा इन्द्रसमानगोत्तं ॥

^१ जिसके सहारे से बैठ सकें।

यं त्वेव जञ्जा सविसो मम
 सीलेन पञ्जाय सुतेन चापि
 तेनेव मेति कयिरास सद्धि
 सुखावहो सप्पुरिसेन संगमो ॥

[श्रेष्ठ आदमी अर्थ-अनर्थ को जानता हुआ बुरे आदमी से दोस्ती न करे । चिरकाल तक साथ रह कर भी बुरा आदमी बुराई करता है, जैसे हाथी ने इन्द्रसमान-गोत्र की बुराई की ।

जिसके सदाचार, प्रज्ञा तथा ज्ञान को अपने बराबर का समझे, उसी के साथ मैत्री करे । सत्पुरुष के साथ की गई मैत्री सुख को देने वाली होती है ।]

न सन्धवं कापुरिसेन कयिरा, घृणित, क्रोधी आदमी के साथ आसक्ति वा मैत्री न करे । अरियो अनरियेन पज्जनमत्थं; आर्य्य चार प्रकार के होते हैं (१) आचार-आर्य्य, (२) लिङ्ग-आर्य्य, (३) दर्शन-आर्य्य, (४) प्रतिवेध-आर्य्य । इनमें यहाँ आचार्य्य-आर्य्य से मतलब है । जो अर्थ को जानता है, अर्थ को पहचानता है, आचार में स्थित है—ऐसा आर्य्य-पुद्गल, अनार्य्य, निर्लज्ज, दुश्शील के साथ मैत्री न करे । क्यों ? चिरानुबुधोपि करोति पापं, क्योंकि अनार्य्य चिरकाल तक एक साथ रह कर भी, उस एक साथ रहने का ख्याल न कर पाप, पाप-कर्म, बुरा-कर्म करता है । जैसे क्या ? गजो यथा इन्द्रसमानगोत्तं जैसे उस हाथी ने इन्द्रसमान-गोत्र को मार कर पाप किया ।

यं त्वेव जञ्जा सविसो मम, इत्यादि में जिस आदमी को जाने कि यह आदमी शील आदि में मेरे समान है, उसी के साथ मैत्री करे । सत्पुरुष के साथ मेल-जोल सुखदायी होता है ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उपदेश दिया कि बात न मानने वाला नहीं होना चाहिए, कहना मानने वाला होना चाहिए । यूँ ऋषिगण को उपदेश दे इन्द्रसमान-गोत्र का शरीर-कृत्य करवा ब्रह्म-विहारों की भावना करते हुए वह ब्रह्म-लोकगामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय इन्द्रसमानगोत यह बात न मानने वाला भिक्षु था। ऋषिगण का शास्ता मैं ही था।

१६२. सन्ध्या जातक

“न सन्ध्यावस्मा परमस्थि पापियो...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अग्नि-हवन करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा वैसी ही है जैसी नंगुठ जातक^१ में है। भिक्षुओं ने उन्हें अग्नि-हवन करते देख भगवान् से पूछा—“भन्ते ! जटिल-साधु नाना प्रकार के मिथ्या-तप करते हैं। इनसे कुछ उन्नति होती है ?” शास्ता ने उत्तर दिया—“भिक्षुओ, इससे कुछ लाभ नहीं। पुराने पण्डितों ने अग्नि-हवन करने से उन्नति होगी समझ चिरकाल तक अग्नि-हवन किया। लेकिन जब उससे हानि ही होती देखी, तो उन्होंने उसे पानी डाल कर बुझा दिया और शाखा आदि से पीटकर चले गए। फिर मुड़ कर उस तरफ देखा तक नहीं।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। माता-पिता ने उसके पैदा होने के दिन से अग्नि संभाल कर रख, उसके सोलह वर्ष का होने पर पूछा—‘तात ! जन्म-दिन से रखी हुई अग्नि

^१ नंगुठ जातक (१४४)।

लेकर जंगल में जा अग्नि की परिचर्या करोगे? अथवा तीनों वेद सीखकर कुटुम्ब का पालन करते हुए घर पर रहोगे?’

उसे घर रहने की इच्छा नहीं थी। इसलिए वह जंगल में जा, अग्नि की पूजा कर, ब्रह्मलोक-गामी होने की इच्छा से जन्म-दिन से रक्खी हुई आग ले, माता-पिता को प्रणाम कर जंगल चला गया। वहाँ पर्ण-कुटी में रहता हुआ अग्नि की पूजा करने लगा।

एक दिन वह किसी निमन्त्रित स्थान पर गया। वहाँ उसे घी के साथ खीर मिली। उसने सोचा इस खीर से महा-ब्रह्मा का यज्ञ करूँगा। उसने खीर ला आग जलाई। फिर सोचा घी मिश्रित खीर भगवान्-अग्नि को पिलाऊँ और खीर को आग में फेंका। बहुत चिकनाई वाली खीर के आग में पड़ते ही आग जोर से जली और उसकी जोर से उठी लपट ने पर्ण-कुटी जला डाली।

ब्राह्मण डरकर, घबरा कर भाग गया। बाहर खड़े होकर उसने सोचा कि बुरे से दोस्ती नहीं करनी चाहिए। अब इसने बड़ी कठिनाई से बनाई मेरी कुटिया जला डाली। इतना कह यह गाथा कही—

न सन्धवस्मा परमस्थि पापियो
यो सन्धवो कापुरिसेन होति,
सन्तप्पितो सप्पिना पायसेन
किच्छा कतं पणकुटि अदड्हि॥

[बुरे आदमी की मैत्री से बढ़कर बुरा कुछ नहीं। आग को घी वाली खीर से सन्तपित किया। उसने कठिनाई से बनी पर्ण-कुटी जला दी।]

न सन्धवस्मा, आसक्ति और मैत्री, यह जो दोनों प्रकार की दोस्ती है, इससे बढ़कर दूसरी बुरी बात नहीं है। यो सन्धवो कापुरिसेन, जो पापी बुरे आदमी के साथ दोनों तरह की दोस्ती है, इस दोस्ती से बढ़कर और बुरा कुछ नहीं। किस लिए? सन्तप्पितो... अदड्हि, क्योंकि घी और घी से सन्तपित की गई इस आग ने भी बड़ी कठिनाई से बनाई हुई मेरी पर्ण-कुटी जला दी।

इतना कह, 'उस मित्र-द्रोही से मुझे कुछ मतलब नहीं' सोच उसे पानी से बुझा, शाखाओं से पीट, हिमालय में चला गया। वहाँ उसने जब एक श्यामा मृगी को सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटते देखा, तो 'सत्पुरुष से मित्रता करने से बढ़कर कुछ नहीं है' सोच दूसरी गाथा कही—

न सन्धवस्मा परमित्थ सेव्यो
यो सन्धवो सप्पुरिसेन होति,
सीहस्स व्यग्घस्स च बीपिनो च
सामा मुखं लेहति सन्धवेन ॥

[सत्पुरुष से जो स्नेह होता है, उस स्नेह से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नहीं है। श्यामा मृगी स्नेह से सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटती है।]

सामा मुखं लेहति सन्धवेन, श्यामा मृगी इन तीनों जनों का मैत्री से, स्नेह से मुँह चाटती है।

इस प्रकार कह, बोधिसत्त्व हिमालय में चले गए। वहाँ ऋषियों की प्रब्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, मरने पर ब्रह्मलोकगामी हुए। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।

१६३. सुसीम जातक

“काळाभिग्गा सेतवन्ता तव इमे . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय छन्दक-दान^१ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार भिक्षुसंघ को जिसमें बुद्ध मुख्य रहते थे दान देता था, कभी बहुत से लोग एक साथ इकट्ठे हो दल बना कर दान देते थे, कभी एक-एक गली के लोग मिलकर देते थे और कभी सारे नगर के लोग सबसे इकट्ठा करके दान देते थे ।

इस समय सारे नगर निवासियों से दान इकट्ठा किया गया । सारा सामान तैयार हो गया । दाताओं में दो पक्ष थे । कुछ ने कहा यह सामान अन्य-तैर्थिकों को दें । कुछ ने कहा संघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं । इस प्रकार बार-बार बात होने पर भी दोनों पक्षों का अपना-अपना आग्रह रहा—अन्य-तैर्थिकों के शिष्य उन्हें दान दिये जाने के पक्षपाती रहे और बुद्ध के शिष्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को । तब यह हुआ कि बहुमत देखा जाय । बहुमत लिए जाने पर अधिक लोग यही कहने वाले हुए कि बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को ही दिया जाए । उन्हीं की बात स्थिर रही । अन्य-तैर्थिकों के शिष्य बुद्ध को दिए जाने वाले दान में बाधा नहीं डाल सके ।

नगर के लोगों ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर महा-दान दिया और सातवें दिन सब वस्तुओं का दान किया ।

शास्ता अनुमोदन कर जनता को मार्ग तथा फल का बोध करा जेतवन विहार

^१ वह दान जिसके देने में छन्द (vote) दिया गया हो ।

में चले गए। वहाँ भिक्षुसंघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जाने पर गन्ध-कुटी के सामने खड़े हो उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया।

शाम को धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! दूसरे तैथिक श्रावकों ने बुद्ध को मिलने वाले दान में विघ्न डालने की कोशिश की, किन्तु वे सफल नहीं हुए। सभी वस्तुओं का दान बुद्धों के ही चरणों पर आ पहुँचा। ओह ! बुद्धों की महानता !

शास्ता ने आकर पूछा ! भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओ, यह दूसरे मतों के अनुयायी न केवल अभी मुझे मिलने वाले दान में विघ्न डालने का प्रयत्न करते हैं, पहले भी किया है ! लेकिन दान की वह वस्तुएँ हमेशा मेरे ही चरणों में आ जाती रही हैं'—इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में सुसीम नाम का राजा था। बोधिसत्त्व ने उसके पुरोहित की ब्राह्मणी के कोख से जन्म ग्रहण किया। सोलह वर्ष की आयु होने पर उसका पिता मर गया। जिस समय वह जीवित था उस समय वह राजा का हाथी-मङ्गल-कारक था। हाथी को माङ्गलिक करने के स्थान पर जो सामान, भाण्डे तथा हाथी के अलंकार आते, वह सब उसी को मिलते। इस प्रकार एक-एक मङ्गलोत्सव में उसे करोड़ करोड़ धन मिलता।

उस समय हाथी-मङ्गलोत्सव आया। शेष ब्राह्मणों ने राजा के पास जाकर कहा—“महाराज ! हस्ति-मङ्गलोत्सव आया है। उत्सव करना चाहिए। पुरोहित-ब्राह्मण का लड़का बहुत छोटा है। वह न तीनों वेद जानता है, न हस्ती-सूत्र। हम हस्ती-मङ्गल करेंगे।”

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। ब्राह्मण प्रसन्न हो इधर-उधर विचरते थे कि अब पुरोहित-ब्राह्मण के लड़के को हस्ती-मङ्गल न करने देकर हम हस्ती-मङ्गल करेंगे और धन लेंगे।

बोधिसत्त्व की माता ने जब यह सुना कि आज से चौथे दिन मङ्गल होगा तो

'हाथी को माङ्गलिक करने की पूजा आदि करने वाला।

वह यह सोचकर रो पड़ी कि सात पीढ़ी से हाथी-मङ्गल करने का अधिकार हमारे वंश का रहा है। अब हमारा वंश पीछे पड़ जाएगा और हमें धन न मिलेगा।

बोधिसत्त्व ने पूछा, “माँ ! तू क्यों रोती है ?” उसने कारण बताया। तब बोधिसत्त्व ने कहा—“माँ, मैं मङ्गल करूँगा।”

“तात ! न तू तीन वेद जानता है और न हस्ती-सूत्र। तू कैसे मङ्गल करेगा ?”

“माँ, हस्ती-मङ्गल कब करेंगे ?”

“तात ! अब से चौथे दिन।”

“माँ ! तीन वेदों तथा हस्ती-सूत्र के जानकार आचार्य्य कहाँ रहते हैं ?”

“तात ! ऐसे प्रसिद्ध आचार्य्य यहाँ से एक सौ बीस योजन पर गैन्धार देश में तक्षशिला में रहते हैं।”

“माँ ! मैं अपने वंश को नष्ट होने न दूँगा। कल एक दिन मैं तक्षशिला पहुँच, एक ही रात में तीनों वेद और हस्ती-सूत्र सीख, फिर एक दिन में वापिस लौट चौथे दिन हस्ती-मङ्गल करूँगा। मत रो।”

इस प्रकार माँ को आश्वासन दे बोधिसत्त्व अगले दिन प्रातःकाल ही खाकर, अकेले ही निकल, एक दिन में तक्षशिला जा, आचार्य्य को प्रणाम कर, एक ओर बैठे।

आचार्य्य ने पूछा—“तात ! कहाँ से आया ?”

“वाराणसी से।”

“किस उद्देश्य से ?”

“आपसे तीनों वेद तथा हस्ती-सूत्र सीखने के लिए।”

“तात ! अच्छा सीख।”

बोधिसत्त्व ने कहा—‘मेरा कार्य्य बहुत जल्दी का है’ और सब हाल सुनाकर निवेदन किया—‘मैं एक रात में एक सौ बीस योजन आया हूँ। आज की रात मुझे ही सीखने की आज्ञा दें। आज से तीसरे दिन हस्ती-मङ्गल होगा। मैं एक ही बार पाठ सुनने से सब सीख लूँगा।’

इस प्रकार आचार्य्य की आज्ञा पा, बोधिसत्त्व ने आचार्य्य के खा चुकने पर अपने खा, आचार्य्य के पाँव धो, हजार की धैली उनके सामने रखी। फिर प्रणाम करके एक ओर बैठ पाठ आरम्भ कर अष्टांगोदय होने तक तीनों वेद और हस्ती-सूत्र समाप्त कर पूछा—‘आचार्य्य ! और भी कुछ बाकी है ?’

“तात ! नहीं, सब समाप्त हो गया ।”

“आचार्य ! इस ग्रंथ में इतना खो गया है; पाठ में इतना सदोष है। अब से शिष्यों को इस प्रकार पढ़ाया करें।”

इस तरह आचार्य की विद्या को निर्दोष बना, प्रातःकाल ही खाकर आचार्य को प्रमाण कर एक ही दिन में वाराणसी आ माता को प्रमाण किया ।

“तात ! तूने विद्या सीख ली ?”

“हाँ, सीख ली” कह माँ को सन्तुष्ट किया ।

अगले दिन मङ्गलोत्सव की तैयारी हुई। सौ हाथियों को सोने के गहनों, सोने की ध्वजाओं के साथ सुनहरी जालों से ढक कर खड़ा किया गया। राजा-ङ्गण अलङ्कृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित्त सजधज कर खड़े थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे, हम करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और भाण्डे लिवा जाकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्त्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढंग से अलङ्कृत होना उचित है, उस तरह अलङ्कृत हो, अपनी परिषद का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—
“महाराज ! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वंश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणों से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियों के अलङ्कार तथा दूसरे सामान उनको देंगे ?” इतना कह, पहली गाथा कही—

काळा भिगा सेतवन्ता तव इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति सुसीम ! ब्रूति
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[सुसीम ! क्या तुम अपने और हमारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफेद हैं, तुमको देंगे, तुमको देंगे ?]

ते ते ददामीति सुसीम ! ब्रूति, वह यह अथवा तुम्हारे पास के, काळा भिगा सेत वन्ता, ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलंकारों से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ, हे सुसीम ! क्या तू यह सचमुच कहता है। अनुस्सरं पेत्ति पितामहानं, हमारे और अपने वंश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज !

सात पीढ़ियों से हमारे पिता-पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो आप इसे याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहते हैं ?

सुसीम ने बोधिसत्त्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

काळा मिगा सेतवन्ता मम इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते वदामीति वदामि माणव !
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[माणव ! हाँ अपने और तुम्हारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहता हूँ कि यह अपने स्वर्ण-जाल से ढके हुए सौ से अधिक हाथी, जिनके सफेद दाँत हैं, तुमको देता हूँ।]

ते ते वदामि, वे यह हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ। माणव ! यह मैं सत्य ही कहता हूँ। अथवा तेरे हाथी ब्राह्मणों को देता हूँ, यह भी अर्थ है। अनुस्सरं, पिता-पितामह की कृति भी याद है, नहीं याद है सो नहीं। हमारे पिता-पितामह के हस्ती-मङ्गल को तुम्हारे पिता-पितामह करते थे, इसे याद करता हुआ भी यह कहता हूँ।

बोधिसत्त्व ने कहा—“महाराज ! हमारे और अपने वंश को याद रखते हुए आप क्यों मुझे छोड़ दूसरों से हस्ती-मङ्गल करवाते हैं ?”

“तात ! मुझे कहा गया है कि तू तीन वेद और हस्ती-सूत्र नहीं जानता है। इसीलिए मैं दूसरे ब्राह्मणों से करवाता हूँ।”

बोधिसत्त्व सिंह की तरह गरज कर बोला—“तो महाराज ! इतने ब्राह्मणों में जो एक भी ब्राह्मण मेरे साथ तीनों वेद तथा हस्ती-सूत्र का कुछ हिस्सा भी कह सकता हो, वह उठे। तीन वेदों और हस्ती-सूत्र के साथ हस्ती-मङ्गल करनेवाला मुझे छोड़ कोई दूसरा सारे जम्बूद्वीप में नहीं।”

एक ब्राह्मण भी प्रतिपक्षी बनकर खड़ा नहीं हो सका। बोधिसत्त्व ने अपने

कुलवंश को प्रतिष्ठित कर हस्ती-मङ्गल किया और बहुत धन ले अपने घर गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-(सत्त्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी, कोई अनागामी और कोई अर्हत्।

तब माँ महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराज थे। सुसीम राजा आनन्द था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र था। माणव तो मैं ही था।

१६४. गिज्ज जातक

“यं ननु गिज्जो योजनसत्तं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय माता-पिता का पोषण करने वाले एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा साम जातक^१ में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—‘भिक्षु! क्या तू सचमुच गृहस्थों का पोषण करता है?’ ‘हाँ! सचमुच’ कहने पर पूछा—‘वह तेरे क्या लगते हैं?’

“भन्ते! वे मेरे माता पिता हैं।”

“बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!” कह अन्य भिक्षुओं को शास्ता ने मना किया—“भिक्षुओ! इस भिक्षु पर क्रोध न करें। पुराने समय में पण्डितजन गुणों का ख्याल करके भी रिश्तेदारों का उपकार करते रहे हैं। इसका तो कर्तव्य है कि यह माता-पिता की सेवा करें” कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर पैदा हो माता पिता का पोषण करते थे।

^१ साम जातक (५४०)

एक बार बड़ा आँधी-पानी आया। गृध्र आँधी-पानी न सह सकने के कारण शीत से डरकर वाराणसी जा वहाँ चारदीवारी के पास, खाई के निकट सर्दी से काँपते हुए बैठे। वाराणसी-सेठ नगर से निकल कर नहाने जा रहा था। उसने उन गृध्रों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुँचवा दिया जहाँ वर्षा नहीं हो रही थी। फिर वहाँ आग जलवाई। मुर्दा गौ फेंकने के स्थान से गो-मांस मँगवा कर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया।

आँधी-पानी के बन्द होने पर गृध्र स्वस्थ-शरीर हो पर्वत को ही लौट गए। उन्होंने वहाँ इकट्ठे हो, इस प्रकार मन्त्रणा की। 'वाराणसी-सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अब से तुम में से जिस किसी को जो वस्त्र वा आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह वाराणसी-सेठ के घर में खुले आँगन में गिरा दे।' .

उस समय से गृध्र, आदमियों के धूप में सुखाने के लिए डाले हुए वस्त्राभरणों को, उन्हें लापरवाह देख, जिस तरह से चील मांस के टुकड़े को एकदम उठा ले जाती है, उसी तरह उठा ले जाकर, वाराणसी-सेठ के खुले आँगन में गिरा देते। सेठ ने यह मालूम करके कि वह वस्त्राभूषण गृध्र ला-लाकर डालते हैं, उन्हें पृथक एक ओर रखा।

राजा के पास खबर पहुँची कि गृध्र नगर उजाड़ रहे हैं। उसने कहा कि किसी एक गृध्र को पकड़ लो। सब माल मँगवा लूँगा। राजा ने जहाँ-तहाँ जाल और पाश फैलवाए। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र जाल में फँस गया। उसे पकड़कर राजा को दिखाने के लिए ले चले।

वाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय उन मनुष्यों को गृध्र पकड़ कर ले जाते हुए देखा। उसने सोचा कि यह इस गृध्र को कष्ट न दें, इसलिए साथ ही लिया। गृध्र को राजा के पास ले गए। राजा ने पूछा—

“तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?”

“महाराज! हाँ।”

“वह किसे दिए हैं?”

“वाराणसी-सेठ को।”

“क्यों?”

“हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए दिए।”

राजा ने उसे यह कहते हुए कि गृध्र तो सौ योजन की दूरी से लाश को देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यों नहीं देखा, (कह) पहली गाथा कही—

यं ननु गिज्जो योजनसतं कुणपानि अबेक्खति,
कस्मा जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्जसि ॥

[गृध्र तो सौ योजन दूरी पर से लाश को देख लेता है। तू पास से भी जाल और फंदे को क्यों नहीं देख सका?]

यं निपात मात्र है। नु, निपात ही है। गिज्जो योजनसतं (ग्रीध सौ योजन) दूर पर पड़ी हुई कुणपानि अबेक्खति देखता है। आसज्जापि, पास आकर भी, पहुँच कर भी, तू अपने लिए फैलाए जाल और फंदे के पास पहुँच कर भी उसे क्यों न बुज्जसि (यह) पूछा।

गृध्र ने उसकी बात सुन दूसरी गाथा कही—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसंख्ये,
अथ जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्जसि ॥

[जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर संकट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।]

पराभवो, विनाश। पोसो, प्राणी।

गृध्र की बात सुनकर राजा ने सेठ से पूछा—

“महासेठ! क्या यह बात सच है? क्या गृध्र तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाया है?”

“देव! सच है।”

“वह कहाँ है?”

“देव ! मैंने सब पृथक् रखे हैं। जो जिसका है, वह उसे दूंगा। इस गृध्र को छोड़ दें।”

गृध्र को छोड़वाकर महासेठ ने जो जिसका था, वह सब को दिलवाया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य (-सत्त्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर माता-पिता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। वाराणसी सेठ सारिपुत्र था। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र तो मैं ही था।

१६५. नकुल जातक

“सन्धि कृत्वा अभित्तेन . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो श्रेणियों के कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा उपरोक्त उरग जातक^१ की तरह ही है। इसमें शास्ता ने कहा— “भिक्षुओ ! इन दो महा-मन्त्रियों का न केवल अभी मैंने मेल कराया है। पहले भी मैंने इन दोनों का मेल कराया है।” यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएँ सीखीं। फिर गृहस्थी छोड़ ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रज्या ली। अभिञ्जा तथा समा-

^१ उरग जातक (१५४)।

पत्तियाँ प्राप्त कर फल-मूल चुग-चुग कर खाते हुए हिमालय-प्रदेश में रहने लगे ।

उनके चङ्क्रमण करने के स्थान के एक सिरे पर बाम्बी में एक नेवला और उसी के पास वृक्ष की खोह में एक सर्प रहता था । वह दोनों नेवला और साँप हमेशा आपस में झगड़ते रहते थे ।

बोधिसत्त्व ने उनको झगड़ने का दुष्परिणाम और मैत्री-भावना का लाभ समझा कर कहा कि कलह न करके मिलकर रहना चाहिए । इस प्रकार उन दोनों का मेल करा दिया ।

साँप के बाहर निकलने के समय नेवला चङ्क्रमण-भूमि के सिरे पर बाँबी के द्वार में से सिर निकाल मुंह खोल श्वास-प्रश्वास लेता हुआ लेट कर सो रहा । बोधिसत्त्व ने उसे इस प्रकार सोते हुए देख 'तुझे किस कारण से भय लगा है ?' पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

सन्धिं कत्वा अमिस्सेन अण्डजेन जलाबुज !

विवरिय दाढं सयसि कुतो तं भयमागतं ॥

[हे नकुल ! तू साँप से दोस्ती करके भी मुंह खोले पड़ा है । तरे भयभीत होने का क्या कारण है ?]

सन्धिं कत्वा मैत्री करके, अण्डजेन, अण्डे से पैदा हुए नाग से, जलाबुज ! नकुल को पुकारता है । वह गर्भ से पैदा होने के कारण जलाबुज कहलाया । विवरिय, खोलकर ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व के कहने पर नेवला बोला—आर्य ! शत्रु कों ओर से असावधान नहीं होना चाहिए । सशंकित ही रहना चाहिए । यह कहते हुए नेवले ने दूसरी गाथा कही—

संकेयेव अमित्तिस्मिं मित्तिस्मि पि न विस्ससे

अभया भयमुप्पन्नं अपि मूलं निकन्तति ॥

'जलाबुज (=जरायुज)

[शत्रु से सशंकित रहे। मित्र पर भी विश्वास न करे। अभय से जो भय पैदा होता है वह जड़ भी खोद देता है।]

अभया भयमुत्पन्नं यहाँ से तुझे भय नहीं है, ऐसा अभय (देने वाला) कौन है ? मित्र ! मित्र में भी विश्वास करने पर उससे जो भय उत्पन्न होता है वह जड़ भी खोद देता है। मित्र को सब छिद्र मालूम होते हैं, इसलिए वह जड़ खोदने का काम करता है।

बोधिसत्त्व ने कहा—“डर मत। मैंने ऐसा कर दिया है कि सर्प अब तुझसे द्वेष नहीं करेगा। तू अब से उससे सशंकित मत रह।” इस प्रकार उपदेश, दे, चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर बोधिसत्त्व ब्रह्मलोकगामी हुए। वे भी कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया। उस समय सर्प और नेवला यह दोनों प्रधान थे। तपस्वी तो मैं ही था।

१६६. उपसाळहक जातक

उपसाळहक नामानं, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उप-साळहक नाम के एक ब्राह्मण के बारे में जिसे श्मशान की शुद्धि का बहुत ख्याल था कही।

क. वर्तमान कथा

वह ब्राह्मण बड़ा धनवान था। लेकिन क्योंकि वह एक मिथ्या-मत का शिकार था, इसलिए वह पास के विहार में रहने वाले बुद्धों की भी सेवा नहीं करता था। हाँ, उसका पुत्र पण्डित था, ज्ञानी था।

उस ब्राह्मण ने बूढ़ा होने पर पुत्र को कहा—“तात ! मुझे किसी ऐसे श्मशान

में मत जलाना जहाँ कोई चाण्डाल जलाया गया हो। मुझे किसी ऐसे ही श्मशान में जलाना जहाँ पहले कहीं कोई न जलाया गया हो।”

“तात ! मैं नहीं जानता कि आपको मुझे कहाँ जलाना चाहिए। बहुत अच्छा हो, मुझे साथ ले जाकर आप बता दें कि मुझे तुम इस जगह जलाना।”

ब्राह्मण ने ‘तात ! अच्छा’ कह, और उसे ले जा नगर से निकल गृध्रकूट पर्वत पर चढ़ कहा—‘तात ! यहाँ पहले कोई चाण्डाल नहीं जलाया गया है। मुझे यहाँ जलाना।’

फिर वह पुत्र के साथ पर्वत से उतरने लगा।

शास्ता ने प्रातःकाल ही ऐसे लोगों का विचार करते हुए जिनकी उस दिन ज्ञानप्राप्ति की सम्भावना थी उन पिता-पुत्र की स्रोतापत्ति-मार्गरूढ़ होने की सम्भावना को देखा।

इसलिए मार्ग पकड़, एक शिकारी की तरह पर्वत की तराई में पहुँच, उनके पर्वत से उतरते समय उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे। उन्होंने उतरते समय शास्ता को देखा। शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—“ब्राह्मण ! कहां गए थे ?”

माणवक ने वह बात कही। शास्ता ने कहा—‘तो आओ, तुम्हारे पिता ने जो स्थान बताया है, वहाँ चलो।’ उन दोनों को साथ लेकर पर्वत के शिखर पर चढ़ पूछा—‘कौन सी जगह है ?’

माणवक ने कहा—“भन्ते ! इन तीनों चोटियों के बीच में बताया है।”

शास्ता बोले—‘माणवक ! तेरे पिता केवल अभी श्मशान की शुद्धि मानने वाले नहीं हैं, पहले भी श्मशान की शुद्धि मानने वाले रहे हैं। न केवल अभी इसने तुझे कहा है कि मुझे इस स्थान पर जलाना, पहले भी इसने इसी स्थान पर जलाने के लिए कहा है।’ इतना कह, माणवक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी राजगृह में यही उपसाह्वक ब्राह्मण था, यही इसका पुत्र था।

उस समय बोधिसत्त्व मगध देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, सब विद्याएँ सीख, ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो, अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-

ऋद्धि करते हुए हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिए गृध्रकूट पर पर्ण-कुटी में रहने लगे।

उस समय उस ब्राह्मण ने इसी तरह से पुत्र को कह, पुत्र के यह कहने पर कि 'तुम्हीं मुझे उस तरह का स्थान बता दो' यही स्थान बताया। फिर पुत्र के साथ उतरते हुए ब्राह्मण बोधिसत्त्व को देख उनके पास पहुँचा।

बोधिसत्त्व ने इसी तरह पूछ माणवक की बात सुन, कहा—'आ, तेरे पिता द्वारा बताए गए स्थान की परीक्षा करें कि वहाँ पहले कोई जलाया गया है, वा नहीं?' फिर उनके साथ पर्वत-शिखर पर चढ़, जब माणवक ने कहा कि यह तीनों चोटियों के बीच का स्थान ऐसा है जहाँ कोई नहीं जलाया गया, कहा—“माणवक! इसी स्थान पर जलाए गये का हिसाब नहीं है। तेरा पिता इसी राजगृह में ब्राह्मण कुल में ही पैदा होकर, उपसाळहक नाम से ही इन्हीं चोटियों के बीच में चौदह हजार बार जलाया गया है। पृथ्वी में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ कोई न कोई जलाया न गया हो, जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ सिर न कटे हों।” पूर्व-जन्मों का ज्ञान होने से, उवाड़ कर यह दो याथाएँ कहीं—

उपसाळहक नामानं सहस्सामि कतुइस
अस्मिं षसेसे बड्डाणि नत्थि लोके अनामतं॥
यन्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संयमो दमो
एतवरिया सेवन्ति एतं लोके अनामतं॥

[उपसाळहक नाम से ही चौदह हजार व्यक्ति इसी स्थान में जलाए गए। लोक में ऐसी जगह नहीं है जहाँ कोई न कोई मरा न हो।

जिसमें सत्य है, धर्म है, अहिंसा है, संयम है उसे आर्य-जन सेवन करते हैं। यही लोक में नहीं मरता है।]

अनामतं, मृत-स्थान को ही व्यवहार से अ-मृत-स्थान कहा गया है। उसका प्रतिषेध करते हुए अनामतं कहा है। अनमतं, भी पाठ है। लोक में ऐसी जगह नहीं है जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ कोई न मरा हो। यन्हि सच्चं च धम्मो च, जिस व्यक्ति में चार आर्य-सत्य, पूर्व-भाग-सत्य ज्ञान तथा लोकुत्तर धर्म है,

'मार्ग प्राप्ति से पहले का आर्य-सत्यों का ज्ञान।

अहिंसा, दूसरों को कष्ट न देना, संयमो, सदाचार, इनो इंद्रियों का दमन । जिस आदमी में यह गुण हैं, एतद्विरिया सेवन्ति बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावक आर्य-जन इस स्थान का सेवन करते हैं । इस प्रकार के आदमी के पास जाते हैं, उसकी संगति करते हैं । एतं लोके अनामर्तं, यही गुण लोक में अमृतत्व का साधन होने से अमृत कहलाते हैं ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व पिता तथा पुत्र को धर्मापदेश दे चारों ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए ।

शास्ता ने इस धर्मापदेश को ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए ।

उस समय के पिता पुत्र ही अब के पिता पुत्र हुए । तपस्वी तो मैं ही था ।

१६७. समिद्धि जातक

“अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु...” यह शास्ता ने राजगृह के तपोबाराम में विहार करते हुए समिद्धि स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन आयुष्मान् समिद्धि सारी रात योगाम्यास करके अरुणोदय के समय स्नान कर अपने स्वर्ण-वर्ण शरीर को सुखा रहे थे । उन्होंने अन्तरबासक पहन लिया था और उत्तरासंग उनके हाथ में था । वे सोने की सुन्दर प्रतिमा की तरह प्रतीत होते थे । उनका शरीर समृद्ध से ही उनका नाम समिद्धि था ।

उनके शरीर का सौन्दर्य देख एक देव-कन्या उन पर आसक्त हो गई और बोली—“भिक्षु ! तू तरुण है, तू युवा है, तेरे केश सुन्दर तथा काले हैं; तू श्रेष्ठ यौवन से युक्त है, तू मनोरम है, तू दर्शनीय है, तू मन को प्रसन्न करने वाला है । तेरे जैसे शरीर वाले को काम-भोगों को न भोग प्रव्रजित होने में क्या लाभ ? अभी तू

काम-भोगों को भोग। पीछे प्रब्रजित होकर श्रमण-धर्म का पालन करना।”

उसे स्थविर ने उत्तर दिया—“हे देव-कन्या ! मैं नहीं जानता कि मैं किस आयु में मरूँगा। मेरी मृत्यु मुझसे छिपी है। इसलिए तरुणाई की अवस्था में ही श्रमण-धर्म करके दुःख का अन्त करूँगा।”

स्थविर ने उसका स्वागत नहीं किया। वह वहीं अन्तर्धान हो गई।

स्थविर ने शास्ता के पास जाकर यह बात कही। शास्ता बोले—“समिद्धि ! न केवल तुझे ही अब देव-कन्या ने प्रलोभित किया है, पूर्व में भी देव-कन्याओं ने प्रब्रजितों को प्रलोभित किया है।”

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर सब विद्याओं में पारङ्गत हो, ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो, अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय-प्रदेश में एक तालाब के पास रहने लगे।

वह सारी रात योगाभ्यास करते रहे। अरुणोदय होने पर स्नान किया। फिर एक बल्कल-चीर पहन, एक हाथ में ले शरीर को सुखाने लगे। उसका सुन्दर शरीर देख एक देव-कन्या उस पर आसक्त हो, बोधिसत्त्व को ललचाती हुई यह पहली गाथा बोली—

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु! नहि भुत्वान भिक्खसि।

भुत्वान भिक्खु! भिक्खसु मा तं कालो उपच्छगा' ॥

[भिक्षु ! तू बिना काम-भोगों को भोगे भिक्षु बना है। काम-भोगों को भोग कर भिखारी नहीं बना है। भिक्षु ! काम-भोगों का भोग करके तू भिखारी बन। यह तेरा काम-भोगों को भोगने का समय न बीत जाए।]

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, भिक्षु ! तू तरुणाई में काम-भोगों को न भोग कर भिक्षाचार करता है। नहि भुत्वान भिक्खसि, क्या पाँच प्रकार के काम-भोगों

'देवता संयुक्त, संयुक्त निकाय।

को भोग कर ही भिखारी नहीं बनना चाहिए ? तू काम-भोगों को न भोग कर ही भिखारी बना है। भुत्वान भिक्षु ! भिक्षु ! अभी तरुणाई में काम-भोगों को भोग कर पीछे बृद्ध होने पर भिखारी बनना । मा तं कालो उपचक्षगा, यह काम-भोगों के उपभोग करने की आयु, यह तरुणाई यूँ ही न बिता ।

बोधिसत्त्व ने देव-कन्या की बात सुन अपना विचार प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

कालं बोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति ।

तस्मा अभुत्वा भिक्षामि, मायं कालो उपचक्षगा ॥

[मैं मृत्यु के समय को नहीं जानता । छिपा हुआ समय दिखाई नहीं देता । इसलिए बिना काम-भोगों का उपभोग किए ही भिक्षु बना हूँ । मेरा यह समय न बीत जाए ।]

कालं बोहं न जानामि, 'वो' केवल निपात है । मैं प्रथम आयु में मरूँगा, मध्यम-आयु में अथवा आखिरी में—अपना मरने का समय नहीं जानता हूँ ।

अत्यन्त पण्डित आदमी को भी—

जीवितं व्याधि कालो च देहनिक्खेपनं गति

पञ्चते जीवलोकस्मि अनिमित्ता न ज्ञायरे ॥

[जीव-लोक में इन पाँच बातों का पता नहीं लगता—(१) जीने की आयु, (२) रोग, (३) मृत्यु-समय, (४) शरीर के पतन का स्थान, (५) मरने पर क्या गति होगी ?]

छन्नो कालो न दिस्सति, इसलिए इस आयु में अथवा इस समय वा हेमन्त आदि ऋतुओं में से इस ऋतु में मुझे मरना होगा, यह मुझसे भी छिपा हुआ मृत्यु-समय दिखाई नहीं देता । अच्छी प्रकार ढका होने से प्रकट नहीं है । तस्मा अभुत्वा भिक्षामि इसलिए काम-भोगों को न भोग भिखारी बना हूँ । मा मं कालो उपचक्षगा, मेरा श्रमण-धर्म करने का समय बीत न जाए । इसलिए तरुणाई में ही प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म करता हूँ ।

देव-कन्या बोधिसत्त्व की बात सुन वहीं अन्तर्धान हो गई।
शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया।
उस समय देव-कन्या यही देव-कन्या थी। मैं ही उस समय तपस्वी था।

१६८. सकुणगिध जातक

“सैमो बलसा पतमानो” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अपने विचार के
स्रोतक सकुणोवाद् सूत्र^१ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर उपदेश दिया “भिक्षुओ !
जो तुम्हारे योग्य हो उसमें विचरो। जो तुम्हारा पैतृक विषय हो उसमें।”
यह संयुक्त निकाय के महावर्ग का सूत्र है^२। इसका उपदेश करते हुए कहा—
“तुम अपनी बात रहने दो। पूर्व समय में जानवर भी अपने पैतृक-विषय को छोड़
अयोग्य-स्थान में विचरने से शत्रुओं के हाथ में पड़ अपनी बुद्धि तथा उपाय-कौशल
से शत्रुओं के हाथ से मुक्त हुए।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व बटेर
होकर पैदा हुआ। वह हल चलाने की जगह पर ढेलों में रहता था।

एक दिन अपनी गोचर-भूमि को छोड़ दूसरे की गोचर-भूमि में जाने की
इच्छा से वह जंगल तक चला गया। उसे वहाँ घूमता देख, एक बाज्र ने यकायक
आकर पकड़ लिया। जब उसे बाज्र पकड़ कर ले जा रहा था, तो वह इस प्रकार

^१ महावर्ग।

^२ सतिपट्ठान संयुत, अम्बपालि वर्ग

रोने लगा—“हम अत्यन्त अभाग्यवान् हैं। हमारा पुण्य बहुत कम है। हम दूसरों के स्थान में चरने गए। यदि आज हम अपने पैतृक-स्थान में ही चरते तो यह बाज मेरे साथ युद्ध करने में समर्थ न होता।”

“लापक! तेरा स्वकीय पैतृक-स्थान कौन सा है?”

“यही जहाँ हल चलाने की जगह पर ढेले हैं।”

बाज ने अपने बल को ढीला कर उसे छोड़ दिया और कहा—‘हे बटेर तू जा! मैं तुझे वहाँ भी जाकर पकड़ लूंगा।’

बटेर ने वहाँ जा एक बड़े से ढेले पर चढ़ बाज को ललकारा—‘बाज! अब तू आ।’

बाज ने अपना बल संभाल, दो पंखों को उठा बटेर को एकदम धेर लिया। उस बटेर ने समझा कि बाज मेरे बहुत समीप आ गया, तो वह पलट कर उस ढेले के अन्दर चला गया।

बाज अपने जोर को न रोक सका। उसकी छाती ढेले से टकराई। इस प्रकार उसका कलेजा चूर चूर हो गया। आँखें निकल आईं। वह मर गया।

शास्ता ने यह अतीत-कथा सुना कहा—“भिक्षुओ! इस प्रकार जानवर भी अयोग्य स्थान पर चरने से शत्रु के हाथ में पड़ जाते हैं। योग्य स्थान में, अपने पैतृक-स्थान में चरते हुए शत्रुओं को जीत लेते हैं। इसलिए तुम भी अयोग्य स्थान में, जो तुम्हारा विषय नहीं है, मत विचरो। अयोग्य स्थान में, जो अपना विषय नहीं है, विचरने वाले पर भिक्षुओ! मार आक्रमण करता है। वह मार का निशाना बनता है। भिक्षुओ! भिक्षुओं के लिए अयोग्य स्थान, जो उनका विषय नहीं है, क्या है? जो यह पाँच प्रकार के कामोपभोग हैं। कौन से पाँच? आँख से देख जाने वाले (प्रिय) रूप, कान से सुने जाने वाले शब्द, नाक से सूंघी जाने वाली सुगन्धियाँ, जिह्वा से मज्जा लिए जाने वाले रस और शरीर से छुए जाने वाले स्पर्श—भिक्षुओ, यह भिक्षुओं के लिए अयोग्य-स्थान हैं। यह उनका विषय नहीं है।”

इतना कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में प्रथम गाथा कही—

सेनो बलसा पतमानो लापं गोचरठायिनं,^१

सहसा अज्झपत्तो मरणं तेनुपागमि॥

^१ अगोचर ठायिनं के स्थान पर गोचर ठायिनं श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

[बाज्र अपने बल को न रोक करके अपने योग्य-स्थान पर विचरने वाले पर झपटा । इसीसे वह मर गया ।]

बलसा पतमानो, बटेर को पकड़ने की इच्छा से जोर से गिरने वाला, गोचरठायिनं, अपने विषय (प्रदेश) से निकल जंगल तक चरने के लिए स्थित । अज्ज्ञपत्तो, पहुँचा । मरणं तेनुपागमि, इस कारण से मर गया ।

उसके मरने पर बटेर ने निकल कर, शत्रु की पीठ देख कर, स्फुट हो, उसकी छाती पर खड़े हो उल्लास पूर्वक दूसरी गाथा कही—

सोहं नयेन सम्पन्नो पेतिके गोचरेरतो
अपेतसत्तु मोदामि सम्पत्सं अत्यमत्तनो ॥

[मैं उपाय से अपने पैतृक-प्रदेश में चरता हुआ, अपनी उन्नति देखता हुआ प्रसन्न हूँ; क्योंकि मेरा शत्रु नहीं रहा है ।]

नयेन, उपाय से, अत्यमत्तनो, अपनी आरोग्य नामक उन्नति ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओं ने सोतापत्ति आदि फल प्राप्त किए ।

उस समय बाज्र देवदत्त था । बटेर तो मैं ही था ।

१६९. अरक जातक

“यो वे मेत्तेन चित्तेन” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मेत्तसूत्त^१ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा—“भिक्षुओ, मैत्री-भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है, का सेवन करने से, की भावना करने से, को बढ़ाने से, को जारी रखने से, का अभ्यास करने से, का अनुष्ठान करने से, का अच्छी तरह आरम्भ करने से ग्यारह लाभों की आशा करनी चाहिए । कौन से ग्यारह ? सुख पूर्वक सोता है, सुख से जागता है, बुरा स्वप्न नहीं देखता, मनुष्यों का प्रिय होता है, अ-मनुष्यों का प्रिय होता है, देवता रक्षा करते हैं, इस पर अग्नि, विष, वा शस्त्र का आक्रमण नहीं होता, चित्त जल्दी शान्त हो जाता है, मुख-वर्ण सुन्दर होता है, होश रखकर शरीर छोड़ता है तथा अधिक कुछ (निर्वाण-मार्ग) न प्राप्त कर सकने पर ब्रह्मलोकगामी अवश्य होता है । भिक्षुओ, मैत्री-भावना जो कि चित्त की विमुक्ति (का साधन) है, का सेवन करने से . . . इन ग्यारह लाभों की आशा करनी चाहिए ।” इन ग्यारह लाभों वाली मैत्री-भावना की प्रशंसा कर आगे कहा—“भिक्षुओ, भिक्षु को सभी प्राणियों के प्रति खास तौर पर, साधारण तौर पर, मैत्री-भावना करनी चाहिए । हितैषी का भी हितचिन्तक होना चाहिए, जो हितैषी न हो उसका भी हितचिन्तक होना चाहिए, जो मध्यस्थ-वृत्ति हो उसका भी हितचिन्तक होना चाहिए । इस प्रकार सभी प्राणियों के प्रति खास तौर पर, तथा साधारण तौर पर मैत्री-भावना करनी चाहिए । करुणा-भावना की भावना करनी चाहिए । मुदिता-भावना की भावना करनी चाहिए । उपेक्षा-

^१ अंगुत्तर निकाय, एकादसक निपात ।

भावना की भावना करनी चाहिए। इन चारों ब्रह्म-विहारों का अभ्यास करना ही चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से यदि मार्ग तथा फल की प्राप्ति न भी हो तो भी ब्रह्मलोकगामी होता है। पुराने समय में भी पंडित लोग सात वर्ष तक मैत्री-भावना करके सात संवत्-विवर्त कल्प तक ब्रह्मलोक में ही रहे।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में एक कल्प में बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ ऋषि-प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो चारों ब्रह्म-विहारों को प्राप्त कर अरक नाम के उपदेशक हुए। वह हिमालय प्रदेश में रहते थे। उनके बहुत अनुयायी थे। वे ऋषि-गणों को उपदेश देते हुए कहते—“प्रब्रजित को मैत्री-भावना का अभ्यास करना चाहिए। कृष्ण-भावना, मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना का अभ्यास करना चाहिए। मैत्री-पूर्ण चित्त अर्पणा-समाधि तथा ब्रह्मलोक-परायणता तक को प्राप्त कराता है।” इस प्रकार मैत्री-भावना की प्रशंसा करते हुए उन्होंने यह गाथा कही—

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्बलोकानुकम्पति
उद्धं अधो च तिरियं च अप्पमाणनं सब्बसो
अप्पमाणं हितं चित्तं परिपुण्णं सुभावितं
यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति

[जो अप्रमाण मैत्री चित्त से ऊपर-नीचे तथा तिर्यक् दिशा में सारे लोकों पर अनुकम्पा करता है, उसके प्रमाण रहित, परिपूर्ण अच्छी तरह से भावना किए गए मैत्री-चित्त के (फल) के आगे जो सीमित कर्म है उसका फल नहीं ठहरता।]

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्बलोकानुकम्पति, क्षत्रिय आदि में अथवा श्रमण-ब्राह्मण आदि में जो कोई अर्पणा-प्राप्त चित्त से सारे प्राणियों पर अनुकम्पा करता है, उद्धं पृथिवी से नेवसञ्जानासञ्जायतन ब्रह्मलोक तक अधो पृथ्वी से नीचे उस्सद नाम के महानरक तक, तिरियं, मनुष्य लोक में जितने चक्रवाल हैं उन सब में जितने प्राणी हैं वह सभी वैर-रहित हों, क्रोध-रहित हों, दुःख-रहित हों; इस प्रकार भावना

किए गए मैत्री-चित्त से । अप्यमाणेन अप्रमाण प्राणियों के कारण असीम आलम्बन होने से अप्रमाण । सबसौ सब तरह से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् इस प्रकार सब सुगति तथा दुर्गति में । अप्यमाणं हितं चित्तं सभी प्राणियों के प्रति मैत्री की असीम भावना । परिपुष्णं सम्पूर्णं सुभावितं अच्छी प्रकार उन्नत, इसका मतलब है अर्पणा-चित्त । यं पमाणं कतं कर्म जो यह अप्यमाण-अप्यमाणाारम्भण, परित्तं-अप्यमा-णाारम्भण तथा अप्यमाणं-परित्तारम्भण तीन प्रकार के आरम्भण पर पूर्ण अधिकार करते हुए उसे न बढ़ा कर जो सीमित कामाधिकार कर्म किया जाता है । न तं तत्रावसिस्सति वह सीमित (परित्त-) कर्म जो अप्रमाण मैत्री-चित्त रूपी रूपावचर कर्म है, उसके सामने नहीं ठहरता । जैसे बाढ़ के आने पर सीमित पानी उससे पृथक् नहीं रह सकता है, नहीं ठहरता है; वह बाढ़ में ही मिल जाता है । उसी प्रकार वह सीमित कर्म उस महान् कर्म के अन्दर, उस महान् कर्म में मिलकर, फल देने में असमर्थ हो रहता है, अपना फल नहीं दे सकता ।

वह महान् कर्म ही उसे ढक देता है; महान् कर्म ही फल देने वाला रहता है ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्यों को मैत्री-भावना का फल कह ध्यान में अवस्थित रह ब्रह्मलोक में पैदा हो सात संवर्त-विवर्त कल्प तक फिर इस लोक में नहीं आए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय ऋषि-गण बुद्ध-परिषद् थी । अरक नाम का उपदेशक तो मैं ही था ।

१७०. ककण्टक जातक

“नायं पुरे ओनमति . . .” यह ककण्टक जातक महाउम्मग जातक^१ में आएगी ।

^१ महाउम्मग जातक (५४६) ।

दूसरा परिच्छेद

३. कल्याणधम्म वर्ग

१७१. कल्याणधम्म जातक

“कल्याणधम्मो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बहरी सास के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रास्वती में एक कुटुम्बिक रहता था। वह श्रद्धावान् था। वह प्रसन्नचित्त था। वह त्रिशरण ग्रहण किए था और पंचशील भी।

एक दिन वह घी आदि बहुत सी औषधियाँ,^१ पुष्प, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र ले शास्ता से धर्म सुनने की इच्छा से जेतवन गया।

उसके वहाँ गए रहने पर सास खाद्य-भोजन ले लड़की को देखने की इच्छा से लड़की के घर आई। वह थोड़ी बहरी थी। जब लड़की के साथ खाना खा चुकी, तो भोजनोपरान्त आराम करते हुए उसने लड़की से पूछा—“अम्म ! क्या तेरा पति तुझसे प्रसन्न है ? क्या वह विवाद न करता हुआ, प्रेमपूर्वक रहता है ?”

“अम्म ! क्या कहना ! जैसा तुम्हारा जँवाई है, वैसा शीवलान् तथा सदाचारी प्रब्रजित भी मिलना दुर्लभ है।”

उस उपासिका ने लड़की की सारी बात पर भली प्रकार ध्यान न दे केवल प्रब्रजित शब्द को सुन चिल्लाना शुरू किया—‘अम्म ! तेरा स्वामी प्रब्रजित क्यों हो गया ?’

उसकी बात सुन सारे घर वाले रोने लगे—‘हमारे घर का मालिक प्रब्रजित हो गया।’

^१ घी, मक्खन आदि औषध रूप से भिक्षु अपराज्ण में भी ग्रहण कर सकता है।

उनका रोना सुन दरवाजे से गुजरने वाले लोग पूछने लगे कि रो क्यों रहे हैं ? “इस घर का मालिक प्रब्रजित हो गया है।”

वह कुटुम्बिक भी बुद्ध का उपदेश सुन, विहार से निकल नगर में प्रविष्ट हुआ। एक आदमी ने उसे रास्ते में ही देख कर कहा—‘सौम्य ! तरे घर पर तरे लड़के स्त्री आदि सम्बन्धी रो रहे हैं कि तू प्रब्रजित हो गया।’

उसने सोचा—मैं प्रब्रजित नहीं हूँ, तो भी मुझे लोग प्रब्रजित समझ रहे हैं। मेरी प्रशंसा होने लगी है। इसे गँवाना नहीं चाहिए। आज ही मुझे प्रब्रज्या ग्रहण करनी चाहिए।

वह वहीं से वापिस लौट कर शास्ता के पास गया। शास्ता ने पूछा—“उपासक ! अभी तू बुद्ध की सेवा में आकर लौटा, और तुरन्त फिर आया है ?”

उसने वह बात कह निवेदन किया—“भन्ते ! मेरी प्रशंसा होने लगी है। इस शुभ-नाम को गँवाना नहीं चाहिए। इसलिए मैं प्रब्रजित होने की इच्छा से आया हूँ।”

प्रब्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त कर वह अच्छी तरह से जीवन व्यतीत करता हुआ थोड़ी ही देर में अर्हत् हुआ।

यह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हुई। एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बात-चीत चलाई—“आयुष्मानो ! अमुक कुटुम्बिक ने सोचा कि उसकी जो प्रशंसा होने लगी है, इस शुभ-नाम का लोप नहीं होना चाहिए। वह प्रब्रजित होकर अर्हत् हो गया।”

शास्ताने आकर पूछा—“भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर, शास्ताने कहा—“भिक्षुओ, पुराने समय में पण्डित जन भी यही सोचकर कि जो प्रशंसा होने लगे उस शुभ-नाम का लोप नहीं होने देना चाहिए प्रब्रजित ही हुए।”

इतना कह शास्ताने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व एक सेठ के घर में पैदा हुए। बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का पद मिला। वह एक दिन घर से निकल राजा की सेवा में पहुँचा।

उसकी सास अपनी लड़की को देखने की इच्छा से उसके घर आई। वह थोड़ी बहरी थी। आगे की सब कथा 'वर्तमान-कथा' सवृक्ष ही है।

उसे राजा की सेवा करके अपने घर लौटते समय एक आदमी ने देख कर कहा—'तुम्हारे घर पर सब लोग रो पीट रहे हैं कि तुम प्रब्रजित हो गए।'।

बोधिसत्त्व ने सोचा कि जो प्रशंसा होने लगी है, उस शुभ-नाम को नष्ट नहीं होने देना चाहिए। वह वहीं से लौट कर राजा के पास पहुँचे। राजा ने पूछा—

“महासेठ ! अभी जाकर अभी फिर क्यों लौट आए ?”

“देव ! घर के लोग मुझे अप्रब्रजित को ही प्रब्रजित हुआ समझ कर रोते पीटते हैं। यह जो मुझे शुभ-नाम मिला है, इसको लुप्त होने देना ठीक नहीं। मैं प्रब्रजित होऊँगा। मुझे प्रब्रजित होने की आज्ञा दें।”

सेठ ने इस भाव को प्रकट करने वाली दो गाथाएँ कहीं—

कल्याणधम्मोति यदा जनिन्द
लोके समञ्जसा अनुपापुणाति,
तस्मा न हीक्षेय नरो सपञ्जो
हिरिषापि सन्तो धुरमादियन्ति ॥
सायं सवञ्जसा इध मज्ज पत्ता
कल्याणधम्मोति जनिन्द लोके,
ताहं तमेवञ्चं इध पम्बजिस्सं
नहि मदिञ्च छन्दो इध कामभोगे ॥

[हे राजन् ! जब लोक में किसी की कीर्ति होती है, उसे शुभ-नाम मिलता है, तो बुद्धिमान् आदमी को उसे छोड़ना नहीं चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष लज्जा से भी (प्रब्रज्या-) धुर को प्राप्त करते हैं।

हे राजन् ! आज मुझे वह कीर्ति उत्पन्न हुई है, शुभ-नाम मिला है। उसे देखकर मैं प्रब्रजित होऊँगा। मुझे काम-भोगों की इच्छा नहीं रही है।]

कल्याणधम्मो, सुन्दर धर्म, समञ्जस अनुपापुणाति जब शीलवान्, सदाचारी, वा प्रब्रजित इस प्रकार की कीर्ति तथा लोक-व्यवहार आरम्भ हो जाता है। तस्मा

न हीमेष, उस श्रमणत्व (की व्याप्ति) से न हटे। हिरियापि सन्तो धुरन्तदियन्ति महाराज ! सत्पुरुष अपने अन्दर से उत्पन्न लज्जा से, बाह्य-निन्दा से पैदा हुए भय से भी इस प्रब्रज्या को ग्रहण करते हैं।

इध मज्ज, यहाँ मेरे द्वारा आज ताहं समेषलं मैं उस श्रमणत्व को गुण-रूप से देखता हुआ नहि मत्थि छन्दो मुझ में इच्छा नहीं है, इध कामभोगे, इस दुनिया में वस्तु-कामना वा कामेच्छा।

• बोधिसत्त्व ने यह कह राजा से प्रब्रज्या की आज्ञा ली। फिर हिमालय-प्रदेश में जा ऋषि-प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। बाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१७२. ददर जातक

“कोनु सहेन महता...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय अनेक बहुश्रुत भिक्षुसंघ के बीच में ऐसे पाठ करते थे जैसे मनोशिला के नीचे तरुण सिंह गरज रहा हो, अथवा आकाश से गंगा उतारी जा रही हो।

कोकालिक भिक्षु अपने तुच्छ-ज्ञान का विचार न कर जिस समय भिक्षु पाठ करते थे, स्वयं भी पाठ करने की इच्छा से भिक्षुओं के बीच में जाकर संघ का नाम ले कहता कि भिक्षु मुझे पाठ करने नहीं देते, यदि पाठ करने दें तो मैं भी पाठ करूँ। इस प्रकार वह जहाँ तहाँ कहता हुआ घूमता था।

उसकी वह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने सोचा इसकी परीक्षा करें। इस विचार से उन्होंने कहा—“आयुष्मान ! कोकालिक ! आज संघ के सम्मुख पाठ कर ।” उसने अपना बल न पहिचान कर स्वीकार कर लिया कि मैं आज संघ के सम्मुख पाठ करूँगा ।

तब उसने अपने को अनुकूल पड़ने वाला यवागु पिया । भोजन किया । अनुकूल दाल ही ली ।

सूर्यास्त होने पर धर्म सुनने के समय सूचना देने पर भिक्षुसंघ एकत्र हुआ । वह कुरण्ड-पुष्प सदृश काषाय-वस्त्र पहन और कनेर पुष्प सदृश लालू चीवर ओढ़ संघ के बीच जा, स्थविरों को प्रणाम कर, अलंकृत रत्न-मण्डप के बीच बिछे हुए श्रेष्ठ आसन पर चढ़, चित्रित पंखा हाथ में ले पाठ करने के लिए बैठा । उसी समय उसके शरीर से पसीना बहने लगा । वह लज्जित हो गया । वह पूर्व-गाथा^१ का प्रथम पाद भर कह सका । उसके आगे उसे नहीं सूझा । वह काँपता हुआ आसन से उतर आया । लज्जित हो संघ के बीच से गुजर वह अपने परिवेण में चला गया ।

किसी दूसरे ही बहुश्रुत भिक्षु ने पाठ किया । उम समय से भिक्षु जान गए कि वह अज्ञानी है ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई—“आयुष्मानो ! पहले कोकालिक के ज्ञान की तुच्छता अज्ञात थी । अब इसने अपने ही बोलकर उसे प्रकट कर दिया ।”

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” “अमुक बातचीत” कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक ने बोलकर अपने आपको प्रकट किया है, पहले भी बोलकर प्रकट किया है ।”

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही ।

^१ धर्मोपदेश देने के लिए जिस गाथा का आधार लिया जाता है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश में सिंह के रूप में पैदा हुए। वह बहुत से सिंहों के राजा बने।

अनेक सिंहों के साथ वह रजत-गुफा में रहते थे। उसके पास ही एक गुफा में एक सियार रहता था। एक दिन वर्षा हो चुकने पर सब सिंह सिंहराज के गुफा-द्वार पर इकट्ठे हो सिंह-नम्रद करते हुए सिंह-क्रीड़ा करने लगे।

उनके इस प्रकार दहाड़ते हुए क्रीड़ा करने के समय वह सियार भी चिल्लाया। सिंहों ने जब उसकी आवाज सुनी तो वह यह सोचकर लज्जा के मारे चुप हो गए कि यह सियार भी हमारे साथ आवाज लगा रहा है। उनके चुप हो जाने पर बोधिसत्त्व के पुत्र सिंह-बच्चे ने पूछा—“तात ! यह सिंह दहाड़ दहाड़ कर सिंह-क्रीड़ा करते हुए किसी एक की आवाज सुनकर लज्जा से चुप हो गए। यह कौन है जो अपने शब्द से अपने को प्रकट कर रहा है ?” इस प्रकार पिता से पूछते हुए सिंह-बच्चे ने पहली गाथा कही—

को नृ सहेन महता अभिनाबेति बदरं

किं सीहा न पटिनन्दन्ति को नामेतो मिगाधिभु॥

[हे मृगराज ! यह कौन है जो बड़े शब्द से दहर पर्वत को गुंजा रहा है ? यह कौन है जिसके कारण सिंह नहीं बोलते हैं ?]

अभिनाबेति बदरं, दहर पर्वत को गुंजा रहा है। मिगाधिभु पिता को सम्बोधन करता है। यहाँ यह अर्थ है। मिगाधिभु ! मृग-ज्येष्ठ ! सिंहराज ! मैं तुझे पूछता हूँ कि यह कौन है ?

उसकी बात सुन पिता ने दूसरी गाथा कही—

अषमो मिगजातानं सिगालो तात वस्सति

जातिमस्म जिगुच्छन्ता तुण्हो सीहा समच्छरे ॥

[तात ! पशुओं में जो सबसे नीच सियार है वही चिल्लाता है। सिंह उसकी जाति से घृणा करने के कारण चुप हो गए हैं।]

समच्छरे, सं केवल उपसर्ग है। अच्छा समझते हैं अर्थ है। तुण्ही, बैठते हैं, चुप होकर बैठते हैं, यही अर्थ है। पुस्तकों में समच्छरे लिखते हैं।

शास्ता बोले—“भिक्षुओ! कोकालिक ने केवल अभी अपनी वाणी से अपने को प्रकट नहीं किया, पहले भी किया ही है।”

यह धर्म-देशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया।

उस समय का सियार कोकालिक था। सिंह-बच्चा राहुल। सिंह-राज मैं ही था।

१७३. मक्कट जातक

“तात! माणवको एसो...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा प्रकीर्णक परिच्छेद की उद्दालक जातक^१ में आएगी। उस समय शास्ता ने ‘भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नहीं है, इसने पहले भी जब यह बन्दर था अग्नि के लिए ढोंग किया है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व किसी काशी-ग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा विद्या सीख घर बसाया।

उसकी ब्राह्मणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जब लड़का दौड़ने भागने लग गया, तो वह मर गई।

^१ उद्दालक जातक (४८७)

बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य करके सोचा, अब मुझे घर में रहने से क्या लाभ ? मैं पुत्र को लेकर प्रव्रजित हो जाऊँ। रोते हुए रिश्तेदारों तथा मित्र-समूह को छोड़ वह पुत्र को ले हिमालय में प्रविष्ट हुआ। वहाँ ऋषियों के ढंग से प्रव्रजित हो फल-मूल खाता हुआ रहने लगा।

एक दिन वर्षा-ऋतु में जब वर्षा हुई, तो वह सूखी लकड़ियाँ जलाकर आग तापते हुए एक तस्ते पर लेटा था। इसका पुत्र तपस्वी-कुमार भी इसके पैरों को दबाता हुआ बैठा था। एक जंगली बन्दर ने शीत से पीड़ित हो उस पर्ण-कुटी में आग देख कर सोचा—“यदि मैं यहाँ प्रवेश करूँगा, तो ‘बन्दर है, बन्दर है’ कह मुझे पीट कर निकाल देंगे। मुझे आग तापना न मिलेगा। एक उपाय है। मैं तपस्वी-वेश बना ढोंग करके प्रवेश करूँ।”

उसने एक मृत तपस्वी के बल्कल वस्त्र पहन लिए। फिर खारी ले, पर्ण-कुटी के द्वार पर एक ताड़-वृक्ष के नीचे सिकुड़ कर बैठा।

तपस्वी-कुमार ने उसे देख, बन्दर न समझ सोचा—शीत से पीड़ित एक बूढ़ा तपस्वी आग तापने आया होगा। तपस्वी को कह कर इसे पर्ण-कुटी में ला आग तपवाऊँ।

उसने पिता को सम्बोधन कर यह पहली गाथा कही—

तात ! माणवको एसो तालमूलं अपस्सितो,
अगारकञ्चिबं अत्थि हन्व देमस्स गारकं ॥

[तात ! यह एक माणवक ताड़-वृक्ष को आश्रय करके बैठा है। यह घर है। हन्त ! हम इसे गृह दें।]

माणवको एसो, प्राणी वाची शब्द है। तात ! यह एक माणवक प्राणी है। ‘एक तपस्वी है’ यही प्रकट करता है। तालमूलं अपस्सितो, ताड़ का वृक्ष के आश्रय है। अगारकञ्चिबं अत्थि, यह हमारा प्रव्रजितों का घर है। पर्ण-कुटी को लेकर कहा है। हन्व, निश्चय के अर्थ में निपात है। देमस्सगारकं, इसे एक कोने में रहने के लिए घर दें।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर पर्ण-कुटी के दरवाजे पर खड़े हो देख-कर पहचान लिया कि वह बन्दर है। उन्होंने कहा—‘तात ! मनुष्यों का मुँह

ऐसा नहीं होता । यह बन्दर है । इसे यहाँ नहीं बुलाना चाहिए ।' यह कहते हुए दूसरी गाथा कही—

मा खो तं तात ! पक्कोसि ब्रूसेय्य नो अगारकं
नेताबिसं मुखं होति ब्राह्मणस्स मुसीलिनो ॥

[तात ! इसे मत बुला । यह हमारे घर को खराब कर देगा । सदाचारी ब्राह्मण का ऐसा मुंह नहीं होता ।]

ब्रूसेय्य नो अगारकं, यह यहाँ प्रवेश पाकर इस कठिनाई से बनाई हुई पर्ण-कुटी को या तो आग से जलाकर अथवा मल त्याग कर खराब कर दे सकता है । नेताबिसं शीलवान् ब्राह्मण का ऐसा मुंह नहीं होता ।

'यह बन्दर है' कह बोधिसत्त्व ने एक जलती हुई लकड़ी फेंकी कि यहाँ क्यों बैठा है ? इस प्रकार उसे भगा दिया । बन्दर बल्कल वस्त्र छोड़ वृक्ष पर चढ़ बन में चला गया । बोधिसत्त्व चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय बन्दर यह ढोंगी भिक्षु था । तपस्वी-कुमार राहुल । तपस्वी तो मैं ही था ।

१७४. दुग्धभियमवकट जातक

“अदम्ह ते वारि बहूतरुपं . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु देवदत्त के अकृतज्ञता तथा मित्र-द्रोही भाव की चर्चा कर रहे थे । शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ तथा मित्र-द्रोही है । पहले भी वह ऐसा ही था ।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मादत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व किसी काशीग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर घर बसाया । उस समय काशी राष्ट्र की एक बड़ी चलने वाली सड़क पर एक गहरा कुआँ था । जानवरों की उस तक पहुँच नहीं हो सकती थी । इसलिए रास्ता चलने वाले पुण्यार्थी मनुष्य, लम्बी रस्ती बँधे बर्तन से पानी निकाल एक द्रोणी में भर जानवरों को पानी पिलाते थे ।

उसके चारों तरफ भारी जंगल था । उसमें बहुत से बन्दर रहते थे ।

दो तीन दिन उस मार्ग से आदमियों का आना जाना न हुआ । जानवरों को पानी न मिला । एक प्यासा बन्दर पानी खोजता हुआ कुएँ के आस पास घूमता था । बोधिसत्त्व किसी काम से उस रास्ते से आए । जब वह वहाँ जा, पानी निकाल, पी, हाथ पाँव धो कर खड़े थे, उन्होंने उस बन्दर को देखा । यह जानकर कि वह प्यासा है उन्होंने पानी निकाल द्रोणी में डाल कर उसे दिया । पानी देकर वह विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे लेटे ।

बन्दर ने पानी पी, पास बैठ, नकल बनाते हुए, बोधिसत्त्व को डराया। बोधिसत्त्व ने उसकी वह करतूत देख 'अरे दुष्ट बन्दर ! मैंने तुझे प्यास से कष्ट पाते हुए को पानी दिया। तू मुझे चिढ़ाता है ? अहो ! पापी पर किया गया उपकार निरर्थक होता है' कहते हुए पहली गाथा कही—

अदम्ह ते वारि बहुतरुणं
धम्माभितत्तस्स पिपासितस्स
सो दानि पीत्वान किंकिं करोसि,
असंगमो पापजनेन सेय्यो ॥

[धूप से तप्त तुझ प्यासे को हमने बहुत सा पानी दिया। अब तू पानी पी कर चिढ़ाने के लिए 'किंकिं' आवाज करता है। पापी से दूर रहना ही अच्छा है।]

सो दानि पीत्वान किंकिं करोसि, सो अब तू मेरा दिया हुआ पानी पीकर (मुझे) चिढ़ाता हुआ 'किंकिं' आवाज करता है। असंगमो पापजनेन सेय्यो, पापी जन के साथ मिलना अच्छा नहीं। दूर रहना ही अच्छा है।

उसे सुन वह मित्र-द्रोही बन्दर बोला—क्या तू समझता है कि यह इतने से ही समाप्त हो गया ? अब तेरे सिर पर पाखाना करके जाऊँगा। यह कहते हुए उसने दूसरी गाथा कही।

को ते सुतो वा बिट्ठो वा सीलवा नाम मक्कटो
इदानीं खो तं ऊहच्च एसा अस्माक धम्मता ॥

[तूने कौन सा बन्दर सदाचारी है, सुना वा देखा ? अभी मैं तुझें मेला करके (जाऊँगा) यही हमारा स्वभाव है।]

संक्षिप्तार्थ यह है—हे ब्राह्मण मक्कटो कृतज्ञ, सदाचारी सीलवा नाम है यह तूने कहाँ सुतो वा बिट्ठो वा ? इदानीं खो मैं तं ऊहच्च तेरे सिर पर पाखाना करके चला जाऊँगा। अस्माकं हि बन्दरों का एसा धम्मता, यह जातीय स्वभाव है कि हमें उपकार करने वाले के सिर पर मल त्यागना चाहिए।

इसे सुन बोधिसत्त्व उठकर चलने लगे । बन्दर उसी क्षण उछल, शाखा पर बैठ, लकड़ी छोड़ने की तरह उसके सिर पर पाखाना गिरा, चिल्लाता हुआ बन में घुस गया । बोधिसत्त्व नहा कर चले गए ।

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी मेरे किए उपकार को नहीं जानता था ।

इतना कह, यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया ।

उस समय बन्दर देवदत्त था । ब्राह्मण मैं ही था ।

१७५. आदिच्छुपट्टान जातक

“सबसे मु किर भूतेसु . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही । वर्तमान-कथा उक्त ही की तरह है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर तक्षशिला जा, विद्या सीख, ऋषियों की प्रब्रज्या के ढंग पर प्रब्रजित हुए । अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, अनेक अनुयायियों के साथ उनके गण-शास्ता बन, हिमालय में रहने लगे ।

वह वहाँ चिरकाल तक रह कर, निमक-खटाई खाने के लिए पर्वत से उतर, प्रत्यन्त-देश में किसी ग्राम के पास एक पर्णकुटी में रहने लगे ।

जिस समय ऋषि-गण भिक्षा के लिए जाते, एक लोभी बन्दर आश्रम पर आकर पर्ण-कुटी का फूस उजाड़ देता, पानी के घड़ों में से पानी गिरा देता । कुण्डियाँ तोड़ देता और अग्नि-शाला में पाखाना कर देता ।

तपस्वियों ने वर्षा भर रह कर सोचा कि अब हेमन्त ऋतु आ गई है । फल

फूल बहुत हो गए हैं। (प्रदेश) रमणीय है। वहीं चलकर रहें। उन्होंने प्रत्यन्त गाँव के वासियों से विदा माँगी।

मनुष्य बोले—भन्ते ! हम कल आश्रम पर भिक्षा लेकर आएँगे। उसे ग्रहण कर जाएँ।

दूसरे दिन वे बहुत सारा खाद्य-भोज्य लेकर वहाँ पहुँचे।

उसे देख बन्दर ने सोचा मैं भी ढोंग करके मनुष्यों को प्रसन्न कर अपने लिए खाद्य-भोज्य मँगवाऊँ।

वह तप करते तपस्वी की तरह हो, सदाचारी की तरह हो, तपस्वियों से कुछ ही दूर पर सूर्य को नमस्कार करता हुआ खड़ा हुआ। मनुष्यों ने उसे देख सोचा कि सदाचारियों के पास रहने वाले सदाचारी होते हैं और पहली गाथा कही—

सब्बेसु किर भूतेसु सन्ति सीलसमाहिता,
पस्स सात्तामिणं जम्मं आदिच्चमुपतिट्ठति ॥

[सभी प्राणियों में सदाचारी होते हैं। सूर्य की पूजा करते हुए नीच बन्दर को देखो।]

सन्ति सीलसमाहिता, शील से युक्त हैं, शीलवान, तथा समाहित वा एकाग्रचित्त हैं, यह भी अर्थ है। जम्म नीच; आदिच्चमुपतिट्ठति, सूर्य को नमस्कार करते हुए ठहरा है।

इस प्रकार उन मनुष्यों को उसकी प्रशंसा करते देख बोधिसत्त्व ने कहा कि तुम इस लोभी बन्दर के आचरण को न जानकर अयोग्य-जगह में ही श्रद्धावान् हुए हो, और यह दूसरी गाथा कही—

नास्स सीलं बिजानाथ अनञ्जाय पसंसथ
अग्निहत्तञ्च ऊहन्तं द्वे च भिक्षा कमण्डलु ॥

[तुम इसके स्वभाव को नहीं जानते। बिना जाने ही प्रशंसा कर रहे हो। इसने अग्नि-शाला खराब कर दी और दो कमण्डल तोड़ डाले।]

अनञ्जाय बिना जाने । ऊहन्तं इस दुष्ट बन्दर द्वारा मैली की गई । कमण्डलु कुण्डी, द्वे च कुण्डियाँ उसके द्वारा भिन्ना । इस प्रकार उसके दुर्गुण कहे ।

मनुष्यों ने बन्दर का ढोंग जान, ढेले और लाठियाँ ले, पीट कर भगा दिया । तब ऋषिगण को भिक्षा दी । ऋषि भी हिमालय प्रदेश में ही जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्मलोकगामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय बन्दर यह ढोंगी था । ऋषि-गण बुद्ध-परिषद थी । गण-शास्ता तो मैं ही था ।

१७६ . कलायमुद्दिठ जातक

“बालो बतायं कुमसाखगोचरो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल नरेश के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक बार वर्षा-ऋतु के समय कोशल नरेश के इलाक़े में बग़ावत हुई । वहाँ जो योधा थे, उन्होंने दो तीन युद्ध किए । जब वह शत्रुओं को न जीत सके तो उन्होंने राजा के पास सन्देश भेजा ।

राजा वर्षा-ऋतु में असमय में ही निकल पड़ा । जेतवन के समीप पड़ाव डलवाकर उसने सोचा—मैं असमय में निकल पड़ा हूँ । कन्दराएँ और दरारें, पानी से भरी हैं । मार्ग दुर्गम है । मैं शास्ता के पास जाता हूँ । वे मुझे पूछेंगे ‘महाराज ! कहाँ जाते हो ?’ मैं उन्हें यह बात कहूँगा । शास्ता मुझे केवल पार-लौकिक उपदेश ही नहीं देते हैं, वह मुझे इस लोक में भी लाभ की बात बताते हैं । इसलिए यदि जाने से मेरी हानि होती होगी तो वह कह देंगे, ‘महाराज ! यह असमय है ।’ यदि लाभ होगा, तो वह चुप रहेंगे ।

वह जेतवन जा शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा ।

शास्ता ने पूछा—महाराज ! दिन चढ़े तुम कैसे आए ?

“भन्ते ! मैं इलाक़े को शान्त करने के लिए निकला हूँ । तुम्हें प्रणाम करके जाने की इच्छा से आया हूँ ।”

शास्ता ने कहा—‘महाराज ! पूर्व समय में भी सेना के तैयार होने पर, पण्डितों का कहना मान राजा लोग असमय में सेना को चढ़ा कर नहीं ले गए ।’
फिर उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक सर्वार्थ-अमात्य थे । राजा के इलाक़े के बगावत करने पर प्रत्यन्त के योधाओं ने सन्देशा भेजा ।

राजा वर्षा-ऋतु में निकला । उसका पड़ाव उद्यान में लगा । बोधिसत्त्व राजा के पास खड़े थे । उस समय घोड़ों के लिए मटर भिगो ला कर द्रोणियों में डाल रहे थे । उद्यान के बन्दरों में से एक बन्दर वृक्ष से उतरा । उसने वहाँ से मटर लिए, मुँह भरा, हाथ भी भरे और कूद कर वृक्ष पर चढ़, खाना शुरू किया ।

खाते समय उसके हाथ से एक मटर भूमि पर गिर पड़ा । वह हाथ में और मुँह में जितने मटर थे उन्हें छोड़ वृक्ष से उतर उस मटर को ढूँढ़ने लगा । जब उसे वह मटर नहीं दिखाई दिया तो वह फिर वृक्ष पर चढ़ा और वहाँ जुए में हजार हार गए की तरह चिन्ता करता हुआ रोनी-शक्ल बना वृक्ष की शाखा पर बैठा ।

राजा ने बन्दर की करतूत देख बोधिसत्त्व को सम्बोधन कर पूछा—‘मित्र ! बन्दर ने यह क्या किया ?, बोधिसत्त्व ने कहा—‘महाराज ! बहुत की ओर ध्यान न दे, थोड़े की ओर ध्यान देने वाले दुर्बुद्धि मूर्ख-जन ऐसा करते ही हैं ।’ इतना कह, पहली गाथा कही—

बालो वतायं बुमसाखगोचरो
पञ्जा जनिन्द ! नयिमस्स बिज्जति,
कळायमुट्ठं अबकिरिय केवलं
एकं कळायं पतितं गबेसति ॥

[राजन् ! यह वृक्षों की शाखाओं पर घूमने वाला बन्दर मूर्ख है। इसे प्रज्ञा नहीं है। यह मटर की सारी मुट्ठी को बखेर कर गिरे हुए एक मटर को खोजता है।]

बुमसाखगोचरो बन्दर, वह वृक्षों की शाखा पर रहता है, इसके रहने की जगह इसके घूमने की जगह है, इसलिए वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला कहलाया। जनिन्द, राजा को सम्बोधन करता है, परम ऐश्वर्यशाली होने से, राजा जनता के इन्द्र हैं; इसीलिए जनिन्द। कळायमुट्टि मटर की मुट्ठी, काले मांस की मुट्ठी भी कहते हैं। अबकिरिय बखेर कर केवल सब गवेसति भूमि पर गिरे एक ही मटर को खोजता है।

ऐसा कहकर बोधिसत्त्व ने फिर राजा को सम्बोधन कर दूसरी गाथा कही—

एवमेव मयं राज! ये चञ्जे अतिलोभिनो
अप्पेन बह्जिज्झ्याम कळायेनेव वानरो ॥

[इसी प्रकार हे राजन् ! हम और दूसरे अत्यन्त लोभी लोग थोड़े के लिए बहुत की हानि कर देते हैं; जैसे बन्दर ने एक मटर के लिए ।]

संक्षिप्तार्थ इस प्रकार है—महाराज ! एवमेव मयं और अञ्जे च सभी लोभी जन अप्पेन बह्जुं जिज्झ्याम हम ही अब इस वर्षा काल में, इस अयोग्य समय में रास्त पर चलकर थोड़े से लाभ के लिए बहुत सी हानि करेंगे। कळायेनेव वानरो जैसे इस बन्दर ने एक मटर को ढूँढ़ते हुए, उस एक मटर के कारण सब मटर गँवाए, उसी प्रकार हम भी असमय में जब कन्दराएँ और दरारें पानी से भरी हैं, चलने पर थोड़े से लाभ के लिए बहुत से हाथी घोड़ों तथा सेना को गँवाएँगे। इसलिए असमय में जाना उचित नहीं। यूँ राजा को उपदेश दिया।

राजा उसकी बात सुन वहीं से लौट कर बाराणसी नगर में वापिस चला गया। चोरों ने सुना कि राजा चोरों को दबाने के लिए नगर से निकल पड़ा है, वे इलाक़े से भाग गए। वर्तमान समय में भी चोरों ने जब यह सुना कि कोशल राजा निकल पड़ा है, वह भाग गए।

राजा ने शास्ता का धर्मोपदेश सुना । फिर आसन से उठ, प्रणाम और प्रदक्षिणा कर श्रावस्ती को चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय राजा आनन्द था । पण्डित अमात्य तो मैं ही था ।

१७७. तिन्दुक जातक

“धनुहस्थकलापेहि . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

महाबोधि जातक^१ तथा उम्मग जातक^२ (में आए वर्णन) की तरह शास्ता ने अपनी प्रज्ञा की प्रशंसा सुन कर कहा—“भिक्षुओ ! तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् नहीं हैं, पहले भी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल रहे हैं ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक बानर के रूप में पैदा हो अस्ती हजार बन्दरों की मण्डली के साथ हिमालय में रहने लगे ।

वहीं पास ही एक प्रत्यन्त-गाँव था, जो कभी बसता था, कभी उजड़ जाता था । उस गाँव के बीच में शाखा-पत्तों तथा मधुर फलों से युक्त एक तिन्दुक-वृक्ष था । जब गाँव बसा न होता, तो बानर आकर उस वृक्ष के फल खाते ।

^१ महाबोधि जातक (५२८) ।

^२ उम्मग जातक (५४६) ।

अगली बार फलों का मौसम आने पर वह गाँव बसा हुआ था। उसके चारों ओर बाँसों का घेरा था और एक फाटक था। उस वृक्ष की शाखाएँ भी फलों के भार से झुकी हुई थीं।

बानर सोचने लगे—हम पहले अमुक गाँव में तिन्दुक फल खाते थे। इस बार वह वृक्ष फला है वा नहीं? उस गाँव में बस्ती है वा नहीं? यह सोच उन्होंने एक बानर को समाचार मालूम करने के लिए भेजा।

उसने लौट कर कहा कि वृक्ष फला है और गाँव में घनी बस्ती है। बानरों ने जब सुना कि वृक्ष फला है तो उन्हें बड़ी खुशी हुई कि मीठे मीठे फल खाने को मिलेंगे। बहुत सारे बानरों ने बानरेश को जाकर कहा। बानरेश ने पूछा—“गाँव बसा है वा नहीं?”

“देव! बसा है।”

“तो (लौट) जाओ। मनुष्य बहुत मायावी होते हैं।”

“देव! आधी रात के समय जब मनुष्य सो जायेंगे, तब खाएँगे।”

बहुत से बानरों ने जाकर बानरेश को मना लिया। फिर हिमालय से उतर, उस ग्राम से थोड़ी ही दूर पर वह मनुष्यों के सोने के समय की प्रतीक्षा करते हुए एक बड़े भारी पत्थर पर सो रहे। आधी रात को जब मनुष्य सो रहे थे उन्होंने वृक्ष पर चढ़ फल खाए।

एक आदमी शौच के लिए घर से निकला। उसने गाँव के बीच जाने पर बानरों को देखा तो और आदमियों को खबर दी। बहुत से आदमी तीर कमान तैयार कर, नाना प्रकार के आयुध ले, ढेले-डण्डे आदि के साथ वृक्ष को घेर कर खड़े हो गए कि रात बीतने पर बानरों को पकड़ेंगे।

अस्सी हजार बानरों ने मनुष्यों को देखा तो उन्हें डर लगा कि अब मरे। उन्होंने सोचा कि बानरेश को छोड़ उन्हें और कहीं शरण न मिलेगी। वे उसके पास गए और पहली गाया कही—

धनुहृत्यकलापेहिनेत्तिसवरधारिहि ।

समन्ता परिकिष्णम्हा कथं मोक्षो भविस्सति ॥

[तीर कमान हाथ में लिए तथा उत्तम खड्ग धारण किए हुए आदमियों से हम घिरे हैं। कैसे मुक्त होंगे ?]

धनुहृत्यकलापेहि, धनुष और (तीर-) समूह जिनके हाथ में हैं, धनुष और तीर-समूह लेकर जो खड़े हैं। नेतिसवरधारिहि, नेतिस कहते हैं खड्ग को; उत्तम खड्गधारियों से, परिकिण्णम्हा, हम घिरे हुए हैं, कथं, किस उपाय से हमारा मोक्ष होगा ।

उनकी बात सुन बानरेश ने कहा—“डरो मत । मनुष्यों को बहुत काम रहते हैं। अभी आधी रात है। यह हमें मारने के लिए खड़े हैं। इस (हमारे मारने के) काम में विघ्न करने वाला दूसरा काम पैदा कर दें।” इस प्रकार उन्हें आश्वासन देते हुए दूसरी गाथा कही—

अप्येव बहुकिञ्चानं अत्थो जायेथ कोचि नं
अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्नं खज्जतञ्जेव तिन्दुकं ॥

[इन बहुत काम वालों को कोई न कोई काम पैदा हो सकता है। वृक्ष पर अभी फल लगे हैं। तिन्दुक को खाओ ।]

नं निपातमात्र है। अप्येव बहुकिञ्चानं, मनुष्यों को दूसरा कोचि अत्थो उत्पन्न हो सकता है। अत्थि रुक्खस्स अच्छिन्नं इन वृक्षों पर से तोड़ने उतारने की बहुत जगह है। अत्थोखज्जतञ्जेतिन्दुकं तिन्दुक फल खाओ। तुम्हें जितनी जरूरत है उतने फल खाओ। हमें मारने का समय आया तब देखेंगे।

इस प्रकार महासत्त्व ने सब को दिलासा दिया। यह आश्वासन न मिलता तो डर था कि सभी हृदय फट कर मर जाते।

महासत्त्व ने इस प्रकार बनारों को दिलासा दे कहा—सभी बानरों को इकट्ठा करो। इकट्ठे होने पर बोधिसत्त्व के सेनक नाम भानजे को न देखकर वह बोले कि सेनक नहीं आया। यदि सेनक नहीं आया तो मत डरो। वह अब कुछ अच्छा काम करेगा।

बानरों के आने के समय सेनक सोता रह गया था। पीछे उठ कर जब उसने किसी को न देखा तो वह भी बानरों के पीछे पीछे आया। रास्ते में उसने आदमियों को देखकर सोचा कि बानरों के लिए खतरा पैदा हो गया। उसने गाँव के किनारे

पर अग्नि जला कर कातती हुई एक स्त्री के पास जा, खेत पर जाने वाले लड़के की तरह उससे मशाल ले, जिधर की हवा थी उधर खड़े हो गाँव में आग लगा दी।

आदमी बानरों को छोड़ कर आग बुझाने दौड़ पड़े। बानर भागे, लेकिन भागते हुए सेनक के लिए एक एक फल तोड़ कर लेते गए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय भानजा सेनक महानाम शाक्य था : बानर समूह बुद्ध-परिषद् थी। बानरेश तो मैं ही था।

१७८. कच्छप जातक

“जनित्तम्मे भवित्तम्मे . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ऐसे आदमी के बारे में कही जो प्लेग से मुक्त हो गया था।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुल में प्लेग^१ पैदा हुई। माता पिता ने पुत्र से कहा—तात ! इस घर में मत रह। दीवार तोड़ कर भाग जा। जहाँ कहीं जाकर जान बचा, पीछे आना। इस जगह पर बहुत सा खजाना गड़ा है। उसे निकाल, परिवार के साथ सुख से रहना।

पुत्र उनकी बात स्वीकार कर दीवार तोड़ भाग गया। फिर अपना रोग शांत होने पर उसने आकर खजाना निकाल घर बसाया।

एक दिन वह धी तेल आदि तथा वस्त्र-ओढ़न आदि लिवाकर जेतवन गया ; वह शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने उसका कुशल-क्षेम जान कर पूछा—‘सुना तुम्हारे घर में प्लेग रोग घुस गया था। तुम उससे कैसे बचे?’

उसने अपना हाल कहा। शास्ता बोले—“उपासक ! पूर्व समय में भी

^१ अहिवातकरोग।

ऐसे लोगों ने जो खतरा आने पर आसक्ति के कारण अपने घर को छोड़कर अन्यत्र नहीं चले गए जान गँवाई। आसक्ति न कर दूसरी जगह जाने वालों ने जान बचा ली।”

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गाँव में कुम्हार का काम करके स्त्री-बच्चों को पालते थे।

उस समय बाराणसी की महानदी के साथ मिला हुआ एक बड़ा तालाब था। अधिक पानी होने पर वह नदी के साथ मिल जाता। कम होने पर पृथक् हो जाता। मछलियाँ और कछुवे पहले से जान जाते थे कि इस वर्ष अच्छी वर्षा होगी, इस वर्ष कम होगी। एक वर्ष तालाब में पैदा हुई मछलियाँ और कछुवे यह जानकर कि इस वर्ष अच्छी वर्षा न होगी, जिस समय अभी तालाब और नदी एक थे, उसी समय उस तालाब से निकल नदी में चले गए।

एक कछुवे ने कहा—यहाँ मैं पैदा हुआ हूँ। यहीं बड़ा हुआ हूँ। यहीं मेरे माता-पिता रहे हैं। मैं इसे नहीं छोड़ सकता। वह नदी में नहीं गया।

गरमी पड़ने पर उस तालाब का पानी सूख गया। वह कछुआ जिस जगह बोधिसत्त्व मिट्टी खोदते थे, उसी जगह ज़मीन खोदकर उसमें घुसा था। बोधिसत्त्व ने मिट्टी लेने के लिए वहाँ जाकर बड़ी कुदाल से ज़मीन खोदते हुए उसकी पीठ तोड़ कर, मिट्टी के ढेर की ही तरह उसे भी कुदाल से उठाकर स्थल पर गिराया।

उसने वेदना से पीड़ित हो कहा कि मैं घर के प्रति आसक्ति को त्याग, उसे छोड़ न सका, इसलिए विनाश को प्राप्त हुआ। रोते हुए यह गाथाएँ कही—

जनिस्सम्मे भवित्तम्मे इति पङ्के अवत्सर्गि
तं मं पंको अज्झभवि यथा दुब्बलकं तथा
तं तं वदामि भग्गव ! सुणोहि वचनं मम ॥
गामे वा यदि वा रज्जे सुलं यत्राधिगच्छति
तं जनित्तं भवित्तं च पुरिसस्स पजानतो
यम्हि जीवे तम्हि गच्छे न निकेतहतो सिया ॥

[मैं यहाँ पैदा हुआ। मैं इसी में बढ़ा। यह सोच कर मैं पंक में ही रहा। लेकिन मुझ दुर्बल को जैसे पंक ने परास्त किया, हे कुम्हार ! मैं वैसे वैसे तुझे कहता हूँ सुन—

ग्राम या अरण्य में जहाँ आदमी को सुख प्राप्त हो, वही बुद्धिमान आदमी की जन्म-भूमि है, वही पलने की जगह है। जहाँ रह कर जी सकता हो, वहीं जाए। घर में रहकर मरने वाला न बने।]

जनित्तन्मे भवित्तन्मे यह मेरे पैदा होने की जगह है, यह बढ़ने की जगह है। इति पंके अवस्सियि इस हेतु से मैंने इस कीचड़ में आश्रय लिया, पड़ा रहा, रहने लगा। अज्ज्ञभवि, पराभूत हुआ, विनाश को प्राप्त हुआ। भगव कुम्हार को बुलाता है। कुम्हारों का यही नाम गोत्र तथा प्रज्ञप्ति है—यह भाग्यवान् ।^१ सुखं, शारीरिक तथा मानसिक आनन्द। तं जनित्तं भवित्तञ्च वह पैदा होने का तथा पलने का स्थान है। जानित्तं भावित्तं दीर्घाकार भी पाठ है, अर्थ वही है। पजानतो, जो अर्थ अनर्थ तथा कारण अकारण को जानता है। न निकेतहतो सिया, घर में आसक्ति कर, किसी दूसरी जगह न जा, घर में मरा। इस प्रकार मरण रूपी दुःख को प्राप्त करने वाला न बने।

इस प्रकार वह बोधिसत्त्व से बोलते ही बोलते मर गया। बोधिसत्त्व ने उसे ले ग्राम के सारे निवासियों को इकट्ठा कर उन्हें उपदेश देते हुए कहा—“इस कछुए को देखते हैं ? जब दूसरी मछलियाँ तथा कछुए महानदी में चले गए तो यह अपने निवास-स्थान में आसक्ति न छोड़ सकने के कारण उनके साथ नहीं गया। जहाँ से मिट्टी ली जाती है, वहीं पड़ रहा। मैंने मिट्टी खोदते हुए, महाकुदाल से इसकी पीठ तोड़कर इस मिट्टी के ढेले की तरह इसे जमीन पर गिरा दिया। इसे अपना किया याद आया। दो गाथाएँ कह यह रोता हुआ मर गया। इस प्रकार यह अपने निवास-स्थान के प्रति आसक्ति कर मर गया। तुम भी इस कछुए की तरह न होना। अब से तृष्णा के बश होकर उपयोग करते हुए यह मत समझो कि यह रूप मेरा है, यह शब्द मेरा है, यह सुगन्ध मेरी है, यह रस मेरा है,

^१ आजकल कुम्हारों को कहीं कहीं ‘प्रजापति’ कहते हैं।

यह स्पर्शितव्य मेरा है, यह पुत्र मेरा है, यह लड़की मेरी है, यह दास-दासियाँ तथा यह सोना मेरा है। यह प्राणी अकेला ही तीनों भवों में चक्कर काटता है।”

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने बुद्ध-लीला से जनता को उपदेश दिया। वह उपदेश सारे जम्बूद्वीप में फैल कर सात सौ वर्ष^१ रहा। जनता बोधिसत्त्व के उपदेश के अनुसार चल दान आदि पुण्य कर्म कर स्वर्ग को गई।

बोधिसत्त्व ने भी उसी तरह पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग का रास्ता लिया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य-) सत्थों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्थों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह कुल-पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय काश्यप आनन्द था। कुम्हार तो मैं ही था।

१७९. सतधम्म जातक

“तच्च अप्पं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय इक्कीस तरह की अनुचित जीविका के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय भिक्षु इक्कीस तरह के ऐसे कर्मों से जीविका चलाते थे जैसे वैद्यक, दूत बनकर जाना, सन्देश लेकर जाना, पैदल दौड़ कर (सन्देश ले) जाना, भिक्षा (=पिण्ड) के बदले में भिक्षा लेना आदि।

शास्ता ने उन भिक्षुओं का उस उस तरह जीविका चलाना जान सोचा—
“इस समय भिक्षु अनुचित ढंग से जीविका चलाते हैं। इस प्रकार से जीविका चलाने से वे यक्ष-योनि से वा प्रेत-योनि से मुक्त न होंगे। जुए के बल होकर पैदा होंगे। नरक में जन्म ग्रहण करेंगे। इनके हित के लिए, सुख के लिए अपने विचारा-नुकूल तथा प्रतिभा के अनुसार एक धर्मोपदेश देना चाहिए।”

^१ फोसबोल की प्रति में ‘वस्स सहस्सानि’ पाठ है।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को इकट्ठा करवा उपदेश दिया—“भिक्षुओ ! इक्कीस तरह के अनुचित तरीकों से जीविका नहीं चलानी चाहिए। अनुचित तरीकों से जो भिक्षा मिलती है, वह लोहे के तप्त गोले के समान है, हलाहल विष की तरह है। अनुचित तरीकों से जीविका चलाने की बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध तथा श्रावकों सभी ने निन्दा की है, निरुद्ध बताया है। अनुचित तरीकों से जिस भिक्षा की प्राप्ति होती है, उसे खाने वाले के मुँह पर मुस्कराहट नहीं आ सकती, उसका मन प्रसन्न नहीं हो सकता। अनुचित तरीके से जो भिक्षा मिलती है, वह मेरे मत में चाण्डाल के जूठे भोजन की तरह है। उसका खाना ऐसा ही है, जैसे सतधम्म माणवक ने चाण्डाल का जूठा भोजन खाया।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने चाण्डाल का जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर किसी काम से उन्होंने रास्ते में खाने के लिए चावल और भात की पोटली ले रास्ता पकड़ा।

उसी समय में वाराणसी में एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्च गोत्र के महाधनवान् कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से रास्ते में खाने के लिए चावल वा भात की पोटली बिना लिए ही निकल पड़ा।

उन दोनों की महामार्ग में भेंट हुई। माणवक ने बोधिसत्त्व से पूछा—“तेरी जात क्या है?” उसने कहा—“मैं चाण्डाल हूँ” और माणवक से पूछा—“तेरी जात क्या है?” “मैं उदीच्च ब्राह्मण हूँ।” “अच्छा, तो चलें” कह दोनों ने रास्ता पकड़ा।

बोधिसत्त्व ने प्रातःकाल का भोजन करने के समय एक ऐसी जगह जहाँ पानी की सुविधा थी, बैठ हाथ धो भात की पोटली खोल माणवक से पूछा—

“भात खाओगे?”

“रे चाण्डाल ! मुझे भात की जरूरत नहीं है।”

बोधिसत्त्व बोला “अच्छा।” फिर भात की पोटली को जूठा न कर, अपनी आवश्यकता भर भात एक दूसरे पत्ते में डाल, पोटली को बाँध कर एक ओर रख दिया। भोजन कर, पानी पी, हाथ पैर धो, चावल तथा शेष भात ले माणवक से कहा “माणवक, चलें”, और रास्ता पकड़ा।

वे सारा दिन चलकर, पानी की सुविधा की एक जगह में नहा कर बाहर निकले ।

बोधिसत्त्व ने आराम की जगह बैठ भात की पोटली खोल माणवक को बिना पूछे ही खाना आरम्भ किया । दिन भर चलने से माणवक थक गया था और उसे खूब भूख लगी थी । वह बोधिसत्त्व की ओर देखने लगा—“यदि यह भात देगा, तो खा लूंगा ।” लेकिन बोधिसत्त्व बिना कुछ बोले खाते रहे ।

माणवक ने सोचा—यह चाण्डाल बिना मुझे पूछे ही सब खाए जा रहा है । इससे जबरदस्ती छीनकर भी, ऊपर का जूठा भात हटा कर शेष खाना चाहिए । उसने वैसा कर जूठा भात खाया ।

भात खाने के ही साथ माणवक के मन में बड़े जोर का पश्चात्ताप पैदा हुआ । वह सोचने लगा—“मैंने अपनी जाति, गोत्र तथा प्रदेश के योग्य कार्य नहीं किया । मैंने चाण्डाल का जूठा भात खा लिया ।” उसी समय उसके मुँह से रक्त सहित भात बाहर आया ।

इस बड़े शोक से शोकातुर हो कि मैंने ज़रा सी बात के लिए अनुचित कर्म किया, उसने रोते हुए यह पहली गाथा कही—

तञ्च अप्पञ्च उच्छिट्ठं तञ्च किञ्छेन नो अदा,
सोहं ब्राह्मणजातिको यं भुत्तं तम्पि उगगतं ॥

[वह थोड़ा सा था । जूठा था; और वह भी उसने कठिनाई से दिया । ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया । जो खाया सो भी निकल गया ।]

जो मैंने खाया वह अप्पं उच्छिट्ठं तं च नो, उस चाण्डाल ने अपनी इच्छा से नहीं बल्कि जबरदस्ती करने पर किञ्छेन, कठिनाई से दिया । सोहं परिशुद्ध ब्राह्मण जाति का होकर (खाया) उसीसे मैंने यं भुत्तं तम्पि रक्त के साथ उगगतं ।

इस प्रकार माणवक रो पीट कर ‘मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब मैं जी कर क्या करूँगा’ सोच जंगल में चला गया । वहाँ सबसे छिपे रह कर अनाथ-मरण मरा ।

शास्ता ने यह पूर्व की बात कह उपदेश दिया—“भिक्षुओ, जैसे सतधम्म

माणवक को उस चाण्डाल का जूठा भात खाने से, अपने लिए अनुचित भात खाया रहने से, न हँसी आई न मन प्रसन्न हो सका, इसी प्रकार जो इस शासन में प्रव्रजित हो अनुचित ढंग से जीविका चलाता है और उससे प्राप्त पदार्थों का उपभोग करता है, बुद्ध द्वारा निन्दित, बुद्ध द्वारा निकृष्ट कही गई जीविका से जीविका चलाने के कारण उसके मुँह पर न हँसी आती है, न प्रसन्नता ।

शास्ता ने सम्बुद्धत्व प्राप्त किए रहने पर यह दूसरी गाथा कही—

एवं धम्मं निरंक्त्वा यो अधम्मेन जीवति
सतधम्मोव लाभेन लद्धेनपि न नन्दति ॥

[इस प्रकार धर्म छोड़ जो अधर्म से जीता है । वह सतधर्म की तरह लाभ होने पर भी प्रसन्न नहीं होता ।]

धम्म जीविका को शुद्ध रखने के सदाचार का धर्म । निरंक्त्वा, बाहर करके, छोड़ कर । अधम्मेन, इक्कीस तरह के अनुचित तरीकों से जीविका खोजना । सतधम्मो उसका नाम है । न नन्दति जैसे सतधम्म माणवक चाण्डाल का जूठा मुझे मिला सोच उस लाभ से प्रसन्न नहीं होता । इसी प्रकार इस शासन में प्रव्रजित कुलपुत्र अनुचित ढंग से प्राप्त लाभ का परिभोग करता हुआ प्रसन्न नहीं होता, सन्तुष्ट नहीं होता । निन्दित जीविका से जीता हूँ सोच दुःखी ही होता है । इस-लिए अनुचित ढंग से जीविका खोजने वाले के लिए यही अच्छा है कि वह सतधम्म माणवक की तरह जंगल में जा अनाथ की तरह मर जाए ।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मोपदेश कर चार आर्य (सत्थ्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्थ्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओं को स्रोतापत्ति आदि फल की प्राप्ति हुई ।

उस समय मैं ही चाण्डालपुत्र था ।

१८०. दुद्धद जातक

“दुद्धं ददमानं...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सामूहिक दान के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कुटुम्ब-पुत्र परस्पर मित्रों ने चन्दा इकट्ठा करके सभी आवश्यक वस्तुओं से युक्त दान की तैयारी कर भिक्षुसंघ को जिसके प्रमुख बुद्ध थे, निमन्त्रित कर एक सप्ताह तक महादान दिया^१। सातवें दिन सब आवश्यक वस्तुएँ दीं।

उनमें जो मण्डली का प्रधान था उसने शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर कहा—‘भन्ते ! इस दान में अधिक देने वाले भी सम्मिलित हैं, थोड़ा देने वाले भी सम्मिलित हैं। यह दान सभी के लिए महान् फलदायी हो।’ यह कह कर उसने दान दिया।

शास्ता बोले—‘उपासको ! भिक्षुसंघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं दान देते हुए जो तुमने इस प्रकार दान दिया, यह महान् कर्म है। पुराने समय में पण्डितों ने भी दान देते हुए इसी प्रकार दिया।’

उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा वहाँ सब विद्याएँ सीखीं। फिर घर छोड़, ऋषियों के ढंग से प्रब्रज्या ग्रहण कर, मण्डली का नेता बन हिमालय

^१ सात दिन तक नियमित भोजन कराया।

प्रदेश में चिरकाल तक रहे। निमक-खटाई के लिए बस्ती में घूमते हुए, आकर वाराणसी पहुँचे। वहाँ राजोद्यान में रह कर अगले दिन परिषद सहित दरवाजे पर के गाँव में भिक्षाटन किया। मनुष्यों ने भिक्षा दी। अगले दिन वाराणसी में भिक्षाटन किया। आदिमियों ने श्रद्धावान् हो भिक्षा दे, टोली बना कर चन्दा इकट्ठा कर दान की तैयारी की और ऋषिगण को महादान दिया। दान की समाप्ति पर टोली के नेता ने इसी प्रकार कह कर दातव्य-वस्तुओं का परित्याग किया।

बोधिसत्त्व ने, “आयुष्मानो ! श्रद्धा होने पर दान कभी थोड़ा नहीं होता” कह दानानुमोदन करते हुए यह गाथा कही—

बुद्धं ददमानानं दुष्करं कम्मकुब्बतं ।
असन्तो नानुकुब्बन्ति सतं धम्मो बुरघ्नयो ॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति ।
असन्तो निरयं यन्ति सन्तो सम्मपरायणा ॥

[कठिनाई से जो दिया जा सके देने वाले, कठिनाई से जो किया जा सके करने वाले सत्पुरुषों का धर्म दुर्ज्ञेय है; असत्पुरुष इसे नहीं करते। इसलिए सत्पुरुषों और असत्पुरुषों की गति भिन्न भिन्न होती है। सत्पुरुष स्वर्ग जाने वाले होते हैं और असत्पुरुष नरक में।]

बुद्धं लोभ आदि से युक्त अपण्डित-जन दान नहीं दे सकते। इसलिए दान को कठिनाई से दिया जा सकने योग्य कहा। उसे ददमानानं। दुष्करं कम्मकुब्बतं उसी दान कर्म को सब नहीं कर सकते, इसलिए उस दुष्कर कर्म को करने वाले। बुरघ्नयो फल-सम्बन्ध की दृष्टि से दुर्ज्ञेय—इस प्रकार के दान का इस प्रकार का फल होता है, यह जानना कठिन है; और भी बुरघ्नयो कठिनाई से प्राप्य; मूर्ख जन दान देकर भी दान का फल नहीं प्राप्त कर सकते। नाना होति इतो गति यहाँ से च्युत होकर परलोक जाने वालों को नाना प्रकार से जन्म ग्रहण करने होते हैं। असन्तो निरयं यन्ति, मूर्ख दुर्शील लोग दान न दे, तथा सदाचार की रक्षा न कर नरक को जाते हैं। सन्तो सम्मपरायणा, पण्डित लोग दान देकर, शील की रक्षा

कर, उपोसथ-व्रत रख, तीनों प्रकार के सुचरित्र^१ पूरे कर स्वर्गगामी होते हैं। महान् स्वर्ग-सुख सम्पत्ति का आनन्द लूटते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व (दान-) अनुमोदन कर वर्षा के चार महीने वहीं रहे। वर्षा-ऋतु समाप्त होने पर ध्यान-प्राप्त कर ध्यान-युक्त ही ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋषि-गण बुद्धपरिषद थी। मण्डली का नेता तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

४. असदिस वर्ग

१८१. असदिस जातक

“धनुग्गहो असदिसो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाभिनिक्रमण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन घर्म सभा में बैठे हुए भिक्षु भगवान् की नैष्कर्म्यपारमी की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?” “अमुक बातचीत” “भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अभी अभिनिक्रमण नहीं किया, पहले भी श्वेत-छत्र छोड़कर अभिनिक्रमण किया है।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी रानी की कोख में जन्म ग्रहण किया।

सकुशल पैदा हुए उस राजकुमार का, नामग्रहण के दिन नाम रक्खा गया असदिसकुमार। जिस समय वह दौड़ भाग कर चलने फिरने लगा; एक दूसरे पुण्यवान् प्राणी ने देवी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सकुशल पैदा हुए उस कुमार का नाम रक्खा गया ब्रह्मदत्त कुमार।

उन दोनों में से बोधिसत्त्व सोलह वर्ष की आयु होने पर तक्षशिला जा, वहाँ प्रसिद्ध आचार्य्य से तीनों वेद तथा अट्टारह विद्याएँ सीख, तीर चलाने में बेजोड़ हो, वाराणसी लौटे। राजा ने मरते समय कहा, असदिसकुमार को राजा तथा ब्रह्मदत्त कुमार को उपराजा बनाना। इतना कह वह मर गया।

उसके मर जाने पर जब बोधिसत्त्व को राज्य दिया जाने लगा, उसने मना कर दिया कि मुझे राज्य की जरूरत नहीं है। ब्रह्मदत्त का राज्य भिषेक कर दिया गया। बोधिसत्त्व ने कहा कि मुझे यश नहीं चाहिए; और किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं की। छोटे भाई के राज्य करते हुए वह जैसे साधारण ढंग से रहते थे, उसी तरह रहते रहे।

राजा के नौकर चाकरों ने राजा को यह कह कर कि बोधिसत्त्व राज्य चाहते हैं, राजा का मन बोधिसत्त्व की ओर से फेर दिया। उसने उनका विश्वास कर, चित्त में सन्देह पैदा हो जाने के कारण मनुष्यों को आज्ञा दी कि मेरे भाई को पकड़ो।

बोधिसत्त्व के किसी हितचिन्तक ने उन्हें इसकी सूचना दी। छोटे भाई से क्रुद्ध हो बोधिसत्त्व किसी दूसरे राष्ट्र में चले गए। वहाँ राजद्वार पर पहुँच कहलवाया कि एक धनुर्धारी आया है। राजा ने पूछा कि क्या बेंतन लेगा? उत्तर दिया— एक वर्ष के लिए एक लाख। राजा ने आज्ञा दी ‘अच्छा आ जाए।’ उसके समीप आकर खड़े होने पर पूछा—

“तू धनुर्धारी है?”

“देव! हाँ।”

“अच्छा! मेरी सेवा में रह।”

तब से वह राजा की सेवा में रहने लगे। उन्हें जो बेंतन मिलता था, उसे देख पुराने धनुर्धारी बहुत क्रुद्ध हुए कि इसे बहुत मिलता है।

एक दिन राजा उद्यान गया। वहाँ मञ्जल-शिला की शैया के पास कृनात तनवा आम के वृक्ष के नीचे महाशय्या पर लेटा। ऊपर देखते हुए उसने एक आम देखा। उसे लगा कि इस आम को चढ़ कर नहीं तोड़ा जा सकता। इसलिए उसने धनुर्धारियों को बुलवा कर पूछा—“क्या इस आम को तीर मार कर गिरा सकते हो?”

‘देव! यह हमारे लिए कठिन कार्य नहीं है। लेकिन! देव! हमारा कौशल तो आपने पहले अनेक बार देखा है। जो नया धनुर्धर आया है, वह हमारी अपेक्षा बहुत पाता है। उससे गिरवाएँ।’

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—“तात! इसे गिरा सकते हो?”

“महाराज! हाँ! थोड़ी जगह मिलने पर गिरा सकूँगा।”

“जगह कहाँ चाहिए ?”

“जहाँ आपकी शय्या है।”

राजा ने शय्या हटवा कर जगह करा दी। बोधिसत्त्व हाथ में धनुष नहीं रखते थे। वह कपड़ों के नीचे छिपाए रहते थे। इसलिए कहा कि क्रनात चाहिए। राजा ने कहा ‘अच्छा’ और क्रनात मँगवा कर तनवा दी। बोधिसत्त्व क्रनात के अन्दर चले गए। वहाँ पहुँच उन्होंने ऊपर पहना श्वेत वस्त्र उतार एक लाल कपड़ा पहना। फिर कच्छ पहन, थैली से जुड़ने-वाली तलवार निकाल, बाईं ओर बाँधी। तब सुनहरी वस्त्र पहन, कमर पर तरकश बाँध, जुड़ने वाला, मेढ़े की सींग का बना बड़ा धनुष ले, मूँगे के रंग की डोरी बाँध, सिर पर पगड़ी धारण की। तेज तीर को नाखून पर धुमाते हुए वह क्रनात के दो हिस्से कर ऐसे निकला मानों पृथ्वी फाड़ कर अलंकृत नाग-कुमार बाहर आया हो। फिर बोधिसत्त्व तीर चलाने की जगह पर जा, तीर को तैयार कर राजा से बोले—

“महाराज ! इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ, अथवा नीचे जाने वाले तीर से ?”

“तात ! मैंने ऊपर जाने वाले तीर से बहुत गिराते देखा है, लेकिन नीचे जाने वाले तीर से गिराते नहीं देखा है। नीचे जाने वाले तीर से गिराएँ।”

“महाराज ! यह तीर दूर तक जाएगा। चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर स्वयं नीचे उतरेगा। जब तक यह नीचे उतरे, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया।

बोधिसत्त्व ने फिर कहा—“महाराज ! यह तीर ऊपर जाता हुआ आम की डंठल को ठीक बीच में से छेदता हुआ ऊपर जाएगा; और नीचे उतरता हुआ केशाग्रमात्र भी इधर उधर न हो, निश्चित जगह पर लग, आम को लेकर नीचे उतरेगा। महाराज ! देखें।”

तब बोधिसत्त्व ने जोर लगा कर तीर छोड़ा। आम की डंठल को बीच में से छेदता हुआ तीर ऊपर चढ़ा। बोधिसत्त्व ने यह समझ कि अब वह तीर चातुर्महाराजिक भवन पहुँचा होगा, पहले तीर से भी अधिक जोर से एक दूसरा तीर चलाया। वह तीर जाकर पहले छोड़े हुए तीर के पंख में लगा और उसे लौटा स्वयं तार्वातिस भवन को चला गया। उसे वहाँ देवताओं ने पकड़ लिया। जो तीर लौट रहा

था उसके हवा छेदते हुए आने की आवाज बिजली की आवाज के समान थी।

लोगों ने पूछा—“यह कैसी आवाज है?”

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—“यह तीर के लौटने की आवाज है।”

लोगों को डर लगने लगा कि उनमें से किसी के बदन पर न गिरे। बोधिसत्त्व ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तीर को जमीन पर गिरने न दूंगा।

उतरते हुए तीर ने बाल की नोक भर भी इधर उधर न जा निश्चित स्थान पर गिर आम को तोड़ा। बोधिसत्त्व ने तीर तथा आम को जमीन पर गिरने न दे, आकाश में ही रोक कर एक हाथ में तीर और दूसरे में आम लिया।

जनता उस आश्चर्य को देख “ऐसा तो हमने कभी पहले नहीं देखा” कहते हुए महापुरुष की प्रशंसा करने लगी, चिल्लाने लगी, तालियाँ पीटने लगी; अँगुलियाँ चटखाने लगी, और सहस्रों वस्त्रों को ऊपर उछालने लगी। सन्तुष्ट चित्त राज्य-परिषद ने बोधिसत्त्व को एक करोड़ धन दिया। राजा ने भी धन की वर्षा करते हुए इसे बहुत सा धन तथा यश दिया।

इस प्रकार आदृत तथा सत्कृत होकर बोधिसत्त्व के वहाँ रहते समय सात राजाओं ने यह जान कि अब असदिसकुमार वाराणसी में नहीं है, वाराणसी को घेर लिया और संदेस भेजा कि चाहें राज्य दें, चाहें युद्ध करें। राजा ने मरने से भयभीत हो पूछा—“इस समय मेरा भाई कहाँ है?”

“एक सामन्त राजा की सेवा में है।”

उसने दूत भेजे—यदि भाई नहीं आएगा, तो मेरी जान नहीं बचेगी। जाओ मेरी ओर से उनके चरणों में प्रणाम कर, क्षमा माँग उन्हें लिवा कर आओ।

उन्होंने जाकर बोधिसत्त्व को वह समाचार कहा। बोधिसत्त्व ने उस राजा को पूछ, वाराणसी लौट कर अपने भाई को आश्वासन दिया कि मत डरें। फिर उसने एक तीर पर यह लिखा कि मैं असदिसकुमार आ गया हूँ। दूसरा तीर चला कर सब की जान ले लूँगा। इसलिए जिन्हें जान प्यारी हो, वह भाग जाएँ। उस तीर को उसने अट्टालिका पर चढ़ ऐसे चलाया कि वह जहाँ सातों राजा भोजन कर रहे थे वहाँ सोने की थाली के ठीक बीच में जाकर गिरा। उन अक्षरों को देख मरने के भय से वह सभी भाग गए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने, छोटी मक्खी जितना खून पीती है उतना खून भी

बिना बहाए सातों राजाओं को भगा दिया। फिर छोटे भाई से भेंट कर, काम-भोग के जीवन को त्याग ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रज्या ग्रहण की। अभिञ्जा तथा समाप्तित्तयौ प्राप्त कर जीवन समाप्त होने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने बुद्ध हुए रहने पर “भिक्षुओ! असदिसकुमार ने सात राजाओं को भगा, संग्राम विजयी हो, ऋषियों के क्रम से प्रब्रज्या ग्रहण की” कह, यह गाथाएँ कहीं—

धनुग्गहो असदिसो राजपुत्तो महब्बलो ।
दूरेपाती अक्खणवेधी महाकायप्पदालनो ॥
सब्बामित्ते रणं कत्वा न च किञ्चि विहेठयि ।
भातरं सोत्थि कत्वान सञ्जमं अञ्जुपागमि ॥

[महाबलशाली, बड़ी बड़ी चीजों को बींधनेवाले, अचूक निशाना लगाने वाले, धनुर्धारी असदिस राजपुत्र ने जो तीर को दूर गिराता था, बिना किसी को कष्ट दिए सभी शत्रुओं से युद्ध कर भाई का उपकार किया। वह स्वयं संन्यासी हो गया।]

असदिसो केवल नाम से ही नहीं, बल, वीर्य तथा प्रज्ञा में भी असदृश महब्बलो शरीर-बल तथा ज्ञान-बल, दोनों बलों से बलशाली। दूरेपाती चातुर्भूतारजिक भवन तथा तार्वतिस भवन तक तीर पहुँचाने की सामर्थ्य रखने से दूर गिराने वाला। अक्खणवेधि अचूक निशाने वाला, अथवा अक्खणा कहते हैं बिजली को; जितनी देर एक बार बिजली चमकती है, एक बार बिजली चमकने के, उतनी ही देर के प्रकाश में सात आठ बार तीर लेकर बींधने वाला। महाकायप्पदालनो बड़ी चीजों को बींधने वाला। चर्म-काय, लकड़ी-काय, लोह-काय,^१ अयस्-काय, बालू-काय, उदक-काय तथा स्फटिक-काय, यह सात महाकाय हैं। कोई दूसरा चर्म-काय को बींधने वाला केवल भैंस के चर्मको बींधता है। वह सात भैंस-चर्मों को बींधता। दूसरा कोई आठ अंगुल मोटे अंजीर के तख्ते को, वा चार अंगुल मोटे असन वृक्ष के तख्ते को बींधता है। वह एक साथ सौ तख्ते बँधे हों, तो उनको भी बींधता। उसी तरह दो अंगुल मोटे ताम्बे के तख्ते, वा अंगुल मोटे अयस्-तख्ते को अथवा बालू की गाड़ी,

^१ लोह=ताँबा।

वा तल्लों की गाड़ी, वा पराल की गाड़ी में पीछे से तीर मार कर आगे निकाल देता । पानी में सामान्यतया चार ऋषभ की दूरी पर तीर पहुँचा देता; स्थल में आठ ऋषभ की दूरी पर । इस प्रकार इन सात कार्यों को बीधने वाला होने से महाकाय बीधने वाला । **सम्बामित्ते**, सभी शत्रु । **रणं कत्वा**, युद्ध करके भगा दिए । **न च किञ्चि बिहेठयि**, किसी एक को भी कष्ट नहीं दिया । बिना कष्ट दिए उनके साथ केवल तीर भेज कर ही युद्ध करके । **सञ्जमं अज्मुपागमि** शील-संयम रूपी प्रब्रज्या को प्राप्त किया ।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय छोटा भाई आनन्द था । असदिसकुमार तो मैं ही था ।

१८२. संगामावचर जातक

“संगामावचरो सूर। . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय नन्द स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता पहली बार कपिलपुर^१ गए, उन्होंने छोटे भाई नन्दकुमार को प्रब्रजित किया । कपिलपुर से निकल क्रमशः श्रावस्ती जाते समय आयुष्मान् नन्द भागवान् का पात्र ले शास्ता के साथ साथ चले । **जनपदकल्याणि**^२ ने सुना तो आधे बिखरे केशों से झरोखे में से देख कर कहा कि आर्य्यपुत्र शीघ्र लौटना । नन्द जनपदकल्याणि के इस कथन को याद करता हुआ उत्कण्ठा के कारण शासन में मन न लगा सका । वह पाण्डुवर्ण का हो गया; और उसके शरीर में नसें ही नसें दिखाई देने लगीं ।

^१ कपिलवस्तु ।

^२ नन्द की भार्या ।

शास्ता ने उसका हाल जान सोचा कि मैं नन्द को अर्हन्त-पद पर प्रतिष्ठित करूँ। इसलिए उन्होंने उसके रहने के परिवेण में जा वहाँ बिछे आसन पर बैठ पूछा—“नन्द ! इस शासन में तेरा मन लगता है वा नहीं ?”

“भन्ते ! जनपदकल्याणि में आसक्ति होने के कारण मन नहीं लगता ।”

“नन्द ! तू पहले हिमालय में चारिका करने गया है ?”

“भन्ते ! नहीं गया हूँ ।”

“तो ! आओ चलें ।”

“भन्ते ! मुझे ऋद्धि (-बल) नहीं है। मैं कैसे जाऊँगा ?”

“नन्द ! मैं तुझे अपने ऋद्धि (-बल) से ले जाऊँगा ।”

शास्ता ने स्थविर को हाथ से पकड़ आकाश मार्ग से जाते हुए रास्ते में जला हुआ खेत दिखाया। वहाँ जले हुए एक ठूँठ पर एक बन्दरी बैठी दिखाई; जिसके कान, नाक और पूँछ कटी थी; जिसके बाल जल गए थे; जिसकी खाल फट गई थी; जिसकी चमड़ी मात्र बाकी रह गई थी तथा जिसमें से रक्त बह रहा था।

“नन्द ! इस बन्दरी को देखते हो ?”

“भन्ते ! हाँ ।”

“अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करो ।”

फिर उसे ले साठ योजन का मनोशिला-तल, अनवतप्त आदि सात महासर, पाँच महानदियाँ, स्वर्ण-पर्वत, रजत-पर्वत तथा मणि-पर्वत से युक्त सैकड़ों रमणीय-स्थान और हिमालय-पर्वत दिखा पूछा—

“नन्द ! तूने तार्वतिस-भवन^१ देखा है ?”

“भन्ते ! नहीं देखा ?”

“नन्द ! आ तुझे तार्वतिस भवन दिखाएँ ।”

शास्ता उसे वहाँ ले जा पाण्डु-कम्बल-शिला आसन पर बैठे। दोनों देव-लोकों के देवताओं सहित देवेन्द्र शक्र-राजा ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। उसकी झाँई करोड़ सेविकाएँ और कबूतरी की तरह लाल पाँव वाली पाँच सौ अप्सराएँ भी आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठीं। शास्ता ने नन्द को ऐसा

^१ त्र्यम्बकेश्वर देवताओं का भवन।

किया कि वह उन पाँच सौ अप्सराओं पर आसक्त हो उन्हें बार बार देखने लगा ।

“नन्द ! कबूतरी जैसे पाँव वाली इन अप्सराओं को देखता है ?”

“भन्ते ! हाँ ।”

“क्या यह अच्छी लगती है, अथवा जनपदकल्याणि ?”

“भन्ते ! जनपदकल्याणि की तुलना में जैसे वह लुंजी बन्दरी थी, उसी तरह इनकी तुलना में जनपदकल्याणि है ।”

“नन्द ! अब क्या करेगा ?”

“भन्ते ! क्या करने से यह अप्सराएँ मिल सकेंगी ?”

“श्रमण-धर्म पूरा करने से ।”

“यदि भन्ते ! आप मुझे इन्हें दिलाने के जिम्मेवार हों तो मैं श्रमणधर्म पूरा करूँगा ।”

“नन्द ! कर । मैं जिम्मेवार होता हूँ ।”

इस प्रकार देवसमूह के बीच में स्थविर ने तथागत को जिम्मेवार ठहरा कर कहा—“भन्ते ! देर न करें । आएँ चलें । मैं श्रमण-धर्म करूँगा ।”

शास्ता उसे ले जेतवन चले आए । स्थविर ने श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया ।

शास्ता ने धर्मसेनापति सारिपुत्र को सम्बोधन कर कहा—“सारिपुत्र ! मेरे छोटे भाई नन्द ने त्रयस्त्रिंशत् देवलोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ दिलाने के लिए मुझे जिम्मेवार ठहराया है । इस उपाय से महामौद्गल्यायन स्थविर, महाकाश्यप स्थविर, अनुरुद्ध स्थविर, धर्मभण्डारी आनन्द स्थविर, अस्सी महा-श्रावकों तथा प्रायः करके शेष सभी भिक्षुओं को कहा । धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने नन्द स्थविर के पास जाकर कहा—आयुष्मान् ! क्या तूने सचमुच त्रयस्त्रिंशत् लोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ मिलें तो श्रमणधर्म करूँगा, इसके लिए दसबलधारी (बुद्ध) को जामिन ठहराया है ? यदि ऐसा है तो तेरा ब्रह्मचर्य-जीवन स्त्रियों के लिए है, आसक्ति के लिए है । यदि तू स्त्रियों के लिए श्रमण-धर्म कर रहा है तो तुझ में और उस मज्झिमे में क्या अन्तर है जो मज्झिमे के लिए काम करता है ?” इस प्रकार नन्द स्थविर को लज्जित किया, निस्तेज किया । इसी तरह सभी अस्सी महाश्रावकों ने तथा शेष भिक्षुओं ने उस आयुष्मान् को लज्जित किया ।

उसे लज्जा आई और निन्दा-भय के कारण उसने दृढ़ पराक्रम कर विषयना-भावना बढ़ा अर्हत्व प्राप्त किया। फिर शास्ता के पास जाकर कहा—“भन्ते ! मैं आपको आपकी जिम्मेवारी से मुक्त करता हूँ।” शास्ता ने कहा—“नन्द ! जिस समय तूने अर्हत्व प्राप्त किया, उसी क्षण मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।”

यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—“यह आयुष्मान् नन्द स्थविर उपदेश के कितने अधिकारी हैं। एक बार उपदेश देने से ही लज्जा तथा निन्दा-भय का ख्याल कर श्रमण-धर्म करके अर्हत्व प्राप्त कर लिया।” शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ, न केवल अभी, पूर्व में भी नन्द उपदेश का अधिकारी ही रहा है।” फिर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हाथी-शिक्षक के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर हाथी-शिक्षा के कार्य में निष्णात हो वाराणसी राजा के एक शत्रु-राजा की सेवा में रहने लगा। उन्होंने उसके मङ्गल हाथी को अच्छी तरह सिखाया। राजा ने वाराणसी राज्य को जीतने की इच्छा से बोधिसत्त्व को साथ ले मङ्गल-हाथी पर चढ़, बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई की। उसने वाराणसी-नरेश के पास सन्देश भेजा—युद्ध करें वा राज्य दें।

ब्रह्मदत्त ने युद्ध करने का निर्णय किया। उसने चारदीवारी के दरवाजों पर, अट्टालिकाओं में, नगर-द्वारों पर सेना को बिठा युद्ध करना शुरू किया।

शत्रु-राजा ने मङ्गल हाथी को कवच बाँध, स्वयं भी कवच पहन, हाथी के कन्धे पर बैठ तेज अंकुश ले हाथी को नगर की ओर बढ़ाया; ताकि नगर (की चारदीवारी) को तोड़ शत्रु को मार राज्य को हस्तगत कर सके। हाथी ने जब देखा कि उधर से गर्म-गारा आदि फेंका जा रहा है तथा गुल्ल और नाना प्रकार के दूसरे प्रहार किए जा रहे हैं तो वह मरने से भयभीत हो पास न जा सकने के कारण लौट पड़ा।

हाथी-शिक्षक ने उसके पास जाकर कहा—“तात ! तू धूर है। संग्राम-

जित है। इस तरह के मौके पर पीछे लौटना तेरे लिये अयोग्य है।” इतना कह हाथी को उपदेश देते हुए यह दो गाथाएँ कहीं—

संगामावचरो सूरौ बलवा इति विस्सुतो
किम्पु तोरणमासज्ज पटिक्कमसि कुञ्जर !
ओमह् खिप्पं पळिधं एसिकानि च अब्बह
तोरणानि पमद्वित्वा खिप्पं पविस कुञ्जर !

[कुञ्जर ! यह प्रसिद्ध है कि तू संग्राम-जित है, शूर है, बलवान् है। तोरण के पास पहुँच कर तू क्यों पीछे लौटता है ? बाधा को जल्दी तोड़ डाल। स्तम्भों को उखाड़ फेंक। कुञ्जर ! दरवाजों का मर्दन करके तू जल्दी नगर में प्रविष्ट हो।]

इति विस्सुतो तात ! तू ऐसे संग्राम को जिसमें प्रहार मिलते हों मर्दन करके विचरने वाला होने से संगामावचरो, दृढ़-हृदय वाला होने से सूरौ। बल-सम्पन्न होने से बलवा, यह प्रसिद्ध है, ज्ञात है, प्रकट है। तोरणमासज्ज, नगर-द्वार पर पहुँच पटिक्कमसि किस कारण से पीछे हटता है ? किस कारण से रुकता है ? ओमह्, मर्दन कर, नीचे गिरा दे। एसिकानि च अब्बह, नगर-द्वार पर सोलह हाथ या आठ हाथ भूमि के अन्दर प्रवेश करके स्थिर रूप से गाड़े हुए स्तम्भ एसिका-स्तम्भ कहलाते हैं। उन्हें जल्दी उखाड़ फेंकने की आज्ञा देता है। तोरणानि पमद्वित्वा नगर-द्वार के पीछे के चौखट मर्दित कर। खिप्पं पविस, जल्दी से नगर में प्रवेश कर। कुञ्जर, नाग को सम्बोधित करता है।

उसे सुन बोधिसत्त्व ने एक ही उपदेश से रुक, स्तम्भों को सूण्ड से लपेट, ‘साँप की छतरियों’ की तरह उखाड़, तोरण का मर्दन कर बाधा को उखाड़ फेंका। फिर नगर-द्वार को तोड़, नगर में प्रवेश कर राजा को राज्य ले दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी नन्द था। राजा आनन्द था। हाथी-शिक्षक तो मैं ही था।

१८३. वाळोदक जातक

“वाळोदकं अप्परसं निहीनं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पाँच सौ जूठन खाने वालों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ श्रावक घर-गृहस्थी का भार अपने स्त्री-बच्चों को सौंप, शास्ता का धर्मोपदेश सुनते हुए एक साथ रहते थे। उनमें कोई स्रोतापन्न थे, कोई सकृदागामी तथा कोई अनागामी; पृथक्जन कोई भी नहीं था। शास्ता को निमन्त्रित करते तो भी वह मिलकर ही निमन्त्रित करते।

उनको दातुन, मुख धोने का जल, सुगन्धि तथा माला आदि देने वाले उनके पाँच सौ छोटे सेवक जूठन खाकर रहते। वह प्रातःकाल का भोजन खा, सो जाते और उठ कर अचिरवती नदी के किनारे जा कुस्ती लड़ते। लेकिन वह पाँच सौ उपासक हल्ला न मचाते हुए ध्यान-रत रहते थे।

शास्ता ने उन जूठन खाने वालों का शोर सुनकर पूछा—

“आनन्द ! यह शोर कैसा है ?”

“भन्ते ! यह जूठन खानेवालों का शब्द है।”

“आनन्द ! यह जूठन खाने वाले केवल अभी जूठन खाकर शोर नहीं मचाते, पहले भी शोर मचाते रहे हैं; और यह उपासक भी न केवल अभी शान्त हैं पहले भी शान्त रहे हैं।”

स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ताने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर राजा के अर्थधर्मानुशासक का पद मिला।

एक बार वह राजा यह सुन कि उसके इलाके में उपद्रव हो गया है, पाँच सौ

सैन्धव घोड़े तैयार करा, चतुरङ्गिनी सेना के साथ जा, इलाके को शान्त कर वाराणसी लौट आया। उसने आज्ञा दी कि घोड़े थके हैं; इसलिए उन्हें कोई नरम चीज अंगूर का पेय ही पिलाया जाय।

सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर अश्व-शाला में आ अपनी-अपनी जगह खड़े हो गए। उनको जो रस दिया गया था, उसमें बचा हुआ बहुत कसैला हो गया। आदमियों ने राजा से पूछा—“इसका क्या करें?” राजा ने आज्ञा दी—“इसमें पानी मिला, मोटे कपड़े से छान, जो गधे घोड़ों का चारा ढो कर ले गए थे, उन्हें पिला दो।” पिला दिया गया।

गधे उस कसैले पानी को पी मस्त होकर रेंकते हुए राजाङ्गण में घूमने लगे। राजा ने बड़ी खिड़की खोल राजाङ्गण को देखते हुए पास खड़े बोधिसत्त्व को सम्बोधित करके कहा—“मित्र ! यह गधे कसैला पानी पीकर मस्त हो रेंकते हुए उछलते फिरते हैं। सिन्धु-कुल में पैदा हुए सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर निःशब्द बैठे हुए उछलते कूदते नहीं हैं। इसका क्या कारण है?”

यह पूछते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वाळोवकं अप्परसं निहीनं
पीत्वा मदो जायति गज्जभानं
इमं च पीत्वान रसं पणीतं
मदो न सञ्जायति सिन्धवानं

[गधों को थोड़े से रस वाला, तुच्छ, बोरे से छाना हुआ पानी पीकर भी मद हो जाता है। सैन्धव घोड़ों को यह श्रेष्ठ रस पीकर भी मद नहीं होता।]

वाळोवकं बोरे से छाना हुआ पानी, वाळूवकं भी पाठ है। निहीनं हीन रस से युक्त, न सञ्जायति, सैन्धव घोड़ों को मद नहीं होता है, क्या कारण है?

इसका कारण कहते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

अप्यं पिबित्वान निहीनज्जब्बो
सो मज्जति तेन जनिन्द फुट्ठो

घोरयूहसीली च कुलम्हि जातो
न मज्जति अगगरसं पिबित्वा

[राजन् ! हीन कुल में पैदा हुआ, थोड़ी भी पी लेने से उसके स्पर्श से (ही) मस्त हो जाता है । स्थिर शील वाला तथा श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ, श्रेष्ठ रस पीकर भी मस्त नहीं होता ।]

तेन जनिन्द फुट्ठो, जनेन्द्र ! श्रेष्ठ राजन् ! वह हीन कुल में पैदा हुआ, अपने कुल की हीनता के कारण मज्जति, प्रमाद को प्राप्त होता है, घोरयूहसीली, स्थिर रूप से वहन करने की योग्यता वाला सैन्धव जाति का घोड़ा, अगगरसं सबसे पहले लिया हुआ अंगूर-रस, पिबित्वा न मज्जति ।

राजा ने बोधिसत्त्व की बात सुन गधों को राजाङ्गण से निकलवाया । फिर उसी के उपदेशानुसार चल दानादि पुण्यकर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय पाँच सौ गधे यह जूठन खाने वाले थे । पाँच सौ सैन्धव घोड़े यह उपासक । राजा आनन्द । अमात्य-पण्डित तो मैं ही था ।

१८४. गिरिवत्त जातक

“इसितो गिरिवत्तेन . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले एक भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

पहले महिलामुल्ल जातक^१ में जो कथा आई है, इसकी कथा भी उसी प्रकार

^१ महिलामुल्ल जातक (१.३.६) ।

है। शास्ता ने कहा, भिक्षुओ, यह केवल अभी विरोधी पक्ष का साथ देने वाला नहीं है, पहले भी यह विपक्ष-सेवी ही रहा है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सामराजा नाम के राजा का राज्य था। उस समय बोधिसत्त्व अमात्यकुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थ-धर्मानुशासक^१ हुए।

राजा का पण्डव नाम का मङ्गल घोड़ा था। उसके शिक्षक का नाम था गिरिदत्त। वह लज्जड़ा था। रस्सी पकड़ कर आगे-आगे (लँगड़ाते हुए) जाने से घोड़े ने सोचा कि यह मुझे सिखाना चाहता है। उसके अनुसार चलने से वह लज्जड़ा हो गया। उसके लज्जड़ेपन की बात राजा तक पहुँचाई गई। राजा ने वैद्यों को भेजा। उन्होंने जब देखा कि घोड़े को कोई बीमारी नहीं है, तो उन्होंने राजा से कहा कि घोड़े के शरीर में कोई रोग तो नहीं दिखाई देता।

राजा ने बोधिसत्त्व को भेजा “मित्र! जा, क्या कारण है, पता लगा।” उसने जाकर शिक्षक के लज्जड़े होने के कारण ही यह लज्जड़ा हुआ है जान, राजा को सूचना दी; और यह दिखाने के लिए कि खराब संगत से ऐसा हो जाता है, यह गाथा कही—

दूसितो गिरिदत्तेन ह्यो सामस्स पण्डवो
पोराणं पकतिं हित्वा तस्सेव अनुविधीयति॥

[राजा साम के पण्डव घोड़े को गिरिदत्त ने खराब कर दिया। वह अपने पहले स्वभाव को छोड़ कर उसी का अनुकरण करता है।]

ह्यो सामस्स सामराजा का मङ्गल घोड़ा, पोराणं पकतिं हित्वा अपनी पुरानी प्रकृति, शृङ्गार, छोड़ कर, अनुविधीयति अनुसार सीखता है।

तब राजा ने पूछा—“मित्र! अब क्या करना चाहिए?” बोधिसत्त्व ने

^१ लौकिक तथा नैतिक दोनों विषयों में सलाहकार।

उत्तर दिया—अच्छा शिक्षक मिलने से फिर पहले की तरह ही जाएगा । और यह दूसरी गाथा कही—

सच्चेव तनुजो पोसो सिखराकारकप्पितो,
आनने तं गहेत्वान मण्डले परिवत्तये,
खिप्पमेव पहेत्वान तस्सेव अनुविधीयति ॥

[यदि सुन्दर आकार-प्रकार वाला, उस घोड़े के अनुरूप शिक्षक उसे मुँह से पकड़ कर घुमाएगा, तो वह जल्दी ही यह (लङ्गड़ापन) छोड़ कर उसका अनुकरण करेगा ।]

तनुजो, उसका अनुज; अनुकूल उत्पन्न हुआ होने से अनुज । मतलब यह है—महाराज ! यदि उस शृंगार-युक्त आचारवान् घोड़े के अनुरूप आकार-प्रकार वाला पोसो । सिखराकारकप्पितो शिखर अर्थात् सुन्दर तरह से जिसकी बाल दाढ़ी कढ़ी है । तं घोड़े को आनने गहेत्वा घोड़े के घुमाने की जगह पर घुमाए । तो यह शीघ्र ही लँगड़ापन को छोड़, यह शृङ्गारयुक्त आचारवान् अश्व-शिक्षक मुझे सिखा रहा है, समझ उसका अनुकरण करेगा, उसके अनुसार सीखेगा, स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होगा ।

राजा ने बैसा करवाया । घोड़ा स्वाभाविक अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ । यह सोच कि बोधिसत्त्व पशुओं तक के आशय को समझते हैं, उन्हें बहुत धन दिया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय गिरिदत्त देवदत्त था । घोड़ा विरोधी पक्ष का साथ देने वाला भिक्षु । राजा आनन्द । अमात्य पण्डित तो मैं ही था ।

१८५. अनभिरति जातक

“यद्योवके आबिले अप्पसप्पे . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में तीनों वेदों का जानकार एक ब्राह्मण-कुमार बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मणकुमारों को वेद पढ़ाता था। आगे चलकर उसने घर बसाया। वस्त्र, अलंकार, दास, दासी, खेत, वस्तु, गौ, भैंस, पुत्र तथा स्त्री आदि की चिन्ता करने से राग, द्वेष और मोह के वशीभूत हो वह अस्थिर-चित्त हो गया। मन्त्रों को क्रम से न पढ़ा सकता था। जहाँ तहाँ मन्त्र समझ में न आते थे।

एक दिन वह बहुत सी सुगन्धियाँ तथा माला आदि लेकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता की पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा—“माणवक ! क्या मन्त्र पढ़ाते हो ? मन्त्रों का अभ्यास बना है ?”

“भन्ते ! पहले मुझे मन्त्र अभ्यस्त थे। लेकिन जब से घर बसाया, तब से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। इससे मन्त्रों का अभ्यास नहीं रहा।”

शास्ता ने उसे कहा—“माणवक ! न केवल अभी, पहले भी जब तेरा चित्त स्थिर था, तभी तुझे मन्त्रों का अभ्यास था। रागादि से अस्थिर होने के समय तुझे मन्त्र समझ में नहीं आए।”

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए बोधिसत्त्व ब्राह्मणों के एक प्रधान कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में मन्त्र सीख प्रसिद्ध आचार्य्य हो वाराणसी में बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण कुमारों को वेद पढ़ाने लगा।

उसके पास एक ब्राह्मण माणवक ने तीनों वेदों का अभ्यास किया। प्रत्येक

पद तक में असंदिग्ध हो, उपाचार्य्य बन मन्त्र सिखाने लगा । वह आगे चलकर गृहस्थ हो गृहस्थी की चिन्ता से अस्थिर-चित्त होने के कारण मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता था । आचार्य्य के पास जाने पर आचार्य्य ने पूछा—“माणवक ! क्यों तुझे मन्त्र अभ्यस्त हैं ?”

“गृहस्थ होने के समय से मेरा चित्त अस्थिर हो गया । मैं मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता ।”

ऐसा कहने पर आचार्य्य ने “तात ! अस्थिर चित्त होने से अभ्यस्त मन्त्रों का भी प्रतिभान नहीं होता; स्थिर चित्त रहने पर विस्मृति होती ही नहीं ” कह यह गाथाएँ कहीं—

यथोदके आबिले अप्ससन्ने
न पस्सति सिप्पिकसम्बुकञ्च
सक्खरं बालुकं मच्छगुम्भं
एवं आबिले हि चित्ते
न पस्सति अत्तवत्थं परत्थं ॥
यथोदके अच्छे विप्पसन्ने
सो पस्सति सिप्पिकसम्बुकस्सञ्च
सक्खरं बालुकं मच्छगुम्भं
एवं अनाबिले हि चित्ते ।
सो पस्सति अत्तवत्थं परत्थं ॥

[जिस प्रकार गँदले, मैले पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह नहीं दिखाई देता; उसी प्रकार अस्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ नहीं सूझता ।

जिस प्रकार निर्मल, साफ पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह दिखाई देता है; उसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ सूझता है ।]

आबिले कीचड़ से गँदले हुए, अप्ससन्ने उसी गँदलेपन के कारण मैले । सिप्पिकसम्बुक, सीपी और शंख । मच्छगुम्भं मछलियों का समूह । एवं आबिले,

इसी प्रकार रागादि से अस्थिर चित्त अतत्त्वत्वं परत्वं, न आत्मार्यं न परार्यं देखता है—यही अर्थ है। सो पस्सति, इसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर वह आदमी आत्मार्यं तथा परार्यं देखता है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य (-सत्त्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

आर्य (-सत्त्यों) का प्रकाशन समाप्त होने पर ब्राह्मण कुमार खोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय माणवक यही माणवक था। आचार्य तो मैं ही था।

१८६. दधिबाहन जातक

“बण्णगन्धरसूपेतो...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जो कथा पहले आ चुकी है,^१ वैसी ही कथा है। शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ ! बुरे की संगत बुरी होती है, अनर्थकारी होती है। मनुष्यों के लिए कुसंगति के दुष्परिणाम का क्या कहना ? पूर्व समय में अस्वादिष्ट, अमधुर नीम के वृक्ष की संगति के कारण मधुर-रस वाला, दिव्य रस वाला, जड़, आम का वृक्ष भी अमधुर, कड़ुआ हो गया।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय काशी राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियों के प्रब्रज्या क्रम से प्रब्रजित हो, हिमवन्त प्रदेश में क्रम से

पर्णशालाएँ बना रहने लगे । उनमें से जो ज्येष्ठ था वह मर कर शक्र देवता हुआ ।

इस बात को जान वह बीच बीच में सातवें आठवें दिन अपने उन भाइयों की सेवा में आता । एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—
“भन्ते ! आपको किस चीज़ की ज़रूरत है ?”

पाण्डु-रोग से पीड़ित तपस्वी ने कहा—“मुझे आग की ज़रूरत है ।” उसने उसे छुरी-कुल्हाड़ी दी । यह छुरी-कुल्हाड़ी दस्ते के हिसाब से जैसे दस्ता डाला जाता छुरी भी बन जाती, कुल्हाड़ी भी बन जाती । तपस्वी ने पूछा—“इसे लेकर कौन मेरे लिए लकड़ियाँ लाएगा ?”

शक्र ने कहा—“भन्ते ! जब आपको लकड़ी की ज़रूरत हो इस कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़ कर कहें ; जाओ मेरे लिए लकड़ियाँ ला कर आग बना दो । यह लकड़ियाँ लाकर आग बना देगी ।”

उसे छुरी-कुल्हाड़ी दे दूसरे से भी जाकर पूछा—“भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?” उसकी पर्णशाला के पास से हाथियों के आने जाने का रास्ता था । उसे हाथियों का उपद्रव था । इसलिए उसने कहा—“मुझे हाथियों के कारण दुःख होता है । उन्हें भगा दें ।”

शक्र ने उसे एक ढोल लाकर दिया और कहा कि इस ओर बजाने से तुम्हारे शत्रु भाग जाएँगे ; और इस ओर बजाने से मैत्री भाव युक्त हो चारों प्रकार की सेना सहित तुम्हारे पास आ जाएँगे । इतना कह और वह ढोल दे छोटे भाई के पास जा पूछा—“भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?”

उसकी भी पाण्डुरोग की प्रकृति थी । इसलिए उसने कहा कि मुझे दही चाहिए । शक्र ने उसे एक दही का घड़ा दिया और कहा—“यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उलटना । उलटने पर यह महानदी बहाकर, बाढ़ लाकर तुम्हें राज्य भी लेकर दे सकेगा ।” इतना कह कर इन्द्र चला गया ।

उस समय से छुरी-कुल्हाड़ी ज्येष्ठ भाई के लिए आग बना देती । दूसरा जब ढोल बजाता तो हाथी भाग जाते । छोटा दही खाता ।

उस समय किसी उजड़े हुए गाँव की जगह पर घूमते हुए एक सूअर ने एक दिव्य मणि-खण्ड देखा । उसने उस मणि-खण्ड को मुँह से उठा लिया । उसके प्रताप से वह आकाश में ऊँचे उड़ा । वहाँ से उसने समुद्र के बीच में एक द्वीप पर पहुँच सोचा—मुझे यहाँ रहना चाहिए । इसलिए वहाँ उतर एक गूलर के वृक्ष के नीचे

सुख पूर्वक रहने लगा। एक दिन वह उस वृक्ष के नीचे उस मणि-खण्ड को अपने सामने रख सो गया।

काशी राष्ट्र का एक आदमी, जिसे उसके माता-पिता ने निकम्मा समझ घर से निकाल दिया था, एक पत्तन गाँव पर पहुँचा। वहाँ उसने नाविकों के पास नौकरी की। नौका पर चढ़ कर जा रहा था कि समुद्र के बीच में नौका टूट गई। वह एक लकड़ी के तख्ते पर बैठा उस द्वीप में पहुँचा। वहाँ फलमूल खोजते हुए उसने उस सूअर को सोते हुए देख आहिस्ता से समीप जा मणि-खण्ड उठा लिया। उसके प्रताप से आकाश में उड़ गूलर के वृक्ष पर बैठ सोचने लगा—यह सूअर इसी के प्रताप से आकाश में घूमता हुआ यहाँ रहता है। मुझे पहले ही इसे मार कर मांस खाकर पीछे जाना चाहिए।

उसने एक डण्डा तोड़ कर उसके सिर पर गिराया। सूअर ने जागकर जब मणि को न देखा तो वह काँपता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा; और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतर कर आग बनाई और उसका मांस पका कर खाया। फिर आकाश में उड़कर हिमालय के ऊपर से जाते हुए उस आश्रम को देख ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम पर उतरा। दो तीन दिन रह कर तपस्वी की सेवा की। वहाँ उसने छुरी-कुल्हाड़ी की महिमा देखी। 'इसे मुझे लेना चाहिए' सोच उसने तपस्वी को मणि-खण्ड की महिमा बता कर कहा—भन्ते ! यह मणि-खण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाड़ी दें। आकाश में घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणि-खण्ड लेकर वह छुरी-कुल्हाड़ी दे दी।

उसने थोड़ी दूर जा छुरी-कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़ कर कहा—“छुरी-कुल्हाड़ी ! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणि-खण्ड ले आ।” वह जाकर तपस्वी का सिर काट मणि-खण्ड ले आई।

उस आदमी ने छुरी-कुल्हाड़ी को एक जगह छिपा कर मँझले तपस्वी के पास जा, कुछ दिन रह, ढोल की महिमा देख मणि-खण्ड दे, भेरी ली। फिर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवा छोटे तपस्वी के पास जा, दही के घड़े की महिमा देख पूर्वोक्त प्रकार से ही उसका भी सिर कटवा, मणि-खण्ड, छुरी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही का घड़ा ले, आकाश में उड़ कर वाराणसी के पास पहुँचा। वहाँ से उसने वाराणसी के राजा के पास एक आदमी के हाथ पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

राजा सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकड़ने के लिए निकल पड़ा। उसने ढोल के एक तल को बजाया। चारों प्रकार की सेना पहुँच गई। जब उसने देखा कि राजा ने अपनः सेना पंक्ति-बद्ध कर ली, उसने दही के घड़े को छोड़ा। बड़ी भारी नदी बह निकली। जनसमूह दही में डूब गया और निकल न सका। छुरी-कुल्हाड़ी पर हाथ फेर उसे आज्ञा दी कि जाकर राजा का सिर ले आए। छुरी-कुल्हाड़ी ने जाकर राजा का सिर ला पैरों पर रख दिया। एक भी आदमी हथियार न उठा सका।

उसने बड़ी सेना के साथ नगर में प्रवेश कर, अभिषेक करवा, दधिवाहन नाम से धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक दिन वह महानदी में जाल की टोकरी फेंक कर खेल रहा था। कण्णमुण्ड सरोवर से देवताओं के उपभोग में आने वाला एक पका आम आकर जाल में लगा। जाल उठाने वालों ने उसे देख कर राजा को दिया। वह बड़ा था, घड़े के प्रमाण का था, गोलाकार था, सुनहरी रंग का था। राजा ने बनचरों से पूछा—“यह किसका फल है?” उन्होंने बताया—आम्रफल। राजा ने उसे खाकर उसकी गुठली अपने उद्यान में लगवा, उसे दूध-पानी से सिंचवाया। पेड़ लगकर उसने तीसरे वर्ष फल दिया। आम के पेड़ का बहुत सत्कार होने लगा। दूध-पानी से उसे सींचते; सुगन्धित द्रव्यों के पञ्चांगुलि-चिन्ह लगाते, और मालाओं के जाल फेंकते। सुगन्धित तेल के दीपक जलाते। यह कीमती कपड़े की क़नातों से घिरा रहता। इसके फल मधुर तथा सुनहरी रंग के होते।

जब दधिवाहन राजा दूसरे राजाओं के पास आम के फल भेजता तो इस डर से कि कहीं गुठली से पेड़ न लग जाए वह अंकुर निकलने की जगह को काँटे से बंध देता। वे आम खाकर गुठली को रोपते। पेड़ न लगता। उन्होंने पूछा तो पता लगा कि क्या कारण है।

एक राजा ने अपने माली को बुलाकर पूछा कि क्या वह दधिवाहन राजा के आमों के रस को नष्ट कर उन्हें कड़वा बना सकेगा? उसने कहा—देव! हाँ! “तो जा” कह, उसे हज़ार देकर बिदा किया।

उसने वाराणसी पहुँच राजा के पास खबर भिजवाई कि एक माली आया है। राजा ने उसे बलवाया। उसने जा राजा को प्रणाम कर “तू माली है?” पूछने पर कहा—“देव! हाँ” और अपनी योग्यता का बखान किया। राजा ने आज्ञा दी—जा हमारे माली के साथ रह।

उस समय से वह दोनों जने बाग की सार संभाल रखते । नए माली ने अकाल-फूल फुला कर और अकाल-फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया ।

राजा ने उस पर प्रसन्न हो पुराने माली को निकाल उसी को उद्यान सौंप दिया । उसने उद्यान को अपने हाथ में जान, आम के वृक्ष के चारों ओर नीम और कड़वी लताएँ लगा दीं । क्रम से नीम के वृक्ष बढ़े । जड़ों से जड़ें तथा शाखाओं से शाखाएँ इकट्ठी हो एक दूसरे में मिल गईं । उनके अस्वादिष्ट अमधुर रस के संसर्ग से वैसा मधुर फल वाला आम कड़ुवा हो गया । उसका रस नीम के पत्ते जैसा हो गया । यह देख कि आम के फल कड़ुवे हो गए, माली भाग गया । दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम का फल खाया; तो मुंह में डाला हुआ आम का रस उसे नीम की तरह कसैला लगा । उसे सहन न कर सकने के कारण, उसने खंखार कर थूक दिया ।

उस समय बोधिसत्त्व उस राजा के अर्थधर्मानुशासक थे । राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—

“पण्डित ! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है । ऐसा होने पर भी इसका फल कड़ुवा हो गया है । क्या कारण है ?” ऐसा कहते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वण्णगन्धरसूपेतो अम्बायं अहुवा पुरे,
तमेव पूजं लभमानो केनम्बो कटुकफलो ॥

[यह आम पहले वर्ण और रस से युक्त था । इसकी वही सेवा होती है, तो भी इसका फल कैसे कड़ुवा हो गया ?]

इसका कारण बताते हुए बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुच्चिभन्दपरिवारो अम्बो ते दधिवाहन !
मूलं मूलेन संसदं साखा साखा निसेबरे
असातसन्निवासेन तेनम्बो कटुकफलो ॥

[हे दधिवाहन ! तेरा आम-वृक्ष नीम से घिरा है । उसकी जड़, जड़ से तथा शाखाएँ शाखाओं से सटी हैं । कड़ुवे के साथ होने से आम का फल कड़ुवा हो गया ।]

पुच्चिभन्दपरिवारो, नीम के वृक्ष से घिरा हुआ साखा साखा निसेबरे, पुच्चिभन्द

की शाखाएँ आम की शाखाओं को घेरे हैं। असातसन्निवासेन अमधुर नीम के साथ रहने से, तब उस कारण से यह अम्बो कटुकफलो, अस्वादित-फल, कटुवं फल वाला हो गया।

राजा ने उसकी बात सुन सभी नीम तथा कडुवी लताएँ कटवा कर, जड़ें उखड़वा कर, चारों ओर से अमधुर बालू हटवा कर, उसकी जगह मधुर बालू डलवा कर, दुग्ध-जल से, शक्कर-जल से तथा सुगन्धित जल से आम की सेवा कराई।

मधुर रस के संसर्ग से वह फिर मधुर हो गया। राजा ने जो पहला माली था, उसी को उद्यान सौंप दिया। आयु भर जी कर वह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मैं ही पण्डित अमात्य था।

१८७. चतुमदठ जातक

“उच्चे विटभिसारह् . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन जब दोनों प्रधान शिष्य बैठे एक दूसरे से प्रश्नोत्तर कर रहे थे, एक बूढ़ा उनके पास गया और उन दोनों में स्वयं तीसरा बन बैठ कर बोला— भन्ते ! हम भी आपसे प्रश्न पूछेंगे। आप भी हमसे अपनी शंकाएँ निवारण करें।

स्थविर उसके प्रति घृणा प्रकट करते हुए उठ कर चले गए। स्थविरों से धर्म सुनने के लिए इकट्ठी हुई परिषद, सभा के टूटने पर, उठ कर शास्ता के पास गई। बुद्ध ने पूछा—असमय कैसे आए ? उन्होंने वह बात कही। शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र मौद्गल्यायन इनके प्रति जिगुप्सा दिखा बिना कुछ कहे चल देते हैं, पहले भी चल दिए थे।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए। दो हंस-बच्चे चित्तकूट पर्वत से निकल, उस वृक्ष पर बैठ चुगने जाते। फिर लौटते हुए भी वहीं विश्राम लेकर, चित्तकूट पर्वत पर जाते। समय बीतते-बीतते उनकी बोधिसत्त्व के साथ मैत्री हो गई। आते जाते एक दूसरे से कुशलक्षेम पूछ धार्मिक-कथा कह जाते।

एक दिन उनके वृक्ष के सिरे पर बैठ बोधिसत्त्व के साथ बातचीत करते हुए एक गीदड़ ने उस वृक्ष के नीचे खड़े हो उन हंस-बच्चों के साथ मन्त्रणा करके हुए पहली गाथा कही—

उच्चै विटभिमारुह्य मन्तयन्हो रहोगता ।

नीचै ओरुह्य मन्तन्हो मिगराजापि सोस्सति ॥

[ऊँचे वृक्ष पर चढ़ कर एकान्त में मन्त्रणा करते हो। नीचे उतर कर बातचीत करो, जिससे मृगराज भी सुने।]

उच्चै विटभिमारुह्य, स्वभाव से ही ऊँचे वृक्ष की एक ऊँची टहनी पर चढ़ कर। मन्तयन्हो मन्त्रणा करते हो, बातचीत करते हो। नीचै ओरुह्य उतर कर नीचे स्थान पर खड़े होकर मन्त्रणा करो। मिगराजापि सोस्सति अपने को मृगराज करके कहता है।

हंस-बच्चे घृणा कर उठ कर चित्तकूट ही चले गए। उनके चले जाने पर बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

यं सुपण्णो सुपण्णेन देवो देवेन मन्तये

किं तेत्थ चतुमट्ठस्स बिलं पविसि जम्बुक ॥

[पक्षी पक्षी के साथ, देवता देवता के साथ मन्त्रणा करे तो हे चारों दोषों से युक्त गीदड़ तुझे क्या? तू बिल में जा।]

सुपण्णो सुन्दर पक्ष, सुपण्णेन दूसरे हंस-बच्चे के साथ। देवो देवेन उन दोनों को ही देवता करके कहता है। चतुमट्ठस्स शरीर से, जाति से, स्वर से तथा गुण

से—इन चारों से मृष्ट वा शुद्ध यही शब्दार्थ है; किन्तु भावार्थ है अशुद्ध । लेकिन उसे प्रशंसा के बहाने निन्दा करते हुए यह कहा—चारों बुराईयों वाले तुम गीदड़ को यहाँ क्या ? यही मतलब है । बिल पबिस बोधिसत्त्व ने डर दिखा उसे भगाते हुए यह कहा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । बूढ़ा उस समय का शृगाल था । दो हंस-बच्चे सारिपुत्र-मौद्गल्यायन थे । वृक्षदेवता तो मैं ही था ।

१८८. सीहकोत्थुक जातक

“सीहङ्गुली सीहनल्लो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दूसरे बहुश्रुत भिक्षुओं के धर्म बाँचते समय कोकालिक की भी धर्म बाँचने की इच्छा हुई—इस प्रकार सारी कथा उक्त प्रकार से ही विस्तार पूर्वक कहनी चाहिए । उस समाचार को जान शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण प्रकट हो गया, वह पहले भी जाहिर हो गया था ।” इतना कह शास्ता ने अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमानय प्रदेश में पैदा हुए । वहाँ उन्हें एक शृगाली के साथ सहवास करने के फलस्वरूप एक पुत्र हुआ । उसकी अँगुलियाँ, उसके नख, उसके केसर, उसका रंग, उसका आकार-प्रकार पिता की तरह का था । स्वर माता की तरह का ।

एक दिन वर्षा हो चुकने पर सिंहों के दहाड़ दहाड़ कर सिंह-क्रीड़ा करते समय, उसने भी उनके बीच में दहाड़ने की इच्छा से शृगाल की तरह आवाज की । उसकी

बोली सुनकर सब सिंह चुप हो गए। सिंह का अपना एक स्वजातीय पुत्र था। उसने उसकी आवाज सुनकर पूछा—“तात ! यह सिंह वर्ण आदि से तो हमारे ही जैसा है, लेकिन इसका स्वर दूसरी तरह का है। यह कौन है ?” ऐसा प्रश्न करते हुए उसने यह गाथा कही—

सीहङ्गुली सीहनखो सीहपादपतिदिठतो
सो सीहो सीहसङ्घम्हि एको नदति अञ्जाथा ॥

[सिंह की सी अँगुलियाँ, सिंह के से नाखून और सिंह के से पैरों वाला वह सिंह सिहों की जमात में दूसरी तरह की आवाज करता है।]

सीहपादपतिदिठतो, सिंह के पैरों ही पर प्रतिष्ठित। एको नदति अञ्जाथा अकेला दूसरे सिहों से भिन्न शृगाल-स्वर से बोलता हुआ अन्यथा बोलता है।

इसे सुन बोधिसत्त्व ने कहा—“तात ! यह तेरा भाई शृगाली का लड़का है। इसका रूप मेरे जैसा है, आवाज माता जैसी।” फिर शृगाल-पुत्र को बुलाकर कहा—“तात ! अब से तू जब तक यहाँ रहे अधिक मत बोलना। यदि फिर ऊँचे बोलेगा, तो तेरा शृगाल होना जान लेंगे।” इस प्रकार उपदेश देते हुए दूसरी गाथा कही—

मा त्वं नदि राजपुत्त ! अप्सहो बने वस,
सरेन खो तं जानेय्मुं न हि ते पेत्तिको सरो ॥

[राजपुत्र ! तू ऊँचे स्वर से मत बोल। धीरे बोलता हुआ बन में रह। तेरे स्वर से जान लेंगे, (कि तू गीदड़ है) क्योंकि तेरा स्वर पिता का स्वर नहीं।]

राजपुत्र, मृगराज सिंह का पुत्र। इस उपदेश को सुनकर उसने फिर जोर से बोलने की हिम्मत नहीं की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल कोकालिक था। स्वजातीय पुत्र राहुल। मृगराज तो मैं ही था।

१८९. सीहचम्म जातक

“नेतं सीहस्स नवितं” यह भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के ही बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह (भिक्षु) उस समय स्वर से सूत्र पाठ करना चाहता था । शास्ता ने वह समाचार सुन पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कृषक कुल में पैदा हो बड़े होने पर खेती करके जीविका चलाते थे ।

उस समय एक बनिया गधे पर बोझा लाद कर व्यापार करता हुआ घूमता था । वह जहाँ-जहाँ जाता वहाँ वहाँ गधे की पीठ पर से सामान उतार, गधे को सिंह की खाल पहना, धान तथा जौ के खेत में छोड़ देता । खेत की रखवाली करने वाले उसे देख, शेर समझ, पास न जा सकते थे ।

एक दिन उस बनिए ने एक ग्राम-द्वार पर ठहर प्रातःकाल का भोजन पकाते समय गधे को सिंह की खाल पहना जौ के खेत में छोड़ दिया । खेत की रखवाली करने वालों ने उसे शेर समझ पास न जा सकने के कारण घर जाकर खबर दी । सारे ग्रामवासी आयुध ले, शङ्ख फूंकते तथा ढोल बजाते हुए खेत के समीप पहुँच चिल्लाने लगे । गधे ने मृत्युभय से डर गधे की तरह आवाज की । वह गधा है जान बोधिसत्त्व ने पहली गाथा कही—

नेतं सीहस्स नवितं न व्यग्घस्स न दीपिनो,
पावतो सीहचम्मेन जम्मो नवति गब्रभो ॥

[न यह शेर की आवाज है, न व्याघ्र की, न चीते की, शेर की खाल पहन कर दुष्ट गधा चिल्लाता है।]

जम्मो, नीच ।

ग्रामवासियों ने भी यह जान कि वह गधा है, उसकी हड्डियाँ तोड़ते हुए उसे पीटा और सिंह की खाल लेकर चले गए । उस बनिए ने आकर जब विपत्ति में पड़े उस गधे को देखा तो दूसरी गाथा कही—

चिरम्पि खो तं खादेभ्य गद्वभो हरितं यवं,
पादतो सीहचम्मेन रवमानोव बूसयि ॥

[सिंह की खाल पहन कर तू चिरकाल तक हरे जौ खाता रहा । हे गधे तूने बोल कर ही अपने को नष्ट किया।]

तं निपात मात्र है । यह गद्वभो अपने गधेपन को छिपा सीहचम्मेन पादतो चिरम्पि देर तक हरितं यवं खादेभ्य अर्थ है । रवमानोव बूसयि अपने गधे की आवाज करके ही अपने को विपत्ति में डाला । इसमें सिंह की खाल का दोष नहीं ।

उसके ऐसा कहते ही गधा वहीं गिर कर मर गया । बनिया भी उसे छोड़कर चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय गधा कोकालिक था । पण्डित काश्यप तो मैं ही था ।

१९०. सीलानिसंस जातक

“पत्त सद्धाय सीलस्स...” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक श्रद्धावान् उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रद्धावान् प्रसन्नचित्त आर्य-श्रावक था। एक दिन जेतवन जाते समय उसने शाम को अचिरवती नदी के किनारे पर जाकर देखा कि नाविक नौकाओं को किनारे पर छोड़ धर्म मुनने के लिए चले गए। वह घाट पर नौका न देख, बुद्ध की याद से मन को प्रसन्न कर नदी में उतर पड़ा। पाँव पानी में नहीं भीगे। पृथ्वी तल पर चलते हुए की तरह बीच में पहुँचने पर उसने लहर को देखा। उसकी बुद्ध-भक्ति मन्द पड़ गई थी; इससे उसके पैर डूबने लगे।

उसने बुद्ध-भक्ति को दृढ़ कर पानी पर ही चल, जेतवन में प्रवेश कर शास्ता को प्रणाम किया। वह एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—“उपासक ! क्या रास्ते में आते हुए अधिक कष्ट तो नहीं हुआ ?” “भन्ते ! बुद्ध की याद से मन को प्रीति-युक्त कर, पानी के तल पर प्रतिष्ठित हो मैं पृथ्वी को मर्दन करते हुए की तरह आया हूँ।” “उपासक ! न केवल तूने ही बुद्ध के गुणों का स्मरण कर रक्षा प्राप्त की है, पहले भी समुद्र में नौका के टूटने पर उपासकों ने बुद्ध के गुणों की याद कर रक्षा प्राप्त की।” इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में एक स्रोतापन्न आर्य-श्रावक, एक नाई गृहस्थ के साथ नौका पर चढ़ा। उस नाई की भार्या ने उस नाई को उपासक को सौंपा—आर्य ! इसके सुख दुःख का भार आप पर है।

सातवें दिन वह नौका समुद्र के बीच में टूट गई। वे दोनों जने एक तख्ते से चिमटे, एक द्वीप पर पहुँचे। वह नाई पक्षियों को मार कर, पका कर खाने के समय उपासक को भी देता। वह उपासक 'मुझे नहीं चाहिए' कह कर न खाता। वह सोचता त्रिरत्न की शरण को छोड़ कर हमारे लिए यहाँ कोई दूसरा सहारा नहीं। उसने त्रिरत्न के गुणों का स्मरण किया।

उसके स्मरण करते करते उस द्वीप के नागराज ने अपने शरीर की महान् नौका बनाई। समुद्र-देवता नौका चलाने वाला बना। नौका सात रत्नों से भरी गई। तीन मस्तूल थे। इन्द्रनीलमणि की जोतें। सोने के चप्पू। समुद्र-देवता ने नौका में खड़े होकर घोषणा की—क्या कोई जम्बूद्वीप जाने वाला है? उपासक बोला—हम जाएँगे? तो आ नौका पर चढ़। उसने नौका पर चढ़ नाई को आवाज दी। समुद्र देवता ने कहा—तुझे ही जाना मिलेगा। इसे नहीं। क्या कारण है? कारण यही है कि यह शीलवान् नहीं है। मैं नौका तेरे लिए लाया हूँ। इसके लिए नहीं।

“रहो। मैं अपने दिए दान का, रक्षा किए गए शील का, तथा भावना की गई भावना का इसे हिस्सेदार बनाता हूँ।”

“स्वामी! मैं अनुमोदन करता हूँ।”

“अब ले चलूंगा” कह देवता ने उसे भी चढ़ा, दोनों जनों को समुद्र में से निकाल, नदी से वाराणसी पहुँचा अपने प्रताप से उन दोनों के घर पर धन पहुँचा दिया। फिर, ‘पण्डित की ही संगति करनी चाहिए। यदि इस नाई की इस उपासक के साथ संगति नहीं होती, तो यह समुद्र के बीच में ही नष्ट हो जाता’ कहते हुए देवता ने पण्डित की संगति की महिमा बखानते हुए यह दो गाथाएँ कहीं—

पस्स सद्धाय शीलस्स चागस्स च अयं फलं
नागो नाबाय वण्णेन सद्धं बहति उपासकं ॥
सग्गिभरेव समासेथ सग्गि कुब्बेथ सन्धवं
सत्तं हि सग्गिवासेन सोत्थि गच्छति नहापितो ॥

[श्रद्धा, शील और त्याग के इस फल को देखो। नाग नौका की शकल बना कर श्रद्धावान् उपासक का वहन करता है। सत्पुरुष के साथ रहे, सत्पुरुष के ही साथ दोस्ती करे। सत्पुरुष के साथ रहने से नाई कल्याण को प्राप्त होता है।]

पस्स किसी विशेष को सम्बोधन न कर केवल देखने को कहता है । सद्भाव लौकिक तथा लोकोत्तर श्रद्धा से । शील में भी इसी प्रकार । चागस्स दान का त्याग तथा चित्तमैल का त्याग । अयं फलं यह फल । गुण या परिणाम अर्थ है । अथवा त्याग के फल को देखो । यह नाग नौका की शकल में, यह अर्थ भी समझना चाहिए । नावाय वण्णेन नौका के आकार से । सद्धं तीन रत्नों में प्रतिष्ठित श्रद्धा । सन्निभरेव पण्डितों के ही साथ । समासेव एक साथ रहे, निवास करे यही अर्थ है । कुम्बेव, करे । सन्धवं मित्रता, तृष्णा-पूर्ण दोस्ती तो किसी से न करनी चाहिए । नहापितो— नाई गृहस्थ । नहापितो यह भी पाठ है ।

इस प्रकार समुद्र देवता आकाश में ठहर, धर्मोपदेश दे तथा नसीहत कर, नागराजा को साथ ले अपने विमान को ही चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । आर्य-सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उपासक सकृदागामीफल में प्रतिष्ठित हुआ । तब स्रोतापन्न उपासक परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ । नागराजा सारिपुत्र । समुद्रदेवता तो मैं ही था ।

दूसरा परिच्छेद

५. रहक वर्ग

१९१. रहक जातक

“अम्भो रहक ! छिन्नापि . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पहली स्त्री से लुभाए जाने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कथा आठवें परिच्छेद की इन्द्रिय जातक^१ में आएगी । शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—“भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है । पहले भी इसने तुझे राजा सहित परिषद के बीच में लज्जित कर घर से बाहर निकलने के योग्य नहीं रक्खा ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए । बड़े होने पर, पिता के मरने के बाद राजा बन धर्म से राज्य करने लगे । उसका रहक नाम का पुरोहित था । रहक की पुराणी नाम की भार्य्या थी ।

राजा ने ब्राह्मण को, साज से सजाकर एक घोड़ा दिया । वह उस घोड़े पर चढ़ कर राजा की सेवा में जाता था । उसे अलङ्कृत घोड़े की पीठ पर आते जाते देख कर जहाँ तहाँ खड़े आदमी घोड़े की प्रशंसा करते थे—ओह ! अश्व का रूप कैसा है ! ओह ! अश्व कितना सुन्दर है !

^१ इन्द्रिय जातक (४२३) ।

उसने घर आ प्रासाद पर चढ़ भार्या को बुलाया—भद्रे ! हमारा घोड़ा बड़ा सुन्दर लगता है । दोनों ओर खड़े आदमी हमारे घोड़े की ही प्रशंसा करते हैं ।

वह ब्राह्मणी घोड़ी धूर्त थी । उसने उसे कहा—आर्य ! तू घोड़े के सौन्दर्य के कारण को नहीं जानता । यह घोड़ा अपने साज के कारण शोभा देता है । यदि तू भी अश्व की तरह सुन्दर लगना चाहता है, तो घोड़े का साज पहन, बाजार में उतर, अश्व की तरह पैरों की टाप देते हुए, जाकर राजा को देख । राजा भी तेरी प्रशंसा करेगा । आदमी भी तेरी ही प्रशंसा करेंगे ।

उस पगले ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, अमुक कारण से यह ऐसा कहती है न समझ, उसकी बात में विश्वास कर बैसा किया । जो जो देखते वे वे मजाक करते हुए कहते—आचार्य ! खूब शोभा देते हैं ।

राजा ने उससे पूछा—“आचार्य ! क्या पित्त प्रकोप हुआ है ? क्या तू पगला हो गया है ?” इस प्रकार लज्जित किया ।

उस समय ब्राह्मण ने सोचा ‘मैंने अनुचित किया ।’ वह लज्जित हुआ । ब्राह्मणी से क्रुद्ध हो, ‘उसने मुझे राजा सहित सेना के बीच में लज्जित किया’ सोच उसे पीट कर घर से निकालने के लिए घर गया । धूर्त ब्राह्मणी को जब मालूम हुआ कि वह उस पर क्रोधित होकर आया है, तो वह पहले ही छोटे दरवाजे से निकल राज-महल में जा पहुँची । वह चार पाँच दिन वहीं रही । राजा ने वह समाचार जान पुरोहित को बुला कर कहा—

“आचार्य ! स्त्री से दोष होता ही है । ब्राह्मणी को क्षमा करना चाहिए ।” उसे क्षमा दिलाने के लिए पहली गाथा कही—

अम्भो रहक छिन्नापि जिया संधीयते पुन,
सन्धीयस्स पुराणिमा मा कोषस्स वसं गमि ॥

[भो रहक ! धनुष की डोरी टूट कर फिर भी जुड़ जाती है । पुराण के साथ मेल कर लो । क्रोध के वशीभूत मत हो ।]

संक्षेपार्थ—भो रहक ! छिन्नापि धनुष की डोरी जुड़ ही जाती है । इसी प्रकार तू भी पुराणी के साथ सन्धीयस्स कोषस्स वसं मा गमि ।

उसे सुनकर रहक ने दूसरी गाथा कही—

विज्जमानासु मरुवासु विज्जमानेसु कारिसु
अञ्जं जियं करिस्सामि अलञ्जोव पुराणिया ॥

[मरुव नाम की छाल के रहते और बनाने वालों के रहते मैं दूसरी डोरी बनवा लूंगा। मुझे पुरानी की जरूरत नहीं।]

महाराज ! मरुव छाल और डोरी बनाने वाले मनुष्यों के रहते दूसरी डोरी बनवा लूंगा। इस टूटी हुई पुरानी डोरी की मुझे जरूरत नहीं। ऐसा कहूँ उसे निकाल दूसरी ब्राह्मणी को ले आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पुराणि पूर्व-भार्या थी। रहक उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। बाराणसी राजा तो मैं ही था।

१९२. सिरिकालकण्णि जातक

“इत्थी सिया रूपवती . . .” यह सिरिकालकण्णि जातक महाजम्मग जातक^१ में आएगी।

^१ महाजम्मग जातक ५४६

१९३. चुल्लपट्टम जातक

“अयमेव सा अहमपि सो अनञ्जो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, उद्विग्नचित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कथा उम्मदन्ति जातक^१ में आयेगी । शास्ता ने पूछा—“भिक्षु ! क्या सचमुच उद्विग्न-चित्त है ?”

“भगवान् ! सचमुच ।”

“तुझे किसने उद्विग्न किया है ?”

“भन्ते ! मैं एक अलङ्कृत सजीधजी स्त्री को देख कर आसक्त होने के कारण उद्विग्न हुआ हूँ ।”

“भिक्षु ! स्त्री अकृतज्ञ होती है, मित्रद्रोही होती है, कठोर हृदया होती है । पुराने पण्डित दाहिनी जाँघ का लहू पिलाकर भी, जीवनदान देकर स्त्री का चित्त न जीत सके ।”

शास्ता ने यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए । नामकरण के दिन उसका नाम पट्टमकुमार रखा गया । उसके और छः भाई थे । यह सातों जने क्रम से बड़े हो, विवाह कर राजा के मित्रों की तरह रहने लगे ।

एक दिन राजा ने राजांगण में खड़े होकर उन्हें बड़े ठाट बाट से राजा की सेवा में आते देख, सोचा—यह मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं । इस शंका से सशंकित

^१ उम्मदन्ति जातक (५२७) ।

हो उसने उन्हें बुलाकर कहा—तात ! तुम इस नगर में नहीं रह सकते । दूसरी जगह जाओ । मेरे मरने पर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना ।

वे पिता का कहना मान रोते पीटते घर गए । अपनी अपनी स्त्रियों को ले, जहाँ कहीं जाकर जीवन बिताने के लिए नगर से निकले । रास्ते चलते हुए वे एक कान्तार में पहुँचे । वहाँ खाना पीना न मिला । भूख न सह सकने के कारण उन्होंने सोचा, जीतें रहेंगे तो स्त्रियाँ मिलेंगी । सब से छोटे भाई की स्त्री को मारकर उसके तेरह टुकड़े कर उसका मांस खाया ।

बोधिसत्त्व ने अपने और भार्या के लिए मिले दो हिस्सों में से एक रख छोड़ा ; एक को दोनों ने खाया । इस प्रकार छः दिनों में छः स्त्रियों का मांस खाया गया । बोधिसत्त्व ने एक एक कर के छः दिनों में छः टुकड़े रख छोड़े । सातवें दिन 'बोधिसत्त्व की भार्या को मारेंगे' कहने पर बोधिसत्त्व ने वे छः टुकड़े उन्हें देकर कहा कि आज यह खाओ । कल देखेंगे ।

जिस समय वह मांस खाकर सो रहे थे, बोधिसत्त्व अपनी भार्या को लेकर भाग निकले । उसने थोड़ी दूर चलकर कहा स्वामी ! चल नहीं सकती हूँ । बोधिसत्त्व उसे कंधे पर लेकर सूर्योदय के समय कान्तार से निकले । सूर्योदय होने पर उसने कहा—स्वामी ! प्यास लगी है । बोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे ! पानी नहीं है । लेकिन बार बार माँगने पर बोधिसत्त्व ने अपनी दाहिनी जाँघ में तलवार का प्रहार कर कहा—भद्रे ! पानी नहीं है । यह मेरी दाहिनी जाँघ का लहू पी ले । उसने वैसा किया ।

वे क्रम से महानदी पर आए । पानी पी, नहा कर फलमूल खाते हुए, आराम करने की एक जगह पर विश्राम किया । फिर गङ्गा के मोड़ की जगह पर आश्रम बना कर रहने लगे ।

गङ्गा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ पाँव तथा नाक काट कर बोरे में बिठा गङ्गा में बहा दिया गया था । वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ लगा । बोधिसत्त्व ने उसकी कष्टपूर्ण रोने पीटने की आवाज सुन 'मेरे रहते कोई दुःख प्राप्त प्राणी नष्ट न हो' सोच गङ्गा किनारे जा, उसे उठा आश्रम पर ला, काषाय से धो लेप कर उसके जखमों की चिकित्सा की । उसकी भार्या घृणा से उस पर थूकती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुब्ध को गङ्गा से लाकर उसकी सेवा करते हैं ! ! !

उसके जखम ठीक होने पर बोधिसत्त्व उसे और अपनी भार्या को आश्रम पर छोड़, जंगल से फलमूल लाकर उसका तथा भार्या का पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुञ्जे से आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार किया। फिर किसी उपाय से बोधिसत्त्व को मार डालना चाहिए, सोच बोली—“स्वामी ! मैंने, तुम्हारे कन्धे पर बैठे हुए जिस समय कान्तार से निकल रही थी इस पर्वत को देख कर एक मिश्रत मानी थी—हे पर्वत-निवासी देवता ! यदि मैं और मेरा स्वामी सकुशल जीते निकल जाएँगे तो मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊँगी। सो, वह देवता जिसकी मिश्रत मानी थी तंग करता है। उसकी बलि दें।”

बोधिसत्त्व उसकी माया नहीं जानते थे। उन्होंने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया; और बलिकर्म तैयार कर उससे बलि-पात्र उठवा पर्वत पर चढ़े।

उस स्त्री ने बोधिसत्त्व से कहा—“स्वामी ! देवता से भी बढ़कर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हें ही वन-पुष्पों से पूज, प्रदक्षिणा कर, वन्दना कर पीछे देवता की बलि दूँगी।” उसने बोधिसत्त्व को प्रपात की ओर कर वन-पुष्पों से पूजा की। फिर प्रदक्षिणा कर, प्रणाम करने वाली की तरह हो, पीछे जा, पीठ में धक्का दे, प्रपात से गिरा दिया। ‘शत्रु की पीठ देख ली’ सोच सन्तुष्ट हो, वह पर्वत से उतर लुञ्जे के पास गई। बोधिसत्त्व भी प्रपात के किनारे से पर्वत से गिरते हुए, एक गूलर के वृक्ष पर पत्तों से ढके कण्टकरहित गुम्ब में जा लगे। पर्वत से नीचे उतरने में असमर्थ थे। वह गूलर खाकर शाखाओं के बीच में बैठे रहे।

एक गोह, जिसका शरीर बड़ा था, पर्वत के नीचे से उस गूलर के पेड़ पर चढ़ फल खाता था। वह उस दिन बोधिसत्त्व को देखकर भाग गया। अगले दिन आया और एक ओर से फल खाकर चला गया। इस प्रकार बार बार आने से जब वह बोधिसत्त्व का विश्वासी हो गया तो उसने पूछा—“तू इस जगह कैसे आया ?” “इस कारण से” बताने पर उसने कहा—“तो मत डर।” उसने बोधिसत्त्व को अपनी पीठ पर लिटा, उतार कर जंगल से निकल, महामार्ग पर ले जाकर कहा—“इस मार्ग से जा।” बोधिसत्त्व को उत्साहित कर वह स्वयं जंगल में चला गया।

बोधिसत्त्व एक गामड़ में जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए, पिता के मरने

का समाचार मिला । वह बाराणसी पहुँच कुलागत राज्य पर अधिकार कर, पदुम-राजा नाम से, दस राजघर्मों से विरुद्ध न जा धर्म से राज्य करने लगे । चारों नगर-द्वारों पर, नगर के बीच में तथा महल के द्वार पर छ दानशालाएँ बनवा प्रति दिन छ हजार खर्च कर दान देते ।

वह पापी स्त्री भी उस लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जंगल से निकल बस्तियों में भिक्षा माँग कर यागु-भात इकट्ठा कर उस लुञ्जे को पोसती थी । उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है, तो वह उत्तर देती—“मैं इसके मामा की लड़की हूँ और यह मेरी बुआ का लड़का है । मैं इसीको दी गई । सो मैं अपने स्वामी को—जो इस तरह दण्डित भी किया गया है—उठाए लिए फिर कर, भीख माँग कर पालती हूँ ।” मनुष्यों ने समझा—यह पतिव्रता है । उसके बाद और भी यवागु-भात देने लगे । दूसरों ने कहा—“तू इस तरह मत घूम । पदुमराज बाराणसी में राज्य करता है । सारे जम्बूद्वीप को उद्वेलित कर दान देता है । वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा । बहुत धन देगा ।” उन्होंने उसे एक बेत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को इसमें बिठा कर ले जा । वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेत की टोकरी में बिठा, टोकरी को उठा बाराणसी पहुँच वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी ।

बोधिसत्त्व अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठ, दानशाला जा, वहाँ आठ या दस को अपने हाथ से दान देकर घर जाते । वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को टोकरी में बिठा, टोकरी उठा, राजा के रास्ते में खड़ी हुई । राजा ने देखकर पूछा—“यह क्या है ?”

“देव ! एक पतिव्रता है ।”

उसे बुलवा कर, पहचान कर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवा कर पूछा—“यह तेरा क्या लगता है ?”

“देव ! यह मेरी बुआ का लड़का है । कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है । यह मेरा स्वामी है ।”

मनुष्य उनके बीच के भेद को न जानते थे । वे उस अनाचारिणी की प्रशंसा करने लगे—ओह ! पतिदेवता !

राजा ने फिर उससे पूछा—“तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है ? यह तेरा स्वामी है ?”

उसने राजा को न पहचानते हुए बीर बन कर कहा—“देव ! हाँ ।”

तब राजा ने उससे पूछा—“क्या यह बाराणसी राजा का पुत्र है? क्या तू पट्टम-कुमार की भाय्या अमुक राजा की अमुक नाम की लड़की नहीं है? मेरी जाँघ का लहू पीकर इस लुञ्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात से गिरा दिया। वह तू अब अपने सिर पर मृत्यु ले मुझे मरा समझ यहाँ आई है? मैं जीता हूँ।” इतना कह, अमात्यों को बुला राजा ने कहा—“अमात्यो ! क्या मैंने तुम लोगों के पूछने पर यह नहीं कहा था कि मेरे छ छोटे भाइयों ने छ स्त्रियों को मार कर मांस खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गङ्गा किनारे लाकर एक आश्रम में रहते हुए, एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जे को (पानी से) निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत पर से गिरा दिया। मैं अपने मैत्रीचित्त के कारण नहीं मरा। जिसने मुझे पर्वत से गिराया था, वह कोई और नहीं थी; यही दुराचारिणी थी। जो दण्ड-प्राप्त लुञ्जा था, वह भी कोई दूसरा न था, यही था।”

यह कह यह गाथाएँ कहीं—

अयमेव सा अहमपि सो अनञ्जो,
अयमेव सो हृत्थच्छिन्नो अनञ्जो
यमाह कोमारपती ममन्ति,
बज्जित्थियो नत्थि इत्थीसु सच्चं ॥
इमञ्च जम्मं मुसलेन हन्त्वा,
लुइं छवं परदारूपसेवि;
इमिस्सा च नं पापपतिब्बताय,
जीवन्तिथा छिन्दथ कण्णनासं ॥

[यही वह है। मैं भी वही हूँ। यह हाथ कटा भी वही है। दूसरा नहीं है जिसे ‘यह मेरा कोमारपति’ कहती है। स्त्रियाँ बध्य करने योग्य हैं। उनमें सत्य नहीं होता।

इस नीच-लोभी, मृतसदृश, पराई स्त्री का सेवन करने वाले को मूसल से मार डालो। और इस पापी पतिव्रता के जीते जी (इसके) कान नाक काट डालो।]

यमाह कोमारपती ममं, जिसे यह मेरा कोमारपति, जिसे मैं कुल द्वारा सौंपी

गई, स्वामी कहती है। अयमेव सो न अञ्जो। यमाहु कुमारपति, यह भी पाठ है। यही पुस्तकों में लिखा है। उसका भी यही अर्थ है। वचन-भेद मात्र है। जो राजा ने कहा, वही यहाँ आ गया। वज्रिस्थियो, स्त्रियाँ बध्य होती हैं, बध करने के योग्य ही होती हैं। नस्थि इत्थीसु सच्चं, इनका स्वभाव एक नहीं रहता। इमञ्च जम्मं, यह उन दोनों को दण्ड आज्ञा देने के लिए कहा।

जम्मं, नीच। मूसलेन हत्त्वा, मूसल से मारकर, पीटकर, हड्डियों को तोड़कर, चूर्ण विचूर्ण करके। लुहं कठोर। छबं निर्णुग होने से निर्जीव मृत-सदृश। इमिस्सा च नं, इसमें नं निपातमात्र है। इसके पापपतिब्बताय अनाचारिणी दुस्शीला के जीवन्तियाव कण्णं नासं छिन्दथ।

बोधिसत्त्व ने क्रोध को न सम्भाल सकने के कारण उनको ऐसे दण्ड की आज्ञा दे दी; लेकिन वैसा करवाया नहीं। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बँधवाया कि वह उतार न सके। फिर उस लुञ्जे को उसमें फिकवा उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय छ भाई कोई स्थविर थे। भाय्यां चिञ्चामाणविका थी। लुञ्जा देवदत्त था। गोहराज आनन्द था। पदुमराज तो मैं ही था।

१९४. मणिचोर जातक

“न सन्ति देवा पवसन्ति नून...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय बध का प्रयत्न करने वाले देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कर कि देवदत्त मेरे बध के लिए प्रयत्न करता है, “भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी देवदत्त ने मेरे बध का प्रयत्न किया ही है, लेकिन सफल नहीं हुआ” कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वाराणसी के समीप के एक गामड़े में गृहपति कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर उसके लिए वाराणसी से एक लड़की लाई गई। वह प्रिया थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी देवअप्सराओं के समान वा पुष्पित लता के समान। वह मस्त किन्नरी की तरह क्रीड़ा करने वाली थी। नाम था सुजाता। पतिव्रता थी; सदाचारिणी थी और थी कर्तव्यपरायणा। पति की सेवा तथा सास ससुर की सेवा वह नित्य करती थी। वह बोधिसत्त्व को प्रिय थी, मन के अनुकूल थी।

वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक एक चित्त हो मेल से रहते थे।

एक दिन सुजाता ने बोधिसत्त्व से कहा—मैं मातापिता को देखना चाहती हूँ। उसने कहा—भद्रे! अच्छा पर्याप्त पाथेय तैयार करो। खाद्य-पकवान पकवा, खाद्य आदि गाड़ी पर रखवा, गाड़ी को हांकता हुआ वह स्वयं आगे बैठा। वह पीछे बैठी। नगर के समीप पहुँच गाड़ी खोल नहा कर उन्होंने खाया। फिर बोधिसत्त्व ने गाड़ी जोती और स्वयं आगे बैठा। सुजाता कपड़े बदल अलंकृत हो पीछे बैठी। जिस समय गाड़ी ने नगर में प्रवेश किया, उसी समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ वाराणसी नरेश उधर आ निकला।

सुजाता उतर कर गाड़ी के पीछे पीछे पैदल चल रही थी। राजा ने उसे देख, उसके सौन्दर्य पर ऐसे मुग्ध हो मानो वह उसकी आँखें खींच ले रहा हो, एक अमात्य को भेजा कि पता लगाए कि उसका स्वामी है वा नहीं? उसने जाकर पता लगाया कि उसका स्वामी है और आकर निवेदन किया—“देव! वह विवाहिता है। गाड़ी में बैठा हुआ आदमी उसका स्वामी है।”

राजा अपनी आसक्ति को हटाने में असमर्थ था। उसने कामातुर हो सोचा, किसी उपाय से इस आदमी को मरवा कर स्त्री को लूंगा; और एक आदमी को बुलाकर कहा—“अरे! यह चूड़ामणि ले जाकर रास्ते चलते हुए की तरह जाते हुए इसे इस आदमी की गाड़ी में फेंक कर आओ।” उसे चूड़ामणि देकर भेजा। उसने ‘अच्छा’ कह उसे ले जाकर गाड़ी में डाल आकर कहा—“देव! मैंने डाल दी।” राजा ने कहा—मेरी चूड़ामणि खो गई। लोगों ने शोर मचा दिया। राजा ने आज्ञा दी—“सब दरवाजों को बन्द कर, रास्ते रोक कर चोर का पता लगाओ।” राजपुरुषों ने वैसा ही किया। नगर एक सिर से क्षुब्ध हो गया। एक जन आदमियों को लेकर बोधिसत्व के पास जा बोला—“अरे! गाड़ी रोको। राजा की चूड़ामणि खो गई है। गाड़ी की तलाशी लेंगे।” उसने गाड़ी की तलाशी लेते हुए अपनी रक्खी हुई मणि उठा, बोधिसत्व को पकड़, ‘यह मणि-चोर है’ कहते हुए हाथों और पांवों से पीट, उसके हाथों को पिछली तरफ बांध उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया—यह मणि-चोर है। राजा ने आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

राजपुरुष उसे चार चार बेटों से पीटते हुए नगर से बाहर ले गए।

सुजाता भी गाड़ी छोड़ दोनों हाथ उठा ‘मेरे कारण स्वामी इस दुःख को प्राप्त हुए’ कह रोती पीटती उसके पीछे पीछे चली। राज पुरुषों ने बोधिसत्व का सिर काटने के लिए उसे सीधे लिटाया। उसे देख सुजाता ने अपने सदाचार का ध्यान कर “मालूम होता है इस लोक में कोई ऐसा देवता नहीं है जो पापी दुस्साहसियों को सदाचारियों पर अत्याचार करने से रोक सके” कह, रोते पीटते पहली गाथा कही—

न सन्ति ब्रह्मा पवसन्ति नून
नहनून सन्ति इध लोकपाला
सहसा करोन्तानं असञ्ज्जतानं
नहनून सन्ति पटिसेधितारो ॥

[असंयमी, दुस्साहसिक दुष्कर्म करने वालों को रोकने वाले न देवता हैं (यदि हैं तो समय पर चले जाते हैं) न ही यहाँ लोकपाल हैं—उन्हें रोकने वाला कोई नहीं ।]

न सन्ति ब्रह्मा इस लोक में सदाचारियों की देख भाल करने वाले तथा पापियों को रोकने वाले देवता नहीं हैं । पबसन्ति नून, अथवा इस प्रकार के मौकों पर वह निश्चय से प्रवास को चले जाते हैं । इष लोकपाला, इस लोक में लोकपाल कहलाने वाले श्रमण-ब्राह्मण भी सदाचारियों पर अनुग्रह करने वाले नह नून सन्ति । सहसा करोन्तान् असञ्जतान्, सहसा बिना विचारे दुस्साहस, कठोर-कर्म करने वाले दुराचारियों को । पटिसेचित्तारो इस प्रकार का कर्म मत करो । ऐसा करना नहीं मिलेगा—इस प्रकार रोकने वाले नहीं ।

इस प्रकार उस सदाचारिणी के रोने पीटने से देवेन्द्र शक्र का आसन गर्म हुआ । शक्र ने सोचा कौन है जो मुझे मेरे आसन से गिराना चाहता है ? पता लगाने से जब उसे यह कारण मालूम हुआ तो उसने सोचा—‘वाराणसी नरेश अत्यन्त निर्दयता का काम कर रहा है । सदाचारिणी सुजाता को कष्ट दे रहा है । अब मुझे पहुँचना चाहिए ।’ उसने देवलोक से उतर अपने प्रताप से हाथी की पीठ पर जाते हुए उस पापी राजा को उतार सीस काटने की जगह पर सीधा लिटा, बोधिसत्त्व को उठा सब अलंकारों से अलङ्कृत कर राजवेष पहना हाथी के कन्धे पर बिठाया । फरसा उठा कर खड़े सीस काटने वालों ने राजा का सिर काट दिया । सीस कट जाने पर ही उन्हें पता लगा कि यह राजा का सिर था ।

देवेन्द्र शक्र ने दिखाई देने वाले शरीर से बोधिसत्त्व के पास जा बोधिसत्त्व को राज्याभिषेक तथा सुजाता को अग्रमहिषीपद दिलवाया । अमात्य तथा ब्राह्मण-गृहपति आदि देवेन्द्र शक्र को देखकर प्रसन्न हुए—अधार्मिक राजा मारा गया । अब हमें शक्र का दिया हुआ धार्मिक राजा प्राप्त हुआ । शक्र ने भी आकाश में खड़े हो कहा—“यह शक्र का बनाया हुआ राजा अब से धर्मपूर्वक राज्य करेगा । यदि राजा अधार्मिक होता है तो वर्षा असमय होती है, समय पर नहीं होती है, अकाल-भय तथा शस्त्र-भय बना ही रहता है ।” इस प्रकार उपदेश देते हुए शक्र ने दूसरी गाथा कही—

अकाले वस्सति तस्स काले तस्स न वस्सति
सग्गा च चवत्तिट्ठाना ननु सो तावता हतो॥

[उसके राज्य में असमय वर्षा होती है, समय पर नहीं होती। वह स्वर्ग-स्थान से गिरता है। निश्चय से वह उतने से मारा गया।]

अकाले, अधार्मिक राजा के राज्य करने के समय—अनुचित समय पर खेती के पकने के समय या कटाई तथा मर्दन करने के समय बेब वस्सति। काले, योग्य समय पर, बौने के समय, खेती छोटी रहने के समय वा दाना पड़ने के समय न वस्सति। सग्गा च चवत्तिट्ठाना, स्वर्ग-स्थान से अर्थात् देवलोक से। अधार्मिक राजा अप्रति-लाभ होने से देवलोक से च्युत होता है। यह भी अर्थ है कि स्वर्ग में भी राज्य करता हुआ अधार्मिक राजा वहाँ से च्युत होता है। ननु सो तावता हतो, निश्चय से वह अधार्मिक राजा इससे मारा जाता है। अथवा “नु” यहाँ एकांतवाची है; न केवल वह इतने से मारा गया; बल्कि वह आठ महा नरकों में तथा सोलह उस्सद नरकों में चिरकाल तक मारा जाएगा।

इस प्रकार शक्र जन-समूह को उपदेश दे अपने देवस्थान को ही चला गया। बोधिसत्त्व ने भी धर्म से राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय अधार्मिक राजा देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। सुजाता राहुल-माता थी। शक्र का बनाया हुआ राजा तो मैं ही था।

१९५. पञ्चतूपत्थर जातक

“पञ्चतूपत्थरे रम्भे . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के एक अमात्य ने रनिवास को दूषित किया । राजा ने खोज करके उसे ठीक ठीक जान शास्ता को निवेदन करने की इच्छा से जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—“भन्ते ! हमारे रनिवास को एक अमात्य ने दूषित किया है । उसको क्या करना चाहिए ?” शास्ता ने पूछा—“महाराज ! वह अमात्य उपकारी है ? वह स्त्री प्रिया है ?”

“हाँ भन्ते ! बहुत उपकारी है । सारे राजकुल को सँभालता है । वह स्त्री भी मेरी प्रिया है ।”

“महाराज ! अपने उपकारी सेवकों के प्रति तथा प्रिया स्त्री के प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता । पूर्व समय में भी राजा लोग पण्डितों की बात सुन उपेक्षावान् हो गए थे ।”

उनके याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल में पैदा हो बड़े होने पर उस राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए । उस राजा के एक अमात्य ने रनिवास दूषित किया । राजा ने उसका ठीक ठीक पता लगा सोचा—“अमात्य भी मेरा बहुत उपकारी है । यह स्त्री भी प्रिया है । मैं इन दोनों को नष्ट नहीं कर सकता । पण्डित-अमात्य से प्रश्न पूछकर यदि सहन करने योग्य होगा तो सहन कर लूँगा ! नहीं सहन करने योग्य होगा तो नहीं सहन करूँगा ।” उसने बोधिसत्त्व को बुला, आसन दे पूछा—

“पण्डित ! प्रश्न पूछता हूँ ।”

“महाराज ! पूछें, उत्तर दूंगा ।”

राजा ने प्रश्न पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

पद्मनूपत्थरे रम्मे जाता पोक्करिणी सिवा
तं सिगालो अपापासि जानं सीहेन रक्खितं ॥

[पर्वत के रम्य दामन में सुन्दर पुष्करिणी रही । यह जानते हुए भी कि इसे सिंह ने अपने लिए सुरक्षित रक्खा है, उसमें शृगाल ने पानी पिया ।]

पद्मनूपत्थरे हिमालय पर्वत के दामन में फैले हुए आंगन में जाता पोक्करिणी सिवा, शीतल, मधुर, जल वाली पुष्करिणी पैदा हुई । कमल से ढकी हुई नदी भी पुष्करिणी ही । अपापासि, अप उपसर्ग है अपासि अर्थ है । जानं सीहेन रक्खितं, यह पुष्करिणी सिंह के परिभोग की है, सिंह के द्वारा रक्षित है; उस शृगाल ने यह जानते हुए ही कि यह सिंह द्वारा रक्षित है जल पिया । तू क्या समझता है ? शृगाल सिंह का भय न मान कर इस प्रकार की पुष्करिणी से जल पिए ?

बोधिसत्त्व ने यह समझ कर कि निश्चय से इसके रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित किया होगा, दूसरी गाथा कही—

पिपन्ति बे महाराज ! सापवानि महानदि
न तेन अनदी होति खमस्सु यदि ते पिया ॥

[महाराज ! महानदी पर सभी प्राणी जल पीते हैं । उससे नदी अनदी नहीं होती । यदि वह प्रिया है, तो क्षमा करें ।]

सापवानि न केवल गीदड़ ही किन्तु चीते, कुत्ते, खरगोश, बिल्ले, हिरन आदि सभी प्राणी कमल से ढकी हुई होने के कारण पुष्करिणी कहलाने वाली नदी पर पानी पीते ही हैं । न तेन अनदी होति, नदी पर दो पैरों वाले, चार पैरों वाले साँप-मत्स्य आदि सभी प्यासे पानी पीते हैं । उससे वह न अनदी होती है, न जूठी । क्यों ? सब के लिए साधारण होने से । जिस प्रकार नदी जिस किसी के पानी पीने से

दूषित नहीं होती उसी प्रकार स्त्री भी कामुकता के वशीभूत हो अपने पति के अति-रिक्त किसी दूसरे से सहवास करने से अनिस्त्री नहीं होती। क्यों? सब के लिए साधारण होने से। न हि स्त्री जूठी होती है। क्यों? जल-स्नान से शुद्ध हो सकने के कारण। **समस्सु यदि ते पिया, यदि वह स्त्री तुझे प्रिया है तथा वह अमात्य बहुत उपकारी है; उन दोनों को क्षमा कर। उपेक्षावान् हो।**

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने उसका उपदेश मान 'फिर ऐसा पापकर्म न करना' कह दोनों को क्षमा किया। उसके बाद से वह विरत रहे।

राजा भी दानादि पुण्य कर्म करते हुए मरने पर स्वर्ग सिधारे। कोशल नरेश भी यह धर्मदेशना सुन उन दोनों को क्षमा कर उपेक्षावान् हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१९६. बालाहस्स जातक

“ये न काहं-ती ओबाबं. . .” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारें में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—“क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?” “सचमुच” कहने पर पूछा—किस कारण से उत्कण्ठित है? उसने उत्तर दिया—“एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण।” शास्ता ने कहा—“भिक्षु! स्त्रियाँ अपने रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श तथा हासविलास से पुरुषों को आसक्त कर, जब उन्हें अपने वश में हुआ समझती हैं, तो उनका शील

और धन नष्ट कर डालती हैं। इसीसे यह यक्षिणियाँ कहलाती हैं। पहले भी यक्षिणियों ने स्त्रियों के हासविलास से एक काफल के पास जा, व्यापारियों को आकृष्ट कर, अपने वशीभूत कर, फिर दूसरे आदमियों को देख पहले के सब आदमियों को मार डाला। और दोनों दाढ़ों से रक्त बहाते हुए, उन्हें मुरमुरे की तरह खा डाला।” इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में ताम्रपर्णी द्वीप में सिरिसवत्थु नाम का यक्षों का नगर था। वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं। जिन व्यापारियों की नौकाएँ टूट जातीं, उनके आने पर वे सजसजा कर खाद्य-भोज्य लिवा, दासियों से घिरी हुई तथा गोद में बच्चों को उठाए व्यापारियों के पास जातीं। उन पर यह प्रकट करने के लिए कि वे मनुष्य-निवास में आए हैं, जहाँ तहाँ कृषि, गोरक्षा आदि करते हुए आदमी, गौएँ, कुत्ते आदि दिखातीं। व्यापारियों के पास जाकर कहतीं—यह यवागु पीएँ। भोजन करें। खाद्य खाएँ। व्यापारी न जानने के कारण उनका दिया खा लेते।

उनके खा-पीकर विश्राम करने के समय उनसे कुशल क्षेम पूछतीं—“आप कहाँ के रहने वाले हैं? कहाँ से आए हैं? कहाँ जाएँगे? यहाँ किस कार्य से आए?” वे कहते कि नौका टूट जाने के कारण इधर आये। तब वे कहतीं—“आर्यों! अच्छा! हमारे स्वामियों को भी नौका पर चढ़ कर गए तीन वर्ष हो गए। वे मर गए होंगे। आप लोग भी व्यापारी ही हैं। हम आपकी चरण-सेविकाएँ होकर रहेंगी।”

इस प्रकार वे उन व्यापारियों को स्त्रियों के हासविलास से आसक्त कर यक्ष-नगर ले जातीं। यदि पहले से पकड़े हुए आदमी (अभी जीवित) होते, तो उन्हें जादू की जंजीर से बांध कारा-गृह में डाल देतीं। जब उन्हें अपने निवास-स्थान पर ऐसे आदमी जिनकी नौकाएँ टूट गई हों, न मिलते तो उधर कल्याणि (नदी) और इधर नाग द्वीप—इन दोनों के बीच में समुद्र तट पर घूमतीं। यही उनका स्वभाव था।

एक दिन पांच सौ ऐसे व्यापारी जिनकी नौकाएँ टूट गई थीं, उनके नगर के पास उतरे। वे उनके पास गई और उन्हें लुभा कर यक्ष-नगर ला पहले जिन आदमियों को पकड़ा था; उन्हें जादू की जंजीर में बांध कारा-गृह में डाल दिया।

ज्येष्ठ यक्षिणी ने ज्येष्ठ व्यापारी को शेष यक्षिणियों ने शेष व्यापारियों को; इस प्रकार उन पाँच सौ यक्षिणियों ने पाँच सौ व्यापारियों को अपना पति बनाया।

वह ज्येष्ठ यक्षिणी रात को जिस समय व्यापारी सोए रहते उठ कर जा कारा-गृह में आदमियों को मार उनका मांस खाकर आती। बाकी भी उसी तरह करतीं। ज्येष्ठ यक्षिणी जिस समय मनुष्य-मांस खाकर लौटती उसका शरीर ठंडा होता। ज्येष्ठ व्यापारी ने उसका स्पर्श किया तो उसे पता लगा कि यह यक्षिणी है। उसने सोचा यह पाँच सौ भी यक्षिणियाँ ही होंगी। हमें भागना चाहिए।

अगले दिन प्रातःकाल ही मुंह धोने जाकर उसने बाकी व्यापारियों को कहा—“यह मानवी नहीं है। यह यक्षिणियाँ हैं। दूसरे नौका-टूटे व्यापारियों के आने पर उन्हें स्वामी बना हमें खा डालेंगी। हम यहाँ से भागें।”

उनमें से ढाई सौ बोले—“हम इन्हें नहीं छोड़ सकते। तुम जाओ। हम नहीं भागेंगे।”

ज्येष्ठ व्यापारी अपनी बात मानने वाले ढाई सौ जनों को ले उनसे डर कर भाग गया।

उस समय बोधिसत्त्व बादल-अश्व की योनि में पैदा हुए थे। सारा रंग श्वेत। सिर कौए जैसा। बाल मूँज के से। ऋद्धिमान। आकाशचारी। वह हिमालय से आकाश में चढ़ कर ताम्रपर्णी द्वीप जा वहाँ ताम्रपर्णी तालाब के कीचड़ में अपने से उग्न हुए धान खाकर लौटता। इस प्रकार जाते हुए वह दया से प्रेरित हो तीन बार मानुषी-वाणी बोलता—“कोई जनपद जाने वाला है? कोई जनपद जाने वाला है?”

उन्होंने उसकी बात सुन, पास जा हाथ जोड़ कर कहा—“स्वामी! हम जनपद जाएँगे।”

“तो मेरी पीठ पर चढ़ो।”

कुछ चढ़े। कुछ ने पूँछ पकड़ी। कुछ हाथ जोड़े खड़े ही रहे। बोधिसत्त्व अपने प्रताप से सभी ढाई सौ व्यापारियों को, जो हाथ जोड़े खड़े थे उन तक को जनपद ले गए। वहाँ उन्हें उन उनके स्थान पर पहुँचा स्वयं अपने निवास-स्थान को गए। वह यक्षिणियाँ भी औरों के आने पर उन ढाई सौ व्यापारियों को जो पीछे रह गए थे मार कर खा गईं।

शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा—“भिक्षुओ, जैसे उन यक्षिणियों

के वशीभूत हुए व्यापारी विनाश को प्राप्त हुए, बादल-अश्व-राज का कहना मानने वाले अपने अपने स्थान पर पहुँच गए, इसी प्रकार बुद्धों के उपदेश के अनुसार न चलने वाले भिक्षु, भिक्षुणियाँ तथा उपासक और उपासिकाएँ भी चारों नरकों तथा पांच प्रकार के बन्धन, दण्ड आदि से महान् दुःख को प्राप्त होते हैं। उपदेश मानने वाले तीन कुल-सम्पत्तियाँ,^१ छः काम-स्वर्ग तथा बीस ब्रह्मलोकों को प्राप्त हो, अमृत महानिर्वाण को साक्षात् कर महान् सुख का अनुभव करते हैं।” अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

ये न काहन्ति ओवावं नरा बुद्धेन वेसितं, २
व्यसनं ते गमिस्सन्ति रक्खसीहीव वाणिजा ॥१॥
ये च काहन्ति ओवावं नरा बुद्धेन वेसितं,
सोत्थि पारंगमिस्सन्ति बालाहेनेव वाणिजा ॥२॥

[जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते वे उसी तरह दुःख को प्राप्त होते हैं जैसे राक्षसियों द्वारा व्यापारी। जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं वे उसी तरह सुकुशल पार पहुँच जाते हैं जैसे बादल (के अश्व) की सहायता से व्यापारी।]

ये न काहन्ति जो नहीं करेंगे। व्यसनं ते गमिस्सन्ति, वे महान् दुःख को प्राप्त होंगे। रक्खसीहीव वाणिजा, राक्षसियों द्वारा लुभाए गए व्यापारियों की तरह। सोत्थि पारंगमिस्सन्ति, बिना किसी विघ्न के निर्वाण को प्राप्त करेंगे। बालाहेनेव वाणिजा बादल के घोड़े के ‘आओ’ कहने पर उसका कहना मानने वाले व्यापारियों की तरह। जैसे वह समुद्र पार जाकर अपने अपने स्थान पर पहुँच गए; उसी प्रकार बुद्धों का उपदेश मानने वाले संसार को पार कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। अमृत महानिर्वाण से धर्मदेशना को समाप्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापति

^१ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य।

फल में प्रतिष्ठित हुआ। और भी बहुतों को खोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत फल प्राप्त हुआ।

उस समय बादल अश्व-राज का कहना मानने वाले ढाई सौ व्यापारी बुद्ध-परिषद थे। बादल अश्व-राज तो मैं ही था।

१९७. मितामिस्त जातक

“न नं उम्हयते विस्वा . . .” यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु ने यह समझ कि मेरे ले लेने पर मेरा उपाध्याय बुरा नहीं मानेगा, विश्वास कर उसके रखे हुए एक वस्त्र-खण्ड को ले उससे जूता रखने की थैली बना ली। पीछे उपाध्याय को कहा। उपाध्याय ने पूछा—“क्यों लिया?”

“मेरे लेने से आप क्रोधित नहीं होंगे; आपका ऐसा विश्वास करके।”

उपाध्याय ने क्रोध से उठकर पीटा—“तो मेरा विश्वास क्या है?”

उसकी वह करनी भिक्षुओं में प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—“आयुष्मानो! अमुक तरुण-भिक्षु ने उपाध्याय का विश्वास कर वस्त्र-खण्ड ले उससे जूता रखने की थैली बनाई। उपाध्याय ने ‘तेरा मेरा क्या विश्वास है’ कह क्रोध से उठकर पीटा।”

शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?”

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ, यह भिक्षु न केवल अभी अपने शिष्य का अविश्वासी है, पहले भी अविश्वासी ही था।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर गण के नेता हो वह हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उन ऋषियों के समूह में एक तपस्वी था, जो बोधिसत्त्व का कहना न मान एक हाथी के बच्चे को जिसकी माँ मर गई थी, पालता था। बड़े होने पर वह उस तपस्वी को मार जंगल में चला गया। उसका शरीर-कृत्य कर ऋषियों ने बोधिसत्त्व को घेर कर पूछा—“भन्ते ! मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है ?”

बोधिसत्त्व ने ‘इस इस बात से’ कहते हुए यह गाथा कही—

न नं उम्हयते दिस्वा न च नं पटिनन्दति
चक्खूनि चस्स न ददाति पटिलोमञ्च वत्तति ॥१॥

एते भवन्ति आकारा अभित्तस्मि पतिट्ठता
येहि अभित्तं जानेय्य दिस्वा सुत्वा च पण्डितो ॥२॥

[न उसे देखकर मुस्कराता है, न प्रसन्न होता है। न उसकी ओर आँख करता है; और उलटा बर्तता है। ये अमित्र के रंगढंग हैं, उन्हें देखकर सुनकर पण्डित आदमी को अपने अमित्र को पहचानना चाहिए]

न नं उम्हयते दिस्वा जो जिसका अमित्र होता है वह उसे देखकर न मुस्कराता है, न हँसता है; प्रसन्नाकार प्रदर्शित नहीं करता। न च नं पटिनन्दति उसकी बात सुनकर उसे आनन्द नहीं होता, ‘अच्छा’ कहा है, ‘सुभाषित है’ (कह) अनुमोदन नहीं करता। चक्खूनि चस्स न ददाति, आँख से आँख मिलाकर सामने नहीं देखता, आँख दूसरी ओर ले जाता है। पटिलोमञ्च वत्तति उसका कार्य-कर्म अथवा वाणी का कर्म भी उसे अच्छा नहीं लगता; विरोधी भाव ही ग्रहण करता है। आकारा, बातें। येहि अभित्तं जिन बातों से वे बातें। दिस्वा च सुत्वा च पण्डितो आदमी को चाहिए कि पहचान करे कि यह मेरा अमित्र है। इससे विरुद्ध बातों से मित्र-भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व मित्र तथा अमित्र के लक्षण कह ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी को पालने वाला तपस्वि शिष्य था। हाथी उपाध्याय था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद् थी। गण का नेता तो मैं ही था।

१९८. राध जातक^१

“पवासा आगतो तात...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—“भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?”

“भन्ते ! सचमुच।”

“किस कारण से?”

“एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता के कारण।”

“भिक्षु, स्त्री की जाति की सँभाल नहीं की जा सकती। पूर्व समय में द्वारपाल रखकर हिफाजत करने वाले भी हिफाजत नहीं कर सके। तुझे स्त्री से क्या ? मिलने पर भी उनकी हिफाजत नहीं की जा सकती।” इतना कह शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

^१ राध जातक (१४५)

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तोते की योनि में पैदा हुए। उसका नाम था राध। उसके छोटे भाई का नाम था पोठु-पाद। उन दोनों को ही, जब वह छोटे ही थे एक चिड़ीमार ने पकड़ कर वाराणसी के एक ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने उन्हें पुत्र की तरह पाला। उसकी ब्राह्मणी दुराचारिणी थी, उसकी हिफाजत नहीं की जा सकती थी।

ब्राह्मण ने व्यापार करने के लिए जाते समय उन तोते-बच्चों को बुलाकर कहा—“तात ! मैं व्यापार के लिए जाता हूँ। समय असमय तुम अपनी माता की करनी पर नज़र रखना। दूसरे आदमी का अन्दर आना जाना देखना” इस प्रकार वह उन तोते-बच्चों को ब्राह्मणी सौंप कर गया।

वह उसके बाहर जाने के समय से ही अनाचार करने लगी। रात को भी, दिन को भी आने जाने वालों की सीमा न रही। उसे देख पोठुपाद ने राध से कहा—“ब्राह्मण इस ब्राह्मणी को हमें सौंप कर गया। यह पाप-कर्म करती है। मैं इसे मना करूँ ?” राध ने कहा—“मत बोल।” वह उसका कहना न मान बोला—“अम्म ! तू पापकर्म किस लिए करती है ?”

उसने उसे मार डालने की इच्छा से कहा—“तात ! तू मेरा पुत्र है। अब से न करूँगी। जरा, यहाँ आ।” इस प्रकार प्यार करती हुई की तरह उसे बुलाकर, आने पर पकड़ लिया। फिर ‘तू मुझे उपदेश देता है। अपनी हैसियत नहीं देखता ?’ कह, गरदन मरोड़ मारकर चूल्हे में फेंक दिया। ब्राह्मण ने लौट कर, विश्राम ले बोधिसत्त्व से कहा—“तात राध ! तुम्हारी माता अनाचार करती थी वा नहीं करती थी ?” पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

प्रवासा आगतो तात ! इदानीं न चिरागतो,
कञ्चिधु तात ! ते माता न अञ्जमपसेवति ॥

[तात ! मैं अब प्रवास से लौट आया हूँ। मैं अभी आ रहा हूँ। तात ! क्या तेरी माता दूसरे पुरुष का सेवन करती थी ?]

मैं तात पवासा आगतो, वह मैं अभी आया हूँ । न चिरागतो, इसीसे समा-
चार न जानने के कारण पूछता हूँ । कच्चिन्न तात ते माता अञ्जं पुरुष को न
उपसेवति ?

राध ने 'तात ! पण्डित सत्य या असत्य अकल्याणकर बात कभी नहीं कहते'
प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न खो पनेतं सुभणं गिरं सच्चूपसंहितं,
सयेथ पोठपादोब मम्मुरे उपकूसितो ॥

[वह सच्ची बात सुभाषित वाणी नहीं है; जिसके कहने से पोठपाद की तरह
गर्म राख में भुने ।]

गिरं वचनं । वचन को ही जैसे अब 'गिरा' कहते हैं; वैसे ही तब 'गिर' कहते
थे । तोता-बच्चा लिङ्ग का ख्याल न कर ऐसा कहता है । लेकिन इसका अर्थ
यह है—तात ! पण्डित द्वारा सच्ची, यथार्थ, तथ्य-युक्त स्वाभाविक बात भी
अकल्याणकर होने से न सुभणं । अकल्याणकर सच्ची बात कहने से सयेथ पोठपा-
दोब मम्मुरे उपकूसितो जैसे पोठपाद गरम राख में भुना हुआ सोता है ; उस
प्रकार सोए । उपकूसितो पाठ का भी यही अर्थ है ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ब्राह्मण को धर्मोपदेश दे 'मैं भी यहाँ नहीं रह सकता'
कह जंगल को गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल
बैठाया ।

सत्त्यों (का प्रकाशन) समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में
प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय पोठपाद आनन्द था । राध तो मैं ही था ।

१९९. गृहपति जातक

“उभयम्मेन खमति” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्कण्ठित-चित्त के ही बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कथा कहते हुए शास्ता ने ‘स्त्री जाति की हिफाजत नहीं की जा सकती । पाप करके जिस किसी उपाय से स्वामी को ठगती ही है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने काशी-राष्ट्र के गृहपति-कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर विवाह किया । उसकी भार्या दुराचारिणी थी; गाँव के मुखिया के साथ दुराचार करती । बोधिसत्त्व जानकर परीक्षा करते हुए रहने लगे ।

उस समय वर्षा काल में बीजों के बह जाने से अकाल हो गया था । खेती में दाना पड़ा । सारे ग्रामवासियों ने मिलकर निश्चय किया कि अब से दो महीने बाद खेत काटकर धान दे देंगे; और गाँव के मुखिया से एक बूढ़ा बैल ले उसका मांस खा गए ।

एक दिन गाँव का मुखिया मौका देख, जिस समय बोधिसत्त्व बाहर गया था घर में घुसा । उनके सुख से लेटने के समय ही बोधिसत्त्व ग्राम-द्वार से प्रविष्ट हो घर की ओर हो लिया । ग्राम-द्वार की ओर देखते हुए उस स्त्री ने सोचा, ‘यह कौन है?’ फिर देहली पर खड़े होकर देखने से जब उसे निश्चय हुआ कि यह वही है, तो उसने मुखिया से कहा । गाँव का मुखिया डर के मारे काँपने लगा ।

उसने कहा—डर मत । एक उपाय है । हमने तेरा दिया गोमांस खाया

है। तू मांस का मूल्य उगाहने वाले की तरह हो। मैं कोठे पर चढ़ कोठे के द्वार पर खड़ी हो कहती हूँ कि धान नहीं है। तू घर के बीच में खड़ा होकर बार बार उलाहना दे—‘हमारे घर में बच्चे भूखे हैं। मेरे मांस का मूल्य दो।’ इतना कह वह कोठे पर चढ़ कोठे के दरवाजे पर बैठी। मुखिया घर में खड़ा हो कहने लगा—‘मांस की कीमत दो।’ वह कोठे के दरवाजे पर बैठ कहती—‘धान नहीं है। खेत कटने पर देंगे। जा।’

बोधिसत्त्व ने घर में प्रवेश कर उनकी करतूत देख समझ लिया कि इस पापिन ने यह ढंग बनाया होगा। उसने गाँव के मुखिया को बुलाकर कहा—“हे ग्राम-भोजक ! हमने तेरे बूढ़े बैल का मांस खाते समय, ‘अब से दो महीने बाद धान देंगे’ कहकर मांस खाया था। अभी आधा महीना भी नहीं गुज़रा। तू अभी से क्यों धान लेना चाहता है ? लेकिन तू इस उद्देश्य से नहीं आया ! दूसरे ही उद्देश्य से आया होगा ? मुझे तेरी करतूत अच्छी नहीं लगती। यह भी दुराचारिणी पापिन जानती है कि कोठे में धान नहीं है। वह अब कोठे पर चढ़ कहती है—धान नहीं है। तू भी कहता है—दे। मुझे दोनों की बात अच्छी नहीं लगती।”

इस भाव को प्रकट करते हुए बोधिसत्त्व ने यह गाथाएँ कहीं—

उभयम्मे न खमति उभयम्मे न रुच्चति,
या चायं कोट्ठमोतिष्णा न वस्सं इति भासति ॥
तं तं गामपति ब्रूमि कवरे अप्पस्मि जीविते,
द्वे मासे कारं कत्वान मंसं जरग्गवं किसं;
अप्पत्तकाले चोदेसि तम्मि मय्हं न रुच्चति ॥

[दोनों मुझे पसन्द नहीं; दोनों मुझे अच्छे नहीं लगते। यह जो कोठे पर चढ़ कहती है—(धान) नहीं दिखाई देते। हे ग्रामपति ! मैं यह कहता हूँ कि जीवन इतना कठिन होने पर भी तू बूढ़े कृष बैल के मांस (के मूल्य) का दो महीने का करार करके समय के पूर्व ही उलहना देता है। यह भी मुझे अच्छा नहीं लगा।]

तं तं गामपति ब्रूमि भो ! ग्राम के मुखिया इस कारण से यह कहता है। कवरे अप्पस्मि जीविते, हमारा जीवन दुःखी है, जड़ है, रूखा है, न्यून है, अल्प है, मन्द है, परिमित है। इस प्रकार के जीवन के होने पर द्वे मासे कारं कत्वान मंसं

जरगबं किसं हमारे मांस लेते समय बूढ़ा, कृष, दुर्बल बैल देते हुए तूने दो महीने की अवधि बांधी थी कि दो महीने में मूल्य देना । इस प्रकार करार करके, अवधि बांध कर अप्पत्तकाले चौबेसि, उस समय के आने से पूर्व ही दोष लगाता है । तम्पि मय्हं न रुच्चति यह जो पापिन दुराचारिणी कोठे में धान नहीं है जानती हुई अनजान की तरह कोट्ठमोतिण्णा कोठे के द्वार पर खड़ी हो न बस्सं इति भासति । यह भी और यह जो तू असमय माँगता है तम्पि यह दोनों न मुझे पसन्द हैं, न अच्छे लगती हैं ।

इस प्रकार कहते कहते बोधिसत्त्व ने गाँव के मुखिये को केशों से पकड़ खँचे कर घर के बीच में गिराया । “ ‘मैं गाँव का मुखिया हूँ’ समझ दूसरों की रखी, हिफाजत की हुई चीज के प्रति अपराध करता है ? ” आदि बातों से अपशब्द कह, पीट कर, दुर्बल कर, गरदन से पकड़ घर से निकाल दिया । उस दुष्ट स्त्री को भी केशों से पकड़ कोठे से उतार, पीटते हुए डाँटा—“यदि फिर ऐसा करेगी, तो जानेगी ? ”

उसके बाद से गाँव का मुखिया उस घर की ओर नजर भी नहीं उठा सका । वह पापिन भी फिर मन से भी दुराचार नहीं कर सकी ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों को प्रकाशित किया । सत्त्यों के अन्त में उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय ग्राम के मुखिया को ठीक करने वाला गृहपति मैं ही था ।

२००. साधुसील जातक

“सरीरवर्ण्यं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं । वे चार प्रकार के आदमियों को चाहती थीं । उनमें से एक सुन्दर शरीर वाले को, एक आयु में बड़े को, एक (ऊँची) जाति वाले को और एक सदाचारी को । ब्राह्मण सोचने लगा ! ‘लड़कियों को (पराए) घर भेजते हुए, उनका विवाह करते हुए उन्हें किसे देना चाहिए ? क्या रूपवान् को ? क्या आयु में बड़े को ? क्या जाति में बड़े को अथवा सदाचारी को ?’

जब सोचने पर भी वह कुछ निश्चय न कर सका तो उसने विचार किया कि इस बात को सम्यक् सम्बुद्ध जानेंगे । उन्हें पूछ कर, इन चारों में जिसे देना उचित होगा उसे दूँगा । वह गन्धमाला आदि लिवा कर विहार गया ; शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा । उसने आरम्भ से सब बात सुना कर पूछा—“भन्ते ! इन चार जनों में से किसे देना उचित है ?”

शास्ता ने कहा—“पहले भी पण्डितों ने तरे इस प्रश्न का उत्तर दिया था । लेकिन वह पूर्व-जन्म की बात होने से तू उसे नहीं जान सकता ।”

ऐसा कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े हो तक्षशिला गए । वहाँ शिल्प सीख लौट कर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हुए ।

एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं । वह इसी प्रकार चार जनों को चाहती थीं । ब्राह्मण ने यह न जानते हुए कि किसे दें सोचा कि आचार्य्य को पूछ कर जिसे

देना योग्य होगा, उसी को दूँगा। उसने आचार्य के पास जा यह प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

सरीरद्वयं वयं सोजच्चं साधुसीलियं
ब्राह्मणत्वेव पुच्छाम कम् तु तेसं वणिम्हसे ॥

[शरीर के सौंदर्य वाले को, आयु बड़ी वाले को, जाति बड़ी वाले को वा सदाचारी को ? हे ब्राह्मण ! तुझे पूछते हैं कि उन्हें किसे दें ?]

सरीरद्वयं आदि उन चारों में विद्यमान् गुणों का प्रकाशन किया गया है। अभिप्राय यह है—मेरी लड़कियाँ चार प्रकार के आदमियों को चाहती हैं। उनमें से एक के पास सरीरद्वयं है, शरीर सम्पत्ति है, सौन्दर्य है। एक के पास वद्वयं वृद्धभाव, ज्येष्ठपन है। एक के पास सोजच्चं अच्छी जाति वाला होना, जाति सम्पत्ति है। सुजच्चं भी पाठ है। एक के पास साधुसीलियं सुन्दर चरित्र होना सदाचार सम्पत्ति है। ब्राह्मणत्वेव पुच्छाम; उनमें से यह अमुक को देनी चाहिए, हम इसका निश्चय न कर सकने के कारण आप ब्राह्मण को ही पूछते हैं। कम् तु तेसं वणिम्हसे उन चार जनों में से किसका वरण करें ? किसकी इच्छा करें ? पूछता है कि वे कुमारियाँ किसे दें ?

इसे सुन आचार्य ने कहा—“रूप सम्पत्ति आदि विद्यमान रहने पर भी दुःशील निन्दित है। इसलिए वह ठीक नहीं। हमें शीलवान् ही अच्छा लगता है।”

इस विचार को प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

अथो अत्थि सरीरस्मि वद्वयस्स नमोकरे,
अथो अत्थि सुजातस्मि सीलं अस्माकरुच्चति ॥

[शरीर की भी अपनी विशेषता है, ज्येष्ठ को नमस्कार होता है, सुजात की भी विशेषता है; लेकिन हमें तो शीलवान् अच्छा लगता है।]

अथो अत्थि सरीरस्मि, रूपवान् शरीर में भी अर्थ, विशेषता, उन्नति होती है। नहीं होती है, नहीं कहते। वद्वयस्स नमो करे, ज्येष्ठ को हम नमस्कार ही

करते हैं। ज्येष्ठ की ही वन्दना होती है। अथो अत्थि मुजातस्मि, मुजात पुरुष की भी उन्नति होती है। जाति-सम्पत्ति भी इच्छा करने ही की चीज है। सीलं अस्माकवच्चति, हमें शील ही अच्छा लगता है। शीलवान्, सदाचारी शरीर-सौन्दर्य से रहित भी पूज्य प्रशंसनीय होता है।

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन सदाचारी को ही लड़कियाँ दीं।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्त्यों के अन्त में ब्राह्मण स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मण यही था; प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

६. नतंदल्ह वर्ग

२०१. बन्धनागार जातक

“न तं बळ्हं बन्धनमाहु धीरा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बन्धनागार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बहुत से सेंध लगाने वाले, बटमार तथा मनुष्यघातक चोरों को लाकर राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें बेड़ी से, रस्सी से तथा जंजीर से बँधवा दिया।

दिहात के तीस भिक्षु शास्ता का दर्शन करने की इच्छा से आए। दर्शन तथा प्रणाम कर चुकने के अगले दिन भिक्षाटन करते हुए वह बन्धनागार पहुँचे। वहाँ चोरों को देख, भिक्षाटन से लौट, सन्ध्या के समय शास्ता के पास जा निवेदन किया—भन्ते ! आज हमने भिक्षाटन करते समय, बहुत से चोरों को बेड़ी आदि से बँधे हुए महान् दुःख अनुभव करते देखा। वे उन बन्धनों को काटकर भाग नहीं सकते। क्या उन बन्धनों से बढ़कर भी कोई बन्धन है ?

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह क्या बन्धन है ? यह जो धन-धान्य-पुत्र तथा दारा आदि के प्रति तृष्णा रूपी बन्धन है, यह इन बन्धनों से सौ गुणा, हजार गुणा कड़ा बन्धन है। इस प्रकार के अत्यन्त कठिनाई से टूटने वाले महान् बन्धन को भी, पुराने पण्डितों ने तोड़ कर हिमालय में प्रवेश कर प्रब्रज्या ग्रहण की।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक दरिद्र गृहस्थ के घर में पैदा हुआ। उसके बड़े होने पर पिता मर गया। वह नौकरी करके माता को पालने लगा।

उसके अनिच्छा प्रकट करने पर भी उसकी माँ ने उसे एक लड़की ला दी; और स्वयं मर गई। उसकी भार्या की कोख में गर्भ रह गया। उसे नहीं मालूम था कि भार्या की कोख में गर्भ है। उसने कहा—“भद्रे ! तू नौकरी चाकरी करके अपना पालन पोषण कर। मैं प्रब्रजित होऊँगा।”

उसने उत्तर दिया—“मेरी कोख में गर्भ है। बच्चों को देख कर प्रब्रजित होना।” बोधिसत्त्व ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया और उसके बच्चे को जन्म देने पर पूछा—भद्रे ! तूने कुशलपूर्वक बच्चे को जन्म दिया। अब मैं प्रब्रजित होऊँ ?

उसने कहा कि जब तक बच्चा स्तन का दूध पीता है, तब तक प्रतीक्षा करें। इस बीच में वह फिर गर्भवती हो गई। उसने सोचा इसकी रजामन्दी से जाना न हो सकेगा ! इसे बिना कहे ही भाग कर प्रब्रजित होऊँगा। वह बिना कहे ही रात को उठकर भाग गया। उसे नगर-रक्षकों ने पकड़ा। बोधिसत्त्व ने कहा—“स्वामी ! मैं ‘माँ का पोषण करने वाला हूँ’। मुझे छोड़ दें।”

उसने अपने आपको छोड़ा एक स्थान पर ठहर, मुख्य द्वार से ही निकल बोधिसत्त्व ने हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ ऋषियों के प्रब्रज्या क्रम के अनुसार प्रब्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा में रत हो रहने लगा।

वहाँ रहते हुए ‘ऐसे दुष्करता से तोड़े जा सकने वाले पुत्र-दारा के प्रति आसक्ति के बन्धन को भी तोड़ते हैं’ उल्लास-वाक्य कहते हुए उसने यह गाथाएँ कहीं—

न तं बळ्हं बन्धनमाहु धीरा,
यदायसं दारुजं बन्धजञ्च;
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु,
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥
एतं बळ्हं बन्धनमाहु धीरा,
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं;
एतम्मि छेत्वान वजन्ति धीरा,
अनपेक्खिनो काममुखं पहाय ॥

[लोहे के, लकड़ी के या बबूढ़ (की रस्सी) के जो बन्धन हैं, धीर-जन उन्हें (असली) बन्धन नहीं मानते। यह जो मणि में, कुण्डलों में आसक्ति है, यह जो पुत्र-दारा की अपेक्षा है; धीर-जन इन्हें दृढ़ बन्धन मानते हैं। यह नीचे गिराने वाले हैं; स्थिर हैं और कठिनाई से दूर होते हैं। धीर-जन इन्हें भी छोड़ कर, काम-भोगों के सुख को छोड़, अपेक्षा रहित हो चल देते हैं।]

धृतिमान् को ही धीर। धिक्कार किया पापों को इसलिए धीर या धी का मतलब है प्रज्ञा; उस प्रज्ञा से युक्त धीर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बुद्ध-श्रावक और बोधिसत्त्व —यह ही धीर हैं। यदायसं आदि में यं जंजीर आदि लोहे से बना हुआ आयसं, अनुबन्धन। बबूढ़, जो बबूढ़-तृण या अन्य वल्कल आदि की रस्सी से बना हुआ रस्सी-बन्धन। तं धीरा बळ्हं, मजबूत नहीं कहते। सारस्तरत्ता, अधिक अनुरक्त होकर आसक्त; बहुत राग से अनुरक्त मणिकुण्डलेषु, मणि में और कुण्डलों में अथवा मणियुक्त कुण्डलों में।

एतं बळ्हं, जो मणिकुण्डलों में अत्यन्त अनुरक्त हैं; उन्हीं का जो राग है, या उनकी पुत्र-दारा में अपेक्षा है, तृष्णा है; इस बन्धन को ही धीर-जन दृढ़ बन्धन कहते हैं। ओहारिनं, निकाल कर चार नरकों में गिराते हैं; उतारते हैं; नीचे ले जाते हैं; इसलिए ओहारिनं। स्थिरं जहाँ बन्धन पड़ा होता है उस जगह की चमड़ी या मांस नहीं छिलता; खून भी नहीं निकलता; 'बन्धन पड़ा है' यह भी पता नहीं लगने देते इसलिए स्थिरं। बुध्यमुञ्चं, तृष्णा-लोभ रूप से एक बार भी पैदा हुआ बन्धन उसी तरह कठिनाई से पीछा छोड़ता है जैसे एक बार किसी को पकड़ लेने पर कछुआ। एतस्मिं छेत्त्वान्, ऐसा दृढ़ बन्धन भी ज्ञान रूपी तलवार से काट कर धीर-जन लोहे की जंजीर तोड़ने वाले मस्त हाथी की तरह, पिंजरे को तोड़ने वाले सिंह-बच्चे की तरह, वस्तु-कामना तथा वासना को कूड़ा फेंकने के स्थान को धृष्टा करने की तरह अनपेक्षितो होकर कामसुखं पहाय वजन्ति, चल देते हैं। चल देकर, हिमवन्त में प्रविष्ट हो ऋषियों के प्रब्रज्या क्रम से प्रब्रजित हो ध्यान-सुख में रत रहते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व यह उल्लास-वाक्य कह ध्यान-युक्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन किया। सत्यों के अन्त में कोई खोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय माता महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराजा। भार्या राहुल-माता। पुत्र राहुल। पुत्र-दारा को छोड़, निकल कर प्रव्रजित होने वाला पुरुष मैं ही था।

२०२. केळिसील जातक

“हंसा कोष्ठा मयूरा च” यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय आयुष्मान् लकुण्टक भद्रिय के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् बुद्ध-शासन में प्रसिद्ध थे, सर्व-विदित थे, मधुर-स्वर वाले थे, मधुर-धर्मोपदेशक थे, पटिसम्भिदा-ज्ञान प्राप्त थे, महा-क्षीणास्रव थे, लेकिन साथ ही थे अस्सी स्थविरों में कद के ठिगने, श्रामणेर की तरह बौने, खेलने के लिए बनाए खिलौने की तरह छोटे।

एक दिन जब वह तथागत को प्रणाम कर जेतवन के कोठे में गए थे, देहात के तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने की इच्छा से जेतवन आए। उन्होंने विहार के दरवाजे पर स्थविर को देख ‘कोई श्रामणेर है’ समझ स्थविर को चीवर के सिरे से पकड़, हाथों से पकड़, सिर से पकड़, नाक को रगड़, कान पकड़, घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गए। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने मधुरवाणी से कुशल-क्षेम पूछा। तब वे बोले—‘भन्ते ! लकुण्टक भद्रिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर-भाषी धर्मोपदेशक हैं। वह इस समय कहाँ हैं ?’

“भिक्षुओ, क्या उसे देखना चाहते हो?”

“भन्ते ! हाँ ।”

“भिक्षुओ, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड़ हाथ से छेड़ते हुए आए, वही यह है ।”

“भन्ते ! इस तरह का प्रार्थी,^१ इस तरह का उच्चाभिलाषी^२ किस कारण से इतने छोटे आकार का पैदा हुआ ?”

“अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण । ” उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व देवेन्द्र शक्र हुए । उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा-प्राप्त हाथी, घोड़े वा बैल को नहीं देख सकता था; देखते ही क्रीड़ा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था । पुरानी गाड़ी देख कर तुड़वा देता; वृद्ध स्त्रियों को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता । वृद्ध आदमियों को देख बाजीगर की तरह कलाबाजियाँ खिलवाता । न दिखाई देने की अवस्था में यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर में वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता ।

मनुष्य लज्जित होकर अपने-अपने माता-पिता को विदेशों में भेजने लगे । माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्तव्य टूटने लगा । राजसेवक भी क्रीड़ा-प्रिय हो गए । मर-मरकर चारों तरफ भरने लगे । देव-परिषद घटने लगी । शक्र ने नये देवपुत्रों को न देख सोचा कि क्या कारण है ? जब उसे पता लगा तो शक्र ने निश्चय किया कि उसका दमन कल्लंगा । वह बूढ़े आदमी की शक्ल बना, पुरानी गाड़ियों पर मट्टों की दो चाटियाँ रख, दो बूढ़े बैल जोत, एक उत्सव के दिन जब ब्रह्मदत्त अलंकृत हाथी पर चढ़ अलंकृत नगर में घूम रहा था, स्वयं चीथड़े पहने हुए उस गाड़ी को हाँक कर राजा के सामने पहुँचा ।

राजा ने पुरानी गाड़ी को देख कहा—इसे हटाओ ।

^१जिसने पूर्व-बुद्धों के पास प्रार्थना की ।

^२जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए ।

मनुष्यों ने पूछा—देव, गाड़ी कहाँ है। दिखाई नहीं देती।

शक्र के प्रताप से गाड़ी केवल राजा को ही दिखाई देती थी।

शक्र ने राजा के पास बार-बार आ उसके ऊपर की ओर रथ हाँकते हुए राजा के सिर पर एक चाटी फोड़ दी। राजा भीग गया। उसने दूसरी फोड़ दी। उसके सिर से इधर-उधर से मट्टा चूने लगा। राजा घबराया, हैरान हुआ, घृणा करने लगा।

जब शक्र ने देखा कि राजा घबरा रहा है तो अपने रथ को अन्तर्धान कर शक्र का असली रूप बना वज्र हाथ में ले आकाश में खड़े हो कहा—अरे पापी अधार्मिक राजा ! क्या तू बूढ़ा न होगा ? तरे शरीर पर बुढ़ापा आक्रमण न करेगा ? क्रीड़ा-प्रिय हो कर वृद्धों को कष्ट देता है। तरे एक के कारण यह करतूत करके मरने वाले नरक भर रहे हैं। आदमियों को माता-पिता की सेवा करनी नहीं मिलती। यदि इस कर्म से बाज्र नहीं आएगा तो वज्र से तेरा सिर फोड़ दूँगा। इसके बाद से ऐसा कर्म मत करना।

इस प्रकार डराकर, माता-पिता के गुण कह, बड़ों की सेवा का माहात्म्य प्रकाशित कर, उपदेश दे, शक्र अपने निवास-स्थान को चला गया।

राजा ने उसके बाद वैसा करने का विचार भी नहीं किया।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह अभिसम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथाएँ कहीं—

हंसा क्रौञ्च मयूरा च हत्थियो पसदा भिगा,

सब्बे सीहस्स भायन्ति नत्थि कार्यास्मि तुल्यता ॥

एवमेव मनस्सेसु दहरो चेपि पञ्जवा,

सोहि तत्थ महा होति नेव बालो सरीरवा ॥

[हंस, क्रौञ्च, मोर, हाथी तथा चितकबरा-मृग सभी सिंह से डरते हैं। शरीर से बड़ा-छोटा नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यों में चाहे आयु का छोटा हो लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो वह ही बड़ा है। बड़े शरीर वाला मूर्ख बड़ा नहीं होता।]

पसदाभिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग तथा शेष मृग भी अर्थ है। पसदाभिगा, भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। नत्थि कार्यास्मि तुल्यता, शरीर से बड़ा छोटा

नहीं है ; यदि हो तो बड़े शरीर वाले पसद-मृग और हाथी सिंह को मार डालें । सिंह हंसादि क्षुद्र शरीर वालों को ही मारे । छोटे ही सिंह से डरें, बड़े नहीं ; ऐसा नहीं है । इसलिए सभी सिंह से डरते हैं । सरीरवा मूर्ख बड़े शरीर वाला होने पर भी बड़ा नहीं होता । इसलिए लकुष्टक भक्ष्य यद्यपि शरीर से छोटा है ; इससे यह न समझो कि वह ज्ञान में भी छोटा है ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के अन्त में उन भिक्षुओं में से कोई खोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गए ।

उस समय राजा लकुष्टक भक्ष्य था । उसके क्रीड़ा-प्रिय होने से दूसरे क्रीड़ा-प्रिय हो गए । शत्रु मैं ही था ।

२०३. खन्धवत्त जातक

“विरूपक्खेहि मे भेत्तं . . .” इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा ।

क. वर्तमान कथा

जिस समय वह अग्नि-गृह^१ के द्वार पर लकड़ियाँ चीर रहा था, पुराने वृक्ष में से एक साँप ने निकल कर उसे पाँव की उँगलियों में डसा । वह वहीं मर गया । उसके मरने की खबर सारे विहार में फैल गई ।

धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु अग्नि-गृह के दरवाजे पर लकड़ियाँ फाड़ता हुआ सर्प से डसा जाकर वहीं मर गया । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

^१ अन्ताघर, जिसमें आग जलाकर स्वेद-स्नान लेते थे ।

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ, यदि वह भिक्षु चारों सर्प-राज कुलों के प्रति मैत्री भावना करता, उसे सर्प न डसता। पुराने तपस्वी भी, जिस समय बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय चारों सर्पराज-कुलों के प्रति मैत्री भावना कर, उन सर्पराज-कुलों से जो भय था उससे मुक्त हुए।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी छोड़ ऋषियों के प्रब्रज्या क्रम से प्रब्रजित हो, अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में एक जगह जहाँ गङ्गा का मोड़ था आश्रम बना कर, ध्यान-क्रीड़ा में रत हो, ऋषिगणों के साथ रहने लगे।

उस समय नाना प्रकार के सर्प ऋषियों को बाधक होते थे। अधिकांश ऋषि मर जाते। तपस्वियों ने बोधिसत्त्व से यह बात कही। बोधिसत्त्व ने सभी तपस्वियों को इकट्ठा कर कहा—“यदि तुम चारों सर्पराज-कुलों के प्रति मैत्री-भावना करो, तो तुम्हें सर्प नहीं डसेंगे। अब से चारों सर्पराज-कुलों के बारे में इस प्रकार मैत्री भावना करो।”

इतना कह यह गाथा कही—

विरूपक्खेहि मे भेतं भेतं एरापयेहि मे,
छब्बापुत्तेहि मे भेतं भेतं कण्हागोतमकेहि च॥

[विरूपक्खों के प्रति मैं मैत्री-भाव रखता हूँ; एरापयों के प्रति भी मेरी मैत्री है। छब्बापुत्तों के प्रति मेरी मैत्री है और मैत्री है कण्हागोतमों के प्रति।]

विरूपक्खेहि मे भेतं, विरूपक्ख नागराज-कुल के प्रति मेरा मैत्री-भाव है। एरापय आदि में भी इसी प्रकार। यह एरापय नागराज-कुल, छब्बापुत्त नागराज-कुल और कण्हागोतम नागराज-कुल भी नागराज-कुल ही हैं।

इस प्रकार चार नागराज-कुल दिखाकर कहा कि यदि तुम इनके प्रति मैत्री-भावना कर सको तो तुम्हें सर्प नहीं डसेंगे, कष्ट नहीं देंगे । इतना कह दूसरी गाथा कही —

अपावकोहि मे मेत्तं मेत्तं दिपावकोहि मे,
चतुष्पदेहि मे मेत्तं मेत्तं बहुष्पदेहि मे ॥

[जिनके पैर नहीं हैं उनसे मेरी मैत्री है, जिनके दो पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है, जिनके चार पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है और जिनके अनेक पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है ।]

पहले पद से विशेष रूप से सभी पैर-रहित सर्पों तथा मछलियों के प्रति मैत्री-भावना कही गई । दूसरे पद से मनुष्यों तथा पक्षियों के प्रति । तीसरे से हाथी घोड़े आदि सभी चतुष्पदों के प्रति । चौथे पद से बिच्छू, गूजर, कीड़े-मकौड़े आदि के प्रति ।

इस प्रकार मैत्री-भावना का क्रम बता अब प्रार्थना-क्रम कहते हुए यह गाथा कही—

मा मं अपावको हिसि मा मं हिसि दिपावको,
मा मं चतुष्पदो हिसि मा मं हिसि बहुष्पदो ॥

[जो पैर-रहित हैं वे मेरी हिंसा न करें, जो द्विपद हैं वे मेरी हिंसा न करें, जो चतुष्पद हैं वे मेरी हिंसा न करें और जो अनेक पैर वाले हैं वे भी मेरी हिंसा न करें ।]

मा मं इस प्रकार 'उन पैर-रहित आदि में कोई एक भी मेरी हिंसा न करे मुझे कष्ट न दे' प्रार्थना करते हुए मैत्री-भावना करो—यही अर्थ है ।

अब सामान्य रूप से भावना-क्रम प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता च केवला,
सब्बे भद्रानि पत्तन्तु मा कञ्चि पापमागमा ॥

[सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सारे के सारे जीव; सभी का कल्याण हो। किसी को दुःख न हो।]

तृष्णा-दृष्टि के कारण संसारमें, पाँच स्कन्धों में आसक्त, विशेष आसक्त होने से सत्ता (सक्ता)। स्वास प्रश्वास कहलाने वाले प्राण के कारण प्राणी। भूत (जीवित) भावित (जीने वालों) का जन्म होने से भूता। इस प्रकार जानना चाहिए कि वचन-मात्र की ही विशेषता है। सामान्य तौर पर इन सभी पदों का अर्थ सभी प्राणी ही है। केवला सकल; यह सर्व शब्द का ही पर्यायवाची है। भद्रानि पस्सन्तु, यह सभी प्राणी कल्याण को ही प्राप्त हों। मा कञ्चि पाप-मागमा, इनमें से किसी एक भी प्राणी को दुःख न हो। सभी वैर-रहित क्रोध-रहित, सुखी तथा दुःख-रहित हों।

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना की बात कह तीनों रत्नों के गुणों की याद दिलाने के लिए कहा—

अप्पमाणो बुद्धो अप्पमाणो धम्मो अप्पमाणो संघो।

सीमित (प्रमाण-सहित) विकारों का अभाव होने से और गुण असीम (अप्रमाण) होने से बुद्ध-रत्न असीम (अप्रमाण) है; धर्म, नौ प्रकार^१ का लोकोत्तर धर्म; उसकी भी सीमा नहीं की जा सकती इसलिए असीम (अप्रमाण)। उस असीम (अप्रमाण) धर्म से युक्त होने के कारण संघ भी असीम (अप्रमाण)।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उन तीनों रत्नों के गुणों को स्मरण करने के लिए कह तथा उन तीन रत्नों के गुणों का असीम होना दिखा सीमित प्राणियों के बारे में बोले—

पमाणवन्तानि	सिरिसपानि	अहिबिच्छिका,
सतपदी	उष्णानाभि	सरबूमसिका।

^१ चार मार्ग, चार फल तथा निर्वाण।

[रेंगने वाले, सर्प, बिच्छू, गूजर, मकड़ी तथा छिपकली—यह सब सीमा वाले हैं ।]

सिरिसपा सब दीर्घाकार प्राणियों का यह नाम है । वे सरक कर चलते हैं वा सिर से चलते हैं, इसीलिए सिरिसपा । अहि आदि उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है । तत्थ उण्णानाभि मकड़ी, उसकी नाभि से ऊन सदृश सूत निकलता है; इसलिए उण्णानाभि कहलाती है । सरबू, छिपकली ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने 'क्योंकि इनके अन्दर जो रागादि हैं वह सीमा वाले धर्म हैं, इसलिए ये सिरिसप आदि सीमा वाले हैं, दिखा 'तीनों असीम रत्नों के प्रताप से यह सीमा वाले रात-दिन रक्षा करें' कह तीनों रत्नों के गुणों का अनुस्मरण करने को कहा । उसके आगे जो कर्तव्य है वह बताने के लिए यह गाथा कही—

कता मे रक्खा कता मे परित्ता,
पटिक्कमन्तु भूतानि सोहं नमो भगवतो;
नमो सत्तन्त्रं सम्मासम्बुद्धानं ॥

[मैंने अपनी हिफाजत कर ली; मैंने अपना परित्राण कर लिया । (हानि-कर) जीव दूर हों । मैं भगवान् (बुद्ध) को और सात सम्यक् सम्बुद्धों को प्रणाम करता हूँ ।]

कता मे रक्खा, रत्नत्रय का गुणानुस्मरण कर मैंने अपनी रक्षा, हिफाजत कर ली । कता मे परित्ता मैंने अपना परित्राण भी कर लिया । पटिक्कमन्तु भूतानि, मेरा अहित चिन्तन करने वाले प्राणी चले जाएँ, दूर हों । सोहं नमो भगवतो, सो मैं इस प्रकार अपनी रक्षा कर पूर्व के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्ध भगवतो, को नमस्कार करता हूँ । नमो सत्तन्त्रं सम्मासम्बुद्धानं, विशेष रूप से अतीत के क्रम से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए सात बुद्धों को नमस्कार करता हूँ ।

'बेखो महापदान सूत्र (दीर्घनिकाय) ।

इस प्रकार नमस्कार करते हुए भी सात बुद्धों का अनुस्मरण करो, (करके) बोधिसत्त्व ने ऋषिगण को यह परित्राण-धर्मदेशना रच कर दी।

आरम्भ में दो गाथाओं द्वारा चारों सर्पराज-कुलों में मैत्री-भावना प्रकट की होने से, विशेष रूप से तथा सामान्य रूप से दोनों मैत्री-भावनाएँ प्रकट की होने से, यह परित्राण-धर्मदेशना ला यहाँ दी गई है। और कारण खोजना चाहिए।

उस समय से ऋषियों का समूह बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल मैत्री-भावना करने लगा। बुद्ध के गुणों का स्मरण करने लगा। इस प्रकार उनके बुद्ध-गुणों का स्मरण करने ही पर सब साँप चले गए। बोधिसत्त्व भी ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋषि-गण बुद्ध-परिषद थी। गण का शास्ता तो मैं ही था।

२०४. वीरक जातक

“अपि वीरक पत्सेसि . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बुद्ध का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त की परिषद लेकर स्थविरों के लौट आने पर शास्ता ने पूछा—
सारिपुत्तो ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?

“भन्ते ! सुगत का रंग-ढंग बनाया।”

“सारिपुत्तो ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ। पहले भी प्राप्त हुआ है।”

स्थविरों के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मादत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में जल-कौए की योनि में पैदा हो एक तालाब के पास रहते थे। उसका नाम था वीरक।

उस समय काशी देश में अकाल पड़ा। मनुष्य कौओं को भोजन देने या यक्ष-नाग बलिकर्म करने में असमर्थ हो गए। अकाल-पीड़ित प्रदेश से अधिकांश कौबे जंगल चले गए। वाराणसी वासी सविट्ठक नाम का एक कौआ अपनी कौबी को ले वीरक के निवासस्थान पर जा, उस तालाब के पास एक ओर रहने लगा।

एक दिन उसने उस तालाब में शिकार खोजते हुए वीरक को तालाब में उतर, मछलियाँ खा, बाहर निकल, शरीर को सुखाते देख सोचा—इस कौबे के आश्रय से मुझे बहुत मछलियाँ मिल सकती हैं। इसकी सेवा करूँ।

वह कौबे के पास गया। कौबे ने पूछा—

“सौम्य ! क्यों” ?

“स्वामी ! तुम्हारी सेवा में रहना चाहता हूँ।”

उसके ‘अच्छा’ कह स्वीकार करने पर उस समय से सेवा करने लगा। तब से वीरक भी अपने गुजारे लायक खा मछलियाँ निकाल कर सविट्ठक को देता। वह भी अपने गुजारे लायक खा बाकी कौबी को देता।

आगे चलकर उसको अभिमान हो गया। वह सोचने लगा—यह जल-कौआ भी काला है। मैं भी काला हूँ। मेरे और इसके आँख, चोंच तथा पैरों में भी कोई भेद नहीं है। अब से इसकी पकड़ी हुई मछलियों से मुझे सरोकार नहीं। मैं स्वयं पकड़ूँगा। बोला—“सौम्य ! अब से मैं स्वयं तालाब में उतर कर मछलियाँ पकड़ूँगा।” वीरक ने मना किया—“तू पानी में उतर मछलियाँ पकड़ने वाले कुल में पैदा नहीं हुआ। तू अभिमान करता है।” वह वीरक की बात न मान तालाब में उतरा। पानी में प्रवेश कर ऊपर आते समय काई को छेद कर बाहर नहीं निकल सका। काई में ही फँस गया। केवल चोंच का अगला भाग दिखाई दिया। वह साँस घुट कर पानी के अन्दर ही मर गया।

उसकी भार्य्या ने जब उसे आता न देखा तो वह उसका समाचार जानने के

लिए वीरक के पास गई। उसने 'स्वामी ! सविट्टक दिखाई नहीं देता। इस समय वह कहाँ है ?' पूछते हुए पहली गाथा कही—

अपि वीरक पस्सेसि सकुणं मञ्जुभाणकं,
मयूरगीवसंकासं पतिं मय्हं सविट्ठकं ॥

[वीरक ! क्या मधुरभाषी, मोर पक्षी की सी गर्दनवाले मेरे पति सविट्टक को देखते हो ?]

अपि वीरक पस्सेसि स्वामी ! वीरक भी दिखाई देता है ? मञ्जुभाणकं, सुन्दर-भाषी; वह राग के कारण अपने पति को मधुरभाषी समझती है। इसलिए ऐसा कहा। मयूरगीवसंकासं, मोर की गर्दन के समान वर्ण वाला।

यह सुन वीरक ने 'हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरा स्वामी कहाँ गया है' कह दूसरी गाथा कही—

उदकथलचरस्स पक्खिनो निच्चं आमकमच्छभोजिनो,
तस्सानुकरं सविट्ठको सेवाले पळ्ळिगुण्ठितो मतो ॥

[सविट्टक जल और स्थल पर चलने वाले, नित्य कच्ची मछली खाने वाले, पक्षी की नकल करने जाकर काई में फँस कर मर गया।]

उदकथलचरस्स, जो जल और स्थल में चलने में समर्थ है। पक्खिनो, अपने सम्बन्ध में कहता है। तस्सानुकरं उसकी नकल करता हुआ। पळ्ळिगुण्ठितो मतो, पानी में घुस काई को छेद कर बाहर न निकल सकने के कारण, काई में उलझ कर पानी के अन्दर ही मर गया। देख, उसकी चोंच दिखाई देती है।

इसे सुन कौबी रो-पीट कर वाराणसी ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाय। तब सविट्टक देवदत्त था। वीरक मैं ही था।

२०५. गङ्गेय्य जातक

“सोभति मच्छो गंगेय्यो” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो तरुण भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे दो श्रावस्ती-वासी कुलपुत्र बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो अशुभ-भावना में न लग रूप के प्रशंसक हो, रूप को ही प्यार करते हुए घूमते थे। एक दिन उन दोनों में रूप को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। एक ने कहा—मैं शोभा देता हूँ। दूसरे ने कहा—तू नहीं शोभा देता; मैं शोभा देता हूँ। कुछ ही दूर पर एक वृद्ध स्थविर को बैठे देख उन्होंने सोचा—यह जानेंगे। हम में से कौन शोभनीय है, कौन नहीं? उन्होंने पास जाकर पूछा—हम में से कौन सुन्दर है? स्थविर ने उत्तर दिया—तुम दोनों से मैं ही सुन्दर हूँ।

तरुण भिक्षुओं ने कहा, यह बूढ़ा जो हम पूछते हैं वह न बता, जो नहीं पूछते हैं वही कहता है। वे उसकी निन्दा कर चले गए।

उनकी वह करतूत भिक्षु-संघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो, वृद्ध स्थविर ने उन रूप-प्रिय तरुण भिक्षुओं को लज्जित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? “यह बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ, यह दो तरुण केवल अभी रूप-प्रशंसक नहीं हैं; यह पहले भी रूप को ही प्यार करते हुए विचरते थे” कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त को राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गङ्गा के किनारे वृक्ष-देवता थे। उस समय गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर गङ्गेय्य और यामुनेय्य नाम की दो मछलियाँ थीं। वे आपस में विवाद करने लगीं—मैं शोभा

देती हैं, तू नहीं शोभती । इस प्रकार रूप के बारे में विवाद करते हुए उन्होंने थोड़ी दूर पर गङ्गा के किनारे पड़े एक कछुए को देखकर सोचा—यह जानेगा कि हम में कौन सुन्दर है ? कौन असुन्दर ? उसके पास जाकर उन्होंने पूछा—सौम्य ! गङ्गेय्य सुन्दर है ? अथवा यामुनेय्य ?

कछुए ने कहा—गङ्गेय्य भी सुन्दर है, यामुनेय्य भी सुन्दर है ; लेकिन मैं तुम दोनों से अधिक सुंदर हूँ ।

इस बात को प्रकट करते हुए उसने पहली गाथा कही—

सोभति मच्छो गंगेय्यो अथो सोभति यामुनो,
चतुष्पदायं पुरितो निप्रोघपरिमण्डलो;
ईसकायतगीबो च सब्बेव अतिरोचति ॥

[गङ्गेय्य मछली शोभा देती है, यामुनेय्य भी शोभा देती है; लेकिन यह चार पैरों वाला, बड़-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाड़ी की बल्ली की तरह लम्बी गर्दन वाला (पुरुष) सब से अधिक सुन्दर है ।]

चतुष्पदायं, यह चतुष्पाद पुरितो अपने बारे में कहता है । निप्रोघ परि-मण्डलो, अच्छी तरह उत्पन्न न्यप्रोघ वृक्ष की तरह गोलाकार । ईसकायतगीबो रथ की छड़ की तरह लम्बी बल्ली वाला । सब्बेव अतिरोचति इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सबसे बढ़कर सुन्दर है, तुम दोनों से बढ़कर शोभा देता है ।

मछलियों ने उसकी बात सुन 'अरे पापी कछुए ! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' कह दूसरी गाथा कही—

यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्जं अक्खासि पुच्छितो,
असप्य संसको पोसो नायं अस्माकं रुचचति ॥

[जो पूछा है वह नहीं कहता ; पूछने पर दूसरी बात कहता है । यह अपनी ही प्रशंसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नहीं लगता ।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशंसा करने वाला, अपनी बड़ाई करने वाला पुरुष । नायं अस्माकं रुच्चति, यह पापी कछुआ हमें अच्छा नहीं लगता, रुचिकर नहीं है । वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवासस्थान को गईं ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय दो मछलियाँ तरुण भिक्षु थे । कच्छप बूढ़ा था । इस बात को प्रत्यक्ष करने वाला गङ्गा-तट पर पैदा हुआ वृक्ष-देवता मैं ही था ।

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

“इङ्खं वड्ढमयं पासं . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही ।

क. वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त बध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, ‘भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे बध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है ।’ इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कुरुङ्ग-मृग की योनि में पैदा हो जंगल में एक तालाब के पास एक झाड़ी में रहता था । उसी तालाब के नजदीक वृक्ष पर एक कठफोड़ा^१ और तालाब में कछुआ रहता था । वे तीनों परस्पर प्रेम से रहते थे ।

^१कठफोड़ा = शतपत्र ।

एक शिकारी जंगल में घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्त्व के पैरों का चिन्ह देख लोहे की जंजीर सदृश फंदे वा जाल लगा कर गया।

बोधिसत्त्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गए; तब फँस जाने की आवाज़ की। उसकी आवाज़ सुन वृक्ष-शाखा पर से कठफोड़ा और पानी में से कछुआ आया। उन्होंने सलाह की—क्या किया जाए? कठ-फोड़े ने कछुवे को सम्बोधन कर कहा—मित्र ! तेरे दाँत हैं। तू जाल को काट। मैं जाकर ऐसा करूँगा जिसमें वह आने न पाए। इस प्रकार हम दोनों के प्रयत्न से हमारे मित्र की जान बचेगी।

इस बात को प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

इङ्घं वद्धमयं पासं छिन्द वन्तेहि कच्छप
अहं तथा करिस्सामि यथा नेहिंति लुद्धको॥

[देख कछुए ! तू दाँतों से चमड़े के जाल को काट। मैं वैसा करूँगा जिससे शिकारी आने न पावे।]

कछुए ने चमड़े की डोरी खानी शुरू की। कठफोड़ा शिकारी के घर गया। शिकारी प्रातःकाल ही शक्ति लेकर निकला। पक्षी ने यह जान कि वह घर से निकल रहा है आवाज़ कर, परों को फड़फड़ा कर आगे के द्वार से निकलते हुए उसके मुँह पर चोट की। शिकारी ने सोचा—मनहूस पक्षी ने मुझ पर प्रहार किया।

वह रुका, थोड़ी देर लेट, फिर शक्ति लेकर उठा। 'पहले यह आगे के द्वार से निकला, अब पीछे के द्वार से निकलेगा' सोच पक्षी जाकर घर के पीछे की ओर बैठा। शिकारी ने भी यह सोचा—आगे के द्वार से निकलते समय मैंने मनहूस पक्षी देखा अब पिछले द्वार से निकलूँगा। वह पीछे के द्वार से निकला। पक्षी ने फिर जाकर आवाज़ लगा मुँह पर चोट की। शिकारी ने कहा—फिर मुझ पर मनहूस पक्षी ने चोट की। यह मुझे निकलने नहीं देता। वह रुका, अरुणोदय तक लेटा रहा; फिर अरुणोदय होने पर शक्ति लेकर निकला।

पक्षी ने जल्दी से जाकर बोधिसत्त्व को सूचना दी कि शिकारी आ रहा है। उस समय तक कछुए ने एक को छोड़ शेष सभी डोरियाँ काट डाली थीं। उसके दाँत गिरने वाले हो गए थे; मुँह लोहू से लाल हो गया था। बोधिसत्त्व शिकारी को शक्ति लिए बिजली की तेजी से आता देख बन्धन तोड़ वन में जा घुसा। पक्षी

वृक्ष-शाखा पर जा बैठा। कछुआ दुर्बलता के कारण वहीं पड़ा रहा। शिकारी ने कछुए को एक थैली में डाल किसी ठूँठ पर रख दिया।

बोधिसत्त्व ने रुक कर देखा तो पता लगा कि कछुआ पकड़ा गया। उसने सोचा—मित्र की जान बचाऊँगा। तब उसने अपने आपको शिकारी को ऐसे दिखाया जैसे बहुत दुर्बल हो गया हो। शिकारी ने सोचा—यह (और) दुर्बल होगा; इसे मारूँगा। उसने शक्ति ले बोधिसत्त्व का पीछा किया। बोधिसत्त्व न बहुत दूर, न बहुत नज़दीक चलते हुए उसे ले जंगल में गए। जब जाना कि दूर निकल आए तब मुड़ कर दूसरे रास्ते से हवा की तेज़ी से जा, सींग से थैली उठा, ज़मीन पर गिरा, फाड़ कर कछुए को बाहर निकाला। कठफोड़ा भी वृक्ष पर से उतरा। बोधिसत्त्व ने दोनों को उपदेश देते हुए कहा—तुम्हारी सहायता से मेरे प्राण बचे। मैंने भी तुम्हारे प्रति मित्र का कर्तव्य पालन किया। अब कहीं शिकारी आकर तुम्हें पकड़ न ले; इसलिए मित्र कठफोड़, तू अपने पुत्रों को ले दूसरी जगह चला जा; और मित्र कछुए तू पानी में जा।

उन्होंने वैसा ही किया। शास्ता ने बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

कच्छपो पाविसी वारिं कुरुङ्गणे पाविसी वनं
सतपत्तो बुमग्गम्हा द्वरे पुत्ते अपानयि॥

[कछुआ पानी में जा घुसा। कुरुङ्ग वन में चला गया। कठफोड़ा वृक्ष-शाखा पर से अपने पुत्रों को दूर ले गया।]

अपानयि, अपनयि अर्थात् लेकर चला गया।

शिकारी वहाँ आ किसी को न देख फटी थैली ले दुःखी चित्त से अपने घर गया। वे भी तीनों मित्र जीवन भर विश्वास बनाए रखकर यथाकर्म गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। कठफोड़ा सारिपुत्र। कछुआ मोग्गल्लान। कुरुङ्ग-मृग तो मैं ही था।

२०७. अस्सक जातक

“अयमस्सकराजेन . . .” यह शास्ता ने जंतवन में विहार करते समय पूर्व भार्या के प्रलोभन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?

“हाँ, सचमुच।”

“किसने उत्कण्ठित किया ?”

“पूर्व-भार्या ने।”

शास्ता ने कहा—भिक्षु, उस स्त्री का तेरे प्रति स्नेह नहीं है। पहले भी तू उसके कारण महान् दुःख भोग चुका है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काशी राष्ट्र के पोतली^१ नाम के नगर में अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उम्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, मनोज्ञ थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य-वर्ण के बीच के वर्ण की। वह मर गई। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दुःख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की कढ़ाई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। फिर स्वयं बिना कुछ खाए पीए रोता पीटता हुआ चारपाई पर पड़ रहा।

माता-पिता, अन्य नातेदार, मित्र अमात्य तथा ब्राह्मण गृहपति आदि “महा-

^१ ‘पोतल’ भी पाठ हैं।

राज ! संस्कार अनित्य है . . . ” कहते हुए उसे होश में न ला सके । उसके रोते-पीटते ही सात दिन बीत गए ।

उस समय पाँच अभिञ्जा तथा आठ समापत्तियों के लाभी, तपस्वी होकर हिमवन्त प्रदेश में विचरते हुए बोधिसत्त्व ने प्रकाश फैला दिव्य-चक्षु से जम्बुद्वीप को देखते हुए उस राजा को उस प्रकार रोते देखा । ‘मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए’ सोच ऋद्धिबल से आकाश में उड़ राजा के बाग में उतर मङ्गल शिला-पट पर सोने की प्रतिमा की तरह बैठे ।

पोतली नगर वासी एक ब्राह्मण-माणवक उद्यान में जा, बोधिसत्त्व को देख प्रणाम करके बैठा ।

बोधिसत्त्व ने उससे बातचीत कर पूछा—माणवक ! क्या राजा धार्मिक है ?

“भन्ते ! हाँ राजा धार्मिक है । लेकिन उसकी भार्य्या मर गई है । वह उसके शरीर को द्रोणी में रखवा रोता-पीटता लेटा है । आज उसे सातवाँ दिन हो गया । तुम राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यों मुक्त नहीं करते ? क्या यह ठीक है कि तुम्हारे जैसे शीलवान् के रहते राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे ?”

“माणवक ! मैं राजा को नहीं जानता । लेकिन यदि वह आकर मुझे पूछे तो मैं उसे उसकी भार्य्या का जन्म ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा के सामने ही उससे बातचीत करवाऊँ ।”

“भन्ते ! तो मैं जब तक राजा को लेकर आऊँ तब तक आप यहीं बैठें ।”

माणवक ने बोधिसत्त्व से वचन ले राजा के पास जा वह बात सुनाकर कहा—उस दिव्य-चक्षुधारी के पास चलना चाहिए ।

राजा यह सोच कि उम्बरी को देख सकूँगा सन्तुष्ट हो रथ पर चढ़ वहाँ गया । बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उसने पूछा—क्या तुम सचमुच देवी के जन्म ग्रहण करने की जगह जानते हो ?

“महाराज ! हाँ ।”

“वह कहाँ पैदा हुई है ?”

“महाराज ! उसने रूप में मत्त होने के कारण, प्रमादवश कोई अच्छा काम नहीं किया । इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई ।”

“मैं विश्वास नहीं करता।”

“तो तुझे दिखा कर उससे कहलवाता हूँ।”

“अच्छा, कहलवाएँ।”

बोधिसत्त्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते हुए राजा के सामने आएँ। वे चले आए। बोधिसत्त्व ने उसे दिखाते हुए कहा—
“महाराज ! यह तेरी उब्बरी देवी तुझे छोड़ गोबर के कीड़े के पीछे-पीछे आती है। उसे देखें।”

“भन्ते ! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीड़े की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।”

“महाराज ! उससे कहलवाता हूँ।”

“भन्ते ! कहलवाएँ।”

बोधिसत्त्व ने अपने प्रताप से उसे बुलवाते हुए पूछा—उब्बरी ! उसने मानुषी वाणी में कहा—हाँ भन्ते ! क्या ?

“पूर्व-जन्म में तेरा क्या नाम था ?”

“भन्ते ! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी।”

“इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है वा गोबर का कीड़ा।”

“भन्ते ! वह मेरा पूर्व-जन्म था; उस समय मैं उसके साथ इस बाग में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है ? मैं अब अस्सक राजा को मार कर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीड़े के पैरों को धो सकती हूँ।”

यह कह परिषद के बीच में आदमियों की भाषा में उसने ये गाथाएँ कहीं—

अयमस्सकराजेन बेसो विचरितो मया,
अनुकामयानुकामेन पियेन पतिना सह॥
नवेन सुखदुःखेन पोरारणं अपिथीयति,
तस्मा अस्सकरञ्जाव कीटो पियतरो मयं॥

[परस्पर एक दूसरे की कामना करते हुए अपने प्रिय पति इस अस्सक राजा के साथ मैंने इस प्रदेश में विचरण किया। नए सुख-दुःख से पुराना सुख-दुःख

ढका जाता है। इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा यह कीड़ा ही मेरा अधिक प्रिय है।]

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया इस रमणीक उद्यान-प्रदेश में पहले मैंने अस्सक राजा के साथ विचरण किया। अनुकामयानुकामेन; अनु निपात मात्र है। मैं उसकी कामना करती, वह मेरी कामना करता। इस प्रकार परस्पर कामना करते हुए के साथ। पियेन उस जन्म में प्रिय।

नवेन सुखदुःखेन पोरणं अपिबीयति, भन्ते ! नए सुख से पुराना सुख नए दुःख से पुराना दुःख ढक जाता है। यही लोक-स्वभाव है—प्रकट करती है। तस्मा अस्सकरञ्जाय कीटो पियतरो मम; क्योंकि नवीन से पुराना ढक जाता है इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा कीड़ा मुझे सौ गुणा प्रिय है।

इसे सुन अस्सक राजा को पश्चात्ताप हुआ। उसने वहाँ खड़े ही खड़े लाश निकलवा सिर से स्नान कर बोधिसत्त्व को प्रणाम किया। फिर नगर में प्रवेश कर दूसरी पटरानी बना धर्म से राज्य करने लगा।

बोधिसत्त्व भी राजा को उपदेश दे शोक-रहित कर हिमवन्त चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाय। सत्त्यों के अन्त में उत्कण्ठित (भिक्षु) स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय उब्बरी पूर्व-भार्या थी। अस्सक राजा उत्कण्ठित भिक्षु था। माणवक सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

२०८. संस्मार जातक

“अलमेतेहि अम्बेहि. . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त बध के लिए प्रयत्न करता है, कहा— भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे बध करने का प्रयत्न करता है, उसने पहले भी किया है; लेकिन त्रास मात्र भी पैदा नहीं कर सका।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हुए। वह हाथी सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान् शरीर धारी, अति सुन्दर थे। गङ्गा के मोड़ पर जंगल में रहते थे।

उस समय गङ्गा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भाय्या ने बोधिसत्त्व को देखा। उसके मन में उसका मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूँ।

“भद्रे! हम जल-चर, वह स्थल-चर; क्या हम उसे पकड़ सकेंगे?”

“जिस किसी भी तरह हो पकड़, यदि नहीं मिलेगा, मर जाऊँगी।”

“तो डर मत। एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊँगा।”

उसे आश्वासन दे मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्त्व गङ्गा का पानी पी गङ्गा-तट पर बैठा था, बोधिसत्त्व के पास गया और बोला—बानरराज! यहाँ इन अस्वादिष्ट फलों को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है? गङ्गा-पार आम, कटहल के मधुर फलों की सीमा नहीं। क्या तुम्हें गङ्गा-पार जाकर फल-मूल नहीं खाने चाहिए?

“मगरराज ! गङ्गा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊँ ?”

“यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाऊँगा।”

उसने उसका विश्वास कर ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया। ‘तो आ मेरी पीठ पर चढ़’ कहने पर चढ़ गया। मगरमच्छ थोड़ी दूर जा उसे डुबाने लगा। बोधिसत्त्व ने पूछा—दोस्त ! यह क्या ? मुझे पानी में डुबा रहा है ?

“मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूँ। मेरी भार्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूँ।”

“दोस्त ! तूने कह दिया सो अच्छा किया। यदि हमारे पेट में कलेजा हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जाए।”

“तो तুম कहाँ रखते हो ?”

बोधिसत्त्व ने पास ही पके फलों से लदा हुआ एक गूलर का पेड़ दिखाकर कहा—देख, हमारे कलेजे इस गूलर के पेड़ पर लटकते हैं।

“यदि मुझे कलेजा दे, तो मैं तुझे नहीं मारूँगा।”

“तो आ मुझे वहाँ ले चल। मैं तुझे वृक्ष पर लटका हुआ दूँगा।”

वह उसे लेकर वहाँ गया। बोधिसत्त्व ने उसकी पीठ पर से छलांग मार गूलर की शाखा पर बैठ कहा—सौम्य ! मूर्ख मगरमच्छ ! तूने यह मान लिया कि इन प्राणियों का कलेजा वृक्ष की शाखाओं पर होता है। तू मूर्ख है। मैंने तुझे ठगा है। तेरे फल-मूल तेरे ही पास रहें। तेरा शरीर ही बड़ा है। अकल नहीं है।

यह कह, इसी बात को प्रकट करते हुए ये गाथाएँ कहीं—

अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेहि च,
यानि पारं समुद्रस्स वरं मय्हं उडुम्बरो॥
महती वत ते बोन्दि न च पञ्जा तद्वपिका,
सुसुमार बञ्चितो मेसि गच्छ वानि यथासुखं॥

[यह जो तू समुद्र-पार आम, जामुन और कटहल बताता है, मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे गूलर ही अच्छा है। तेरा शरीर बड़ा है; लेकिन तेरी प्रज्ञा उसके समान नहीं। मगरमच्छ ! तू मेरे द्वारा ठगा गया है। अब तू सुखपूर्वक जा।]

अलमतेहि, जो तूने द्वीप में देखे, वह मुझे नहीं चाहिए। वरं मय्हुं उदुम्बरो मुझे यह उदुम्बर वृक्ष ही अच्छा है। बोन्दि शरीर। तद्वृषिका, तेरी प्रज्ञा तेरे शरीर के अनुकूल नहीं है। गच्छद्वानि यथासुखं, अब सुखपूर्वक जा; तेरे (लिए) कलेजा नहीं है।

मगरमच्छ (जूए में) हजार हार जाने की तरह दुःखी, दीर्घमनस्य को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुआ अपने निवास-स्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। मगरमच्छी चिञ्चामाणविका। कपिराज तो मैं ही था।

२०९. कवकर जातक

“विट्ठा मया बने रुक्खा...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्र के शिष्य तरुण भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह अपने शरीर की रक्षा करने में होशियार था। शरीर के लिए सुखकर न होगा, इस डर से किसी अति-शीत वा अति-उष्ण चीज का उपयोग न करता था। सर्दी-गर्मी से शरीर को कष्ट होगा, इस डर से बाहर नहीं निकलता था। बहुत पका या जला भात नहीं खाता था। उसकी वह शरीर रक्षा की होशियारी संघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक तरुण शरीर-रक्षा के काम में होशियार है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? “यह बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ! यह तरुण अपने शरीर-रक्षा के काम में न केवल अभी होशियार है, पहले भी होशियार था।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए ।

एक चिड़ीमार पालतू बटेर, बालों का फंदा तथा लाठी ले जंगल में बटेरों को फँसाता हुआ, भाग कर जंगल में चले गए एक बटेर को फाँसने लगा । वह बाल के फंदे में होशियार होने के कारण फंदे में नहीं आता था । वह उठ-उठ कर छिप जाता ।

शिकारी अपने आपको शाखा-पत्तों से ढक बार-बार लकड़ी और फंदा लगाता । बटेर ने उसे लज्जित करने के लिए मानुषी भाषा बोलते हुए पहली गाथा कही—

दिट्ठा मया वने रुक्खा अस्सकण्णविभीटका,
न तानि एवं सक्कन्ति यथा त्वं रुक्ख सक्कसि ॥

[मैंने इस वन के अनेक अस्सकण्ण (अश्वकर्ण) और विभीटका (विभीतक) वृक्ष देखे; लेकिन तू वृक्ष जिस तरह से इधर-उधर चलता है; वह नहीं चलते ।]

मित्र शिकारी मया इस वने पैदा हुए बहुत से अस्सकण्ण तथा विभीटक देखे । तानि वृक्ष यथा त्वं सक्कसि, तू संक्रमण करता है, इधर उधर विचरता है एवं न सक्कन्ति, नहीं संक्रमण करते हैं, नहीं विचरते हैं ।

ऐसा कह वह बटेर भाग कर दूसरी जगह चला गया । उसके भाग जाने के समय चिड़ीमार ने दूसरी गाथा कही—

पुराणकक्करो अयं भेत्वा पञ्जरभागतो,
कुसलो बाळपासानं अपक्कमति भासति ॥

[यह पुराना बटेर पिजरा तोड़ कर चला आया । बाल के फंदे में होशियार परिहास कर के चल देता है ।]

कुसळो बाळपासानं, बाल के फंदे में होशियार अपने को न बांधने देकर अच-
कमति और भासति, बोलकर भाग जाता है। ऐसा कह चिड़ीमार जंगल में घूम
जो मिला लेकर घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी
देवदत्त था। बटेर अपनी शरीर-रक्षा करने में होशियार तरुण भिक्षु। उस बात
को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२१०. कन्दगळक जातक

“अम्हो कोनामयं दक्खो, . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते
समय सुगत का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

तब शास्ता ने यह सुन किदेवदत्त ने सुगत का रंग-ढंग बनाया कहा—“भिक्षुओ!
न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ, पहले भी प्राप्त
हुआ है।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमवन्त
प्रदेश में कठफोरनी पक्षी होकर उत्पन्न हो खदिरवन में ही रहने लगे। उसका
नाम खदिरवनी ही हो गया। उसका एक कन्दगळक नाम का मित्र था। वह
पाळिभट्टक बन में रहता था। एक दिन वह खदिरवनी के पास गया। खदिरवनी ने
‘मेरा मित्र आया है’ सोच कन्दगळक को ले खदिरवन में प्रवेश कर खदिर के तने
को चोंच से ठोंगें मार कीड़े निकाल कर दिए। कन्दगळक जो जो पाता मीठे पूए

की तरह तोड़ तोड़ कर खाता । उसे खाते समय ही अभिमान हो गया । यह भी कठफोरनी योनि में पैदा हुआ है, मैं भी । मुझे इसके दिए शिकार से क्या प्रयोजन, मैं स्वयं ही शिकार करूँगा । उसने खदिरवनी से कहा—“मित्र ! तू कष्ट मत उठा । मैं ही खदिरवन में शिकार करूँगा ।”

उसने उसे कहा—“मित्र ! तू सेमर पाळिभट्टक आदि वन में निस्मार लकड़ी में शिकार करने वाले कुल में पैदा हुआ है । खदिर की लकड़ी सारवान् होती है, कठोर होती है । तू यह इच्छा मत कर ।”

कन्दगळक बोला—क्या मैं कठफोरनी की योनि में पैदा नहीं हुआ ? इसने उसका कहना न मान जल्दी से जा खदिर वृक्ष पर चोंच से ठोंगें मारीं । उनी समय उसकी चोंच टूट गई । आँखें बाहर निकली सी हो गई । मीम फट गया । वह तने पर खड़ा न रह सकने के कारण जमीन पर गिरा और पहली गाथा कही—

अम्भो को नामयं रुक्खो सीनपत्तो सकण्टको,
यत्थ एकप्पहारेन उत्तमङ्गं विसाटितं ॥

[भो ! इस पतले पत्तों वाले काँटेदार वृक्ष का क्या नाम है, जिस पर एक ही चोट करने से मेरा सिर फट गया ।]

अम्भो को नामयं रुक्खो, भो खदिरवनी ! इस वृक्ष का क्या नाम है ? को नाम सो यह भी पाठ है । सीनपत्तो सूक्ष्म पत्तों वाला । यत्थ एकप्पहारेन, जिस वृक्ष पर एक ही चोट लगाने से उत्तमंगं विसाटितं सिर फूट गया, न केवल सिर ही फूटा चोंच भी टूट गई । वह वेदना से पीड़ित हो खदिर-वृक्ष को न जान सका कि यह खदिर-वृक्ष है, और इस गाथा से विलाप किया—

इसे सुन खदिरवनी ने दूसरी गाथा कही—

अचारितायं^१ वितुवं वनानि कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु,
अवासदा खदिरं जातसारं यत्थग्भिदा गहळो उत्तमङ्गं ॥

^१अचारितायं भी पाठ है ।

[अभीतक सार-रहित काठ के वृक्षों वाले बनों को ठोंग मारी। अब यह सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ; जहाँ पक्षी ने सिर तुड़ाया।]

अचारातायं, उसने आचरण किया। वितुदं वनानि सार रहित सेमर पाळि-भट्टक के बन आदि को ठोंग मारते हुए बीँघते हुए। कट्ठंगरुक्खेसु असारकेसु, बन की सामान्य लकड़ी सार रहित पाळिभट्टक सेमर आदि में। अथासदा खदिरं जातसारं, छोटंपन से सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ। यत्थम्भिवा, जिस खदिर-वृक्ष से लगकर तोड़ लिया फाड़ लिया गरुळो पक्षी। सभी पक्षियों के लिए आदर का शब्द है।

खदिरवनी ने उसे यह सुना कर कहा—कन्दगळक ! जहाँ तूने सिर तुड़ाया यह खदिर नाम का सारवान् वृक्ष है। वह वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया।

उस समय कन्दगळक देवदत्त था। खदिरवनी तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

७. बीरगाथम्भक वर्ग

२११. सोमदत्त जातक

“अकासि योगां . . .” यह शास्ता ने जंतवन में विहार करते समय लालु-दायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दो तीन जनों के बीच में वह एक शब्द भी न बोल सकता। अधिक लज्जाशील होने के कारण कुछ कहने जाकर कुछ दूसरा ही कह देता। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु उसके बारे में चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहें हो?” “अमुक बातचीत” “भिक्षुओ, लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है, पहले भी लज्जाशील ही रहा है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-देश में एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में विद्या सीख घर लौटे। यह देख कि माता-पिता बहुत दरिद्र हैं, उसने सोचा कि दुर्गति को प्राप्त माता-पिता की अवस्था सुधारूँगा। माता-पिता की आज्ञा ले वह वाराणसी जा राजा की सेवा में रहने लगा। वह राजा को प्रिय हुआ, उसके मन को अच्छा लगने वाला हुआ।

उसका बाप दो बैलों से खेती कर पेट पालता था। एक बैल मर गया। उसने बोधिसत्त्व से कहा—तात ! एक बैल मर गया। खेती नहीं होती। राजा से एक

बैल मांग । “तात ! राजा की सेवा में रहते थोड़े ही दिन हुए हैं । अभी बैल मांगना ठीक नहीं । आप ही मांगें ।”

“तात ! तू मेरे अधिक लज्जाशील होने को नहीं जानता ? मैं दो तीन जनों के सामने बोल नहीं सकता । यदि मैं राजा के पास बैल मांगने जाऊँगा ; तो यह भी देकर आऊँगा ।”

“तात ! जो होना है सो हो । मैं राजा से नहीं माँग सकता । लेकिन मैं तुम्हें बोलने का अभ्यास करा दूँगा ।”

“तो अच्छा, मुझे अभ्यास करा ।”

बोधिसत्त्व उसे ऐसे श्मशान में ले गए, जहाँ बोरण-घास के झुंड थे । वहाँ घास के पूले बांधकर ‘यह राजा है’, ‘यह उपराजा है’, ‘यह सेनापति है’ नाम रख क्रम से पिता को दिखा कर कहा—“तात ! तू राजा के पास जा ‘महाराज को जय हो’ कह, इस तरह यह गाथा कह बैल मांगना । गाथा मिलाई—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेतं कसामसे,
तेसु एको मतो देव बुत्तियं देहि खत्तिय ॥

[महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी । देव ! उसमें से एक मर गया । राजन ! दूसरा दें ।]

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्त्व को कहा—तात ! सोमदत्त ! मुझे गाथा (कहने) का अभ्यास हो गया । अब मैं इसे जिस किसी के सामने कह सकता हूँ । मुझे राजा के पास ले चल ।

उसने कहा ‘तात अच्छा’ और योग्य भेंट लिवा पिता को राजा के पास ले गया । ब्राह्मण ने ‘महाराज की जय हो’ कह भेंट दी । राजा ने पूछा—

‘सोमदत्त ! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?’

“महाराज ! मेरा पिता है ।”

“किस मतलब से आया है ?”

उस समय ब्राह्मण ने बैल मांगने के लिए गाथा कहते हुए कहा—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेतं कसामसे,
तेसु एको मतो देव बुत्तियं गणह खत्तिय ॥

[महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उनमें से एक मर गया। राजन् ! दूसरा लें।]

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया। उसके कहने का भाव जान मुस्कराया और बोला—सोमदत्त ! तुम्हारे घर में मालूम होता है बहुत बैल हैं।

“महाराज ! आप देंगे तो हो जाएँगे।”

राजा ने बोधिसत्त्व पर प्रसन्न हो ब्राह्मण को सोलह अलङ्कृत बैल और उसका रहने का गांव ब्रह्मदान दे, बहुत से धन के साथ विदा किया।

ब्राह्मण सर्व श्वेत सैन्धव घोड़े जुते रथ पर चढ़ बहुत से अनुयायियों के साथ गांव आया। बोधिसत्त्व ने रथ में बैठ, पिता के साथ आते हुए कहा—तात ! मैंने साल साल तुम्हें अभ्यास कराया; लेकिन अन्त में तुमने अपना बैल राजा को दिया।

इतना कह यह गाथा कही—

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो
संबच्छरं बीरणत्थम्भकास्मि,
व्याकासि सञ्जां परिसं विगग्गह
न नियमो तायति अप्पपञ्जां ॥

[आलस्य रहित हो नित्य साल भर तक बीरण-घास के झुंडों वाले श्मशान में अभ्यास किया; लेकिन परिषद में जाकर भूल गया। अल्प-प्रज्ञा आदमी का अभ्यास भी त्राण नहीं करता।]

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो संबच्छरं बीरणत्थम्भकास्मि, तू नित्य प्रमादरहित हो बीरण के झुंड वाले श्मशान में वर्ष भर अभ्यास करता रहा। व्याकासि सञ्जां परिसं विगग्गह, परिषद में आकर उस सञ्जा को विकृत कर दिया; मतलब बदल दिया। न नियमो तायति अप्पपञ्जां, अल्प प्रज्ञा वाले आदमी का नियम, अभ्यास त्राण नहीं करता; रक्षा नहीं करता।

उसकी बात सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही—

द्वयं याचनको तात सोमदत्त निगच्छति
अलाभं धनलाभञ्च एबंधम्मा हि याचना॥

[तात सोमदत्त ! मांगने वाले की दो ही हालतें होती हैं—धन मिलता है या नहीं मिलता । मांगने का यह स्वभाव ही है ।]

एबंधम्मा हि याचना; मांगने का यही स्वभाव है ।

शास्ता ने “भिक्षुओ-लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है, पहले भी अधिक लज्जाशील ही था” कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय सोमदत्त का पिता लालुदायी था । सोमदत्त मैं ही था ।

२१२. उच्छिष्टभक्त जातक

“अञ्जो उपरिमो वण्णो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय पूर्व भार्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?

“सचमुच ।”

“तुझे किसने आकर्षित किया ?”

“पूर्व भार्या ने ।”

“भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अपकार करने वाली है । पहले भी इसने तुझे अपने जार का जूठा खिलाया है ।”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने एक ऐसे दरिद्र नट के कुल में जन्म ग्रहण किया जो भीख माँगकर जीविका चलाता था। बड़े होने पर वह दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो भीख माँग कर जीविका चलाने लगे।

उस समय काशी देश के एक गाँव में एक ब्राह्मण की ब्राह्मणी दुःशीला थी, पापिनी थी, व्यभिचार करती थी। एक दिन किसी काम से जब ब्राह्मण बाहर गया तो उसका जार मौका देख घर में घुस आया। उसने उसके साथ अनाचार कर चुकने पर कहा—“कुछ अच्छा खा कर ही जाओगे?” उसने भात तैयार कर दाल (=सूप) व्यञ्जन से युक्त भात परोस कर दिया कि तू खा। स्वयं ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई द्वार पर खड़ी हुई।

उस समय बोधिसत्त्व ब्राह्मणी के जार के खाने की जगह पर भीख की प्रतीक्षा में खड़े थे। तभी ब्राह्मण घर की तरफ आया। ब्राह्मणी ने उमं आते देख जल्दी से घर में जाकर जार को कहा—‘उठ, ब्राह्मण आ रहा है’ और उमं कोठे में उतार दिया। ब्राह्मण के घर में दाखिल हो बैठने के समय पीड़ा तथा हाथ धोने को पानी दे जार के जूठे छोड़े ठंडे भात के ऊपर गरम भात परोस दिया। उसने जब भात में हाथ डाला तो ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा पाया। वह सोचने लगा कि यह दूसरे का खाकर बचा हुआ जूठा भात होगा। उसने ब्राह्मणी से पूछते हुए पहली गाथा कही—

अञ्जे उपरिमो वण्णो अञ्ज वण्णोव हेट्ठमो,
ब्राह्मणि त्वेव पुच्छामि किं हेट्ठा किं च उपपरि॥

[ऊपर (के भात) का रंग ढंग दूसरा है; नीचे (के भात) का दूसरा। ब्राह्मणी ! तुझे ही पूछता हूँ कि यह क्या ऊपर है और क्या नीचे ?]

वण्णो आकार। यह ऊपर वाले के गरम होने की और नीचे वाले के ठंड होने की बात पूछते हुए कहा। कि हेट्ठा किञ्च उपपरि परोसा हुआ भात ऊपर ठंडा

और नीचे गरम होना चाहिए। यह वैसा नहीं है। इसलिए तुझें पूछता हूँ। किस कारण से ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा है ?

ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट हो जाने के भय से ब्राह्मण के बार बार कहने पर भी चुप ही रही। उस समय बोधिसत्त्व को यह सूझा कि कोठे में बिठाया हुआ आदमी जार होगा और यह घर का स्वामी। ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट होने के भय से कुछ नहीं बोलती। हन्त ! मैं इसकी करतूत प्रकट कर जार के कोठे में बिठाए होने की बात कह दूँ।

उसने ब्राह्मण के घर से निकलने से जार के घर में प्रवेश करने, अनाचार करने, श्रृंखल भात खाने, ब्राह्मणी का दरवाजे पर खड़े हो रास्ता देखने और जार को कोठे में उतारने तक का सब हाल कह दूसरी गाथा कही—

अहं नटोस्मि भदन्ते भिक्खकोस्मि इघागतो,
अयं हि कोट्ठमोतिण्णो अयं सो यं गवेससि ॥

[स्वामी ! मैं नट हूँ। भीख माँगने के लिए यहाँ याआ हूँ। यह है कोठे में उतरा हुआ और यह ही है जिसे तू खोजता है।]

अहं नटोस्मि भदन्ते, स्वामी ! मैं नट जाति का हूँ। भिक्खकोस्मि इघागतो, मैं भिखमंगा यहाँ भीख माँगता हुआ आया हूँ। अयं हि कोट्ठमोतिण्णो यह इसका जार इस भात को खाता हुआ तेरे भय से कोठे में उतरा है। अयं सो यं गवेससि, जिसे तू खोज रहा है कि यह किसका जूठा भात होगा, वह यही है। 'इसे बालों से पकड़, कोठे से निकाल ऐसा कर जिसमें इसे होश रहें और फिर यह ऐसा पाप-कर्म न करे' कह चला गया।

ब्राह्मण उन दोनों को डरा, पीट कर ऐसी शिक्षा दे जिसमें वे फिर ऐसा पाप-कर्म न करें कर्मानुसार गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मणी पूर्व-भार्या थी। ब्राह्मण उत्कण्ठित। नट-पुत्र मैं ही था।

२१३. भरु जातक

“इसीनमन्तरं कत्वा . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजाओं के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के भिक्षुसंघ का लाभ तथा सत्कार बहुत था । जैसे कहा है—“उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उन्हें चीवर, पिण्डपात (—भिक्षा), शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थीं; भिक्षुसंघ का भी सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थीं । लेकिन दूसरे तैथिक परिव्राजकों का न सत्कार होता था, न गौरव होता था, न मान होता था, न पूजा होती थी, न आदर होता था और न उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें ही मिलती थीं ।” इस प्रकार जब उनका लाभ सत्कार जाता रहा तो वे दिन रात छिपकर इकट्ठे हो विचार करते कि जब से श्रमण गौतम पैदा हो गया है तभी से हमारा लाभ सत्कार जाता रहा; श्रमण गौतम को ही श्रेष्ठ लाभ तथा यश मिलता है । क्या करण है कि इसे यह सब मिलता है ?

कुछ ने कहा—श्रमण गौतम सकल जम्बूद्वीप में उत्तम स्थान श्रेष्ठ-भूमि पर रहता है । इसीसे उसे लाभ सत्कार की प्राप्ति होती है । बाकी बोले—यही कारण है । हम भी जेतवन में तैथिक आश्रम बनवाएँ । इससे हमको भी लाभ होगा ।

उन सब ने ‘यह ठीक है’ निश्चय कर सोचा—यदि हम राजा को बिना सूचित किए आश्रम बनवाएँगे तो भिक्षु रोक देंगे । कुछ पाकर पक्षपात न करनेवाला कोई नहीं है । इसलिए राजा को रिश्त दे आश्रम के लिए जगह लेंगे ।

यह सलाह कर, उपस्थापकों से मांग, राजा को लाख दे कहा—महाराज ! हम जेतवन में तैथिक-आश्रम बनाएँगे । यदि भिक्षु तुम्हें कहें कि हम बनाने नहीं देंगे तो उनकी बात स्वीकार न करना ।

राजा ने रिश्वत के लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया । तैथिकों ने राजा को मिला बड़ियों को बुलवा काम शुरू किया । बड़ा शोर हुआ । शास्ता ने पूछा—आनन्द ! यह हल्ला करने वाले, शोर मचाने वाले कौन हैं ?

“भन्ते ! अन्य तैथिक जेतवन में तैथिक-आश्रम बनवा रहे हैं । वहीं यह शोर हो रहा है ।”

“आनन्द ! यह स्थान तैथिकों के योग्य नहीं है । तैथिक शोर प्रिय होते हैं । उनके साथ रहना नहीं हो सकता ।”

शास्ता ने भिक्षु-संघ को एकत्र कर कहा—“भिक्षुओं, जाओ राजा को कह कर तैथिक-आश्रम का बनवाना रुकवाओ ।”

भिक्षु जाकर राजा के प्रवेशद्वार पर खड़े हुए । राजा ने यह सुना कि भिक्षु आए हैं तो यह समझकर कि तैथिकों के आश्रम के ही बारे में आए होंगे रिश्वत लिए रहने के कारण कहलवा दिया कि राजा घर में नहीं है । भिक्षुओं ने जाकर शास्ता से कहा । शास्ता ने ‘रिश्वत के कारण ऐसा करता है’ सोच दोनों प्रधान शिष्यों को भेजा । राजा ने उनका भी आना सुन वैसे ही कहलवा दिया । उन्होंने भी आकर शास्ता से कहा ।

‘सारिपुत्र ! अब राजा का घर में बैठना न मिलेगा, बाहर निकलना ही होगा’ कह शास्ता अगले दिन पूर्वाह्न समय पहन कर, पात्र चीवर ले पांच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के प्रवेशद्वार पर पहुँचे । राजा ने सुना तो वह महल से उतर पात्र ले शास्ता को (अन्दर) लिवा भिक्षुसंघ को, जिसमें मुख्य बुद्ध थे, यवागु-खाद्य दे, शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा । शास्ता ने राजा को एक तरह का धर्मोपदेश करते हुए कहा—महाराज ! पुराने राजाओं ने रिश्वत ले शीलवानों में परस्पर झगड़ा कराया । वे अपने देश के स्वामी नहीं रहे और महान् विनाश को प्राप्त हुए ।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में भरु राष्ट्र में भरु राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व पाँच अभिञ्जा तथा आठ समापत्ति प्राप्त थे। वे गण-शास्ता तपस्वी हो, हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रह नमक-खटाई खाने के लिए पाँच सौ तपस्वियों को साथ ले हिमवन्त से उतरे। क्रमशः भरु नगर पहुँच, वहाँ भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर टहनी-टहनी वाले बट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वहीं रहने लगे। इस प्रकार जब उस ऋषि-समूह को वहाँ रहते आधा महीना हुआ, एक दूसरा गण-शास्ता पाँच सौ तपस्वियों सहित आ, नगर में भिक्षा माँग, नगर से निकल, दक्षिण-द्वार पर उसी बट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वहीं रहने लगा। वे दोनों ऋषि-समूह वहाँ यथारुचि रह कर हिमालय चले गए। उनके चले जाने पर दक्षिण-द्वार का बट वृक्ष सूख गया। अगली बार आने पर दक्षिण-द्वार के बट-वृक्ष के नीचे रहनेवालों ने पहले पहुँच जब यह देखा कि उनका बट-वृक्ष सूख गया है, तो वे भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर बट-वृक्ष के नीचे जा, भोजन कर वहीं रहने लगे। दूसरे ऋषि पीछे आकर, नगर में भिक्षा माँग, अपने वृक्ष के नीचे पहुँच भोजन कर वहाँ रहने लगे।

उन दोनों में 'यह तुम्हारा वृक्ष है' 'यह हमारा वृक्ष है' करके झगड़ा हो गया। झगड़ा बढ़ गया। एक पक्ष ने कहा कि हम यहाँ रहते थे, इसलिए इस स्थान पर तुम्हारा अधिकार नहीं। दूसरे ने कहा कि इस बार हम यहाँ पहले आए, इसलिए तुम्हारा अधिकार नहीं। इस प्रकार वे दोनों 'हम स्वामी' 'हम स्वामी' करके वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगड़ा करते हुए राज-कुल गए। राजा ने पहले रहे ऋषि-समूह को ही स्वामी बनाया। दूसरों ने कहा अब हम यह नहीं कहलाएँगे कि इनसे हार गए। उन्होंने दिव्य-चक्षु से चक्रवर्ती राजा के योग्य एक रथ का चौखटा देख, ला, राजा को रिश्वत दे कहा— महाराज ! हमें भी (उस स्थान का) स्वामी बनाएँ।

राजा ने रिश्वत ले दोनों समूह रहें (कह) दोनों को स्वामी बनाया। दूसरे ऋषियों ने उस रथ के चौखटे के रत्नों के पहिए लाकर रिश्वत दे कहा—महाराज ! हमें ही स्वामी करें।

राजा ने वैसा ही किया।

ऋषियों ने सोचा कि हम काम-भोगों को छोड़ प्रव्रजित हुए। फिर वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगड़ते हुए रिश्वत देने लगे। हमने यह अनुचित किया। इस प्रकार पश्चात्ताप कर वे जल्दी से भाग कर हिमालय ही चले गए।

सकल भरु राष्ट्रवासी देवताओं ने एकत्र होकर कहा—राजा ने शीलवानों में झगड़ा पैदा करके अच्छा नहीं किया। उन्होंने क्रोधित हो तीन सौ योजन के भरु राष्ट्र को समुद्र में तूफान लाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार एक भरु राजाओं के कारण सारा राष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ (कह) शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

इसीनमन्तरं क्त्वा भरुराजाति मे सुतं,
उच्छिन्नो सहरदठेन स राजा विभवं गतो॥
तस्मा हि छन्दागमनं नप्पसंसन्ति पण्डिता,
अबुदठच्चित्तो भासेय्य गिरं सच्चूपसंहितं॥

[ऐसा मैंने सुना कि ऋषियों में भेद करके भरु राजा अपने राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसलिए पण्डित लोग पक्षपात की प्रशंसा नहीं करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।]

अन्तरं क्त्वा, पक्षपात के कारण भेद करके। भरु राजा भरु राष्ट्र का राजा। इति मे सुतं ऐसा मैंने पहले सुना। तस्मा हि छन्दागमनं, क्योंकि पक्षपात करके भरु राजा राष्ट्र सहित नष्ट हुआ इसलिए पण्डित पक्षपात की प्रशंसा नहीं करते। अबुदठच्चित्तो, विकारों से मलिन चित्त न हो। भासेय्य गिरं सच्चे पसंहितं यथार्थ, अर्थयुक्त, सकारण वाणी ही बोले।

जिन्होंने भरु राजा के रिश्वत लेते समय 'यह उचित नहीं है' कह निन्दा करते हुए सच्ची बात कही, वे जहाँ खड़े थे वहाँ नारियल के द्वीप में आज भी हजारों दीपक (जलते) दिखाई देते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज, पक्षपात नहीं करना चाहिए, प्रव्रजितों में झगड़ा नहीं कराना चाहिए' कह जातक का मेल बैठाया।

में उस समय में ज्येष्ठ ऋषि था ।

राजा ने तथागत के भोजन करके चले जाने पर आदिमियों को भेज कर तैथिकों का आश्रम विध्वंस करा दिया । तैथिक अप्रतिष्ठित हो गए ।

२१४. पुण्णनदी जातक

“पुण्णं नदि . . .” यह शास्ता ने जतवन में विहार करते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने तथागत की प्रज्ञा के बारे में बातचीत चलाई—
आयुष्मानो ! सम्यक् सम्बुद्ध महाप्रज्ञा हैं, विस्तृतप्रज्ञा हैं, प्रसन्नप्रज्ञा हैं, क्षिद्र-प्रज्ञा हैं; तीक्ष्ण-प्रज्ञा उनकी प्रज्ञा बंधने वाली है, वे उपाय कुशल हैं । शास्ता ने आकर पूछा—‘भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर भिक्षुओ, तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् तथा उपायकुशल नहीं-हैं, पहले भी थे’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर तक्षशिला जा सब शिल्प सीख पिता के मरने पर पुरोहित का पद पा राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए ।

आगे चलकर राजा ने चुगली करने वालों की बात का विश्वास कर क्रोधित हो बोधिसत्त्व को ‘मेरे पास मत रह’ कह निकाल दिया । बोधिसत्त्व स्त्री-बच्चों को ले काशी के एक गामड़े में रहने लगे । फिर राजा को बोधिसत्त्व के गुणों की याद आई । उसने सोचा कि किसीको भेजकर मेरे लिए आचार्य्य को बुलाना ठीक

नहीं। एक गाथा रच, पत्र लिज, कीबे का मांस पकवा, सफेद वस्त्र में लपेट, राजकीय मोहर लगाकर भेजूंगा। यदि पण्डित होगा, पत्र पढ़ कर कीबे के मांस का भाव समझ कर चला आएगा। नहीं, तो नहीं आएगा। उसने यह गाथा पत्र में लिखी—

पुष्पं नदि येन च पेय्यमाहु,
जातं यवं येन च गुह्यमाहु॥
दूरं गतं येन च अवह्यन्ति,
सो त्यागतो हन्व च भुञ्ज ब्राह्मण॥

[जिसके पीने योग्य होने से नदी पूर्ण समझी जाती है, जिसको छिपा सकने योग्य होने से जो उत्पन्न हुए समझे जाते हैं; जिसके बोलने से दूर गए आने वाले समझे जाते हैं; वह तरे लिए आया है। ब्राह्मण ! इसे खा।]

पुष्पं नदि येन च पेय्यमाहु, 'काकपेय्य नदी' कहते हुए पूर्णनदी को ही पेय्य कहते हैं। अपूर्ण नदी काकपेय्य नदी नहीं कहलाती; जब नदी किनारे खड़े हो गद्गद पसार कर कौआ भी पी सकता है, तभी उसे काकपेय्य कहते हैं। जातं यवं येन च गुह्यमाहु, जो शोर्षक मात्र है। यहाँ सभी पैदा हुई, उत्पन्न हुई, तरुण खेती से मतलब है। वह जब अन्दर दाखिल हुए कीबे को छिपा सकती है तभी गोपन करने वाली होने से गुह्य कहलाती है। किसे छिपाती है? कीबे को। इस प्रकार कीबे को छिपाने से काक-गुह्य। काक-गुह्य कहने वाले (लोग) गुह्य-वचन का कारण कौआ होता है इसलिए काक-गुह्य कहते हैं। इसीलिए कहा है—येन च गुह्यमाहु। दूरं गतं येन च अवह्यन्ति दूर गया हुआ प्रवासी प्रिय-जन होने पर; जिसके आकर बैठने पर (लोग) कहते हैं कि यदि अमुक नाम का व्यक्ति आने वाला है तो कीबे बोल अथवा जिसके बोलने पर लोग समझते हैं क्योंकि कौआ बोलता है, इसलिए अमुक नाम का व्यक्ति आएगा; इस तरह कहने वाले जिसके कारण कहते हैं, विचार करते हैं, व्यक्त करते हैं। सो त्यागतो वह तरे लिए लाया गया है। हन्व च भुञ्ज ब्राह्मण, ब्राह्मण ग्रहण कर, खा। मतलब इससे कीबे के मांस का खा।

इस प्रकार राजा ने इसे पत्र में लिख बोधिसत्त्व के पास भेजा । उसने पत्र बाँच 'राजा मुझे देखना चाहता है' कह दूसरी गाथा लिखी—

यतो मं सरती राजा बायसम्पि पहेतबे,
हंसा कोञ्चामयूरा च असत्तियेव पापिया ॥

[जब राजा कौवे का मांस पाकर भी मुझे भोजना याद रखता है, तो हंस कौञ्च और मयूर की तो बात ही क्या ? याद न आना ही बुरा है ।]

यतो मं सरति राजा बायसम्पि पहेतबे, जब राजा कौवे का मांस पाकर भी मुझे उसे भोजना याद रखता है । हंसा कोञ्चामयूरा च, जब इसके लिए हंस आदि लाए जाएँगे, यह हंसमांस आदि पाएगा, तब मुझे क्यों न याद करेगा ? अट्टकथा में हंसकोञ्चमयूरानं पाठ है । वह सुन्दरतर है । अर्थ यही है कि इन हंस आदि का मांस पाकर मुझे क्यों न याद करेगा ? असत्तियेव पापिया यह या वह मिलने पर याद आना ही अच्छा है । दुनिया में याद न आना ही बुरा है ; याद न करना ही हीन है, खराब है । वह हमारे राजा नहीं है । राजा मुझे याद करता है । मेरे आने की प्रतीक्षा करता है । इसलिए जाऊँगा ।

गाड़ी जुड़वा, जाकर राजा को देखा । राजा ने सन्तुष्ट हो पुरोहित का ही पद दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेसना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । पुरोहित मैं ही था ।

२१५. कच्छप जातक

“अबबो वत अत्तानं. . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कौकालिक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कथा महात्तक्कारि^१ जातक में आएगी । उस समय शास्ता ने कहा—
भिक्षुओ, कौकालिक केवल अभी अपनी वाणी से नहीं मारा गया, पहले भी मारा गया । यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए । वह राजा बहुत बोलने वाला था । वह बोलता तो दूसरों को बोलने का मौका न मिलता । बोधिसत्त्व उसकी वाचालता हटाने का कोई उपाय सोचते हुए घूमते थे ।

उस समय हिमालय-प्रदेश के किसी तालाब में एक कछुआ रहता था । दो हंस-बच्चों ने शिकार के लिए घूमते हुए उससे दोस्ती कर ली । उसके प्रति दृढ़ विश्वासी हो एक दिन हंस-बच्चों ने कछुवे से कहा—दोस्त कछुवे ! हमारे हिमवन्त में चित्रकूट पर्वत के नीचे कञ्चन गुफा में रहने का रमणीक स्थान है । हमारे साथ चलेगा ?

“मैं कैसे चलूँगा ?”

“हम तुझे लेकर चलेंगे ; यदि तू अपने मुँह पर काबू रख सकेगा, किसी को कुछ न कहेगा ।”

“स्वामी ! काबू रक्खूँगा । मुझे लेकर चलें ।”

^१ महात्तक्कारि जातक (४८१)

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। एक लकड़ी को कछुवे को मुँह में दे, उसके दोनों सिरों को अपने मुँह में ले, वे आकाश में उड़े। उसे इस प्रकार हंसों द्वारा लिए जाते देख गाँव के लड़कों ने कहा—दो हंस कछुवे को डंडे पर लिए जाते हैं।

हंसों की गति तेज होने के कारण वे वाराणसी नगर के राजमहल के ऊपर आ पहुँचे थे। कछुवे ने "दुष्ट छोकरो! यदि मेरे मित्र मुझे ले जाते हैं तो इसमें तुम्हारा क्या?" कहने की इच्छा से उस लकड़ी को जहाँ से पकड़ा था छोड़ दिया। वह खुले आंगन में गिर दो टुकड़े हो गया। एक शोर हुआ—कछुआ खुले आंगन में गिर दो टुकड़े हो गया।

अमात्यों से घिरे हुए राजा ने बोधिसत्त्व को साथ ले उस जगह पहुँच, कछुवे को देख पूछा—पण्डित! यह कैसे गिरा?

बोधिसत्त्व ने सोचा—मैं बड़ी देर से राजा को उपदेश देने की इच्छा से किसी उपाय की खोज में घूमता हूँ। इस कछुवे की हंसाँ के साथ दोस्ती हुई होगी। वे 'इसे हिमवन्त ले चले' सोच लकड़ी मुँह में दे आकाश में उड़े होंगे। इसने किसी की बात सुन जबान पर काबू न होने से कुछ कहने की इच्छा से डण्डा छोड़ दिया होगा। इस प्रकार आकाश से गिर कर मरा होगा। वह बोला—"हाँ! महाराज! जो वाचाल होते हैं; जिनके वचन की सीमा नहीं होती वे इस प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं।" इतना कह यह गाथाएँ कहीं—

अवधी वत अत्तानं कच्छपो व्याहरं गिरं,
मुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि वाचाय सकिया वधि॥
एतस्मि दिस्वा नरबिरिय सेट्ठ!
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिबेलं;
पत्तसि बहुभाणेन कच्छपं व्यसनं गतं॥

[कछुवे ने बाणी का प्रयोग करके अपने को मार डाला। अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए अपनी बाणी के कारण (उसे छोड़ कर) अपने को मारा। नरवीर्य श्रेष्ठ! इसे भी देख कर (आदमी को) कुशल-बाणी ही बोलनी चाहिए और वह भी समय (की सीमा) लाँघ कर नहीं। देखते ही हो, अधिक बोलने से कछुवा मर-मर।]

अवधी बत घात किया। व्याहरं व्यवहार करते हुए। सुगृहीतस्मि कट्ठस्मि मुख से अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए। बाचाय सकिया बधि वाचाल होने से अनुचित समय पर बोल कर पकड़ी हुई जगह को छोड़ अपनी उस वाणी के कारण अपने को मार डाला। इस प्रकार यह मरा। किसी दूसरे कारण से नहीं।

एतस्मि बिस्वा यह बात भी देखकर नरविरिय सेट्ठ नरों में श्रेष्ठ-वीर्य्य ! उत्तमकीर राजवर ! वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं सत्यादि से युक्त कुशल वाणी ही पण्डित आदमी बोले; वह भी हितकर समयानुकूल। समय (की सीमा) लाँघ कर असीम वाणी न बोले; पस्ससि प्रत्यक्ष देखता है बहुभाषेन अधिक बोलने से कच्छपं व्यसनं गतं, यह कछुआ मर गया।

राजा ने 'मेरे लिए कह रहा है' सोच पूछा—पण्डित ! मेरे बारे में कह रहा है ?

बोधिसत्त्व—महाराज ! चाहे आप हों, चाहे कोई और हों; जो कोई सीमा लाँघ कर बोलता है वह इसी प्रकार दुःख भोगता है। यह स्पष्ट करके कहा।

उस समय से राजा संयम कर मितभाषी हो गया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय कछुआ कोकालिक था। दो हंस-बच्चे दो महास्थविर। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

२१६. मच्छ जातक^१

“न मायमग्नि तपति . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्या के आकर्षण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है? “भन्ते, सचमुच” कहने पर शास्ता ने पूछा—“किसने उत्कण्ठित किया?” जवाब दिया—पूर्व-भार्या ने। शास्ता ने “भिक्षु! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी तू इसके कारण काँटे से बीधा जाकर, अङ्गारों पर पकाया जाकर खाया जाने वाला था। पण्डित की सहायता से जान बची” कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके पुरोहित हुए। एक दिन मछुए जाल में फँसे मच्छ को निकाल कर, गर्म-बालू पर डाल, ‘उसे अङ्गारों में पका कर खाएँगे’ सोच शूल तराशने लगे। मच्छ ने मछली के बारे में रोते हुए यह गाथा कही—

न मायमग्नि तपति न सुलो साधु तच्छित्तो,
यञ्च मं मञ्जति मच्छी अञ्जं सो रतिया गतो ॥
सो मं वहति रागग्नि चित्तं वूपतपेति मं,
जालिनो मुञ्चयिरा मं न कामे हञ्जते वचि ॥

^१बेसो मच्छ जातक (१.४.३४)

[न मुझे, अग्नि तपाती है, न अच्छी तरह से छीला हुआ शूल ही। यह जो मुझे मछली समझेगी कि रति के कारण वह दूसरी मछली के पास चला गया— इसी का मुझे शोक है। मुझे वह रागाग्नि जला रही है। मेरे चित्त को तपाती है। हे मछुओ, मुझे छोड़ दो। कामी कहीं नहीं मारा जाता है।]

न मायमग्नि तपति, न मुझे यह आग जलाती है, न तपाती है ; अर्थ है शोक नहीं है। न सूलो यह शूल भी साधुतच्छित्तो न मुझे ताप देता है, न शोक उत्पन्न करता है। यञ्चं मं मञ्जति, जो मुझे मछली ऐसा कहेगी कि वह पंच कामगुणों से प्रेरित हो दूसरी मछली के पास चला गया ; यही मुझे तपाता है ; यही शोक उत्पन्न करता है।

सो मं बहति, जो यह रागाग्नि है वह मुझे जलाती है। चित्तं वृषतपेति मं, रागयुक्त मेरा चित्त ही मुझे तपाता है, कष्ट देता है, पीड़ा देता है। जालिनो कैवर्त्ता (मछुओं) को सम्बोधन करता है। वह जाल के अर्थी होने से जालिनो कहलाते हैं। मुञ्चयिरा मं, स्वामी मुझे छोड़ दें, यही याचना करता है न कामे हञ्जते क्वचि, काम में प्रतिष्ठित, काम में बहता हुआ प्राणी कहीं नहीं मारा जाता ; तुम्हारे जैसों को मारना उसे योग्य नहीं। अथवा कामे हेतु के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग है। काम-हेतु से मछली के पीछे-पीछे चलने वाला कहीं भी तुम्हारे जैसों से नहीं मारा जाता।

उसी समय बोधिसत्त्व ने नदी किनारे जा, उस मच्छ का रोना सुन, मछुओं के पास पहुँच, उस मच्छ को छुड़ाया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय मछली पूर्व-भार्या थी। उत्कण्ठित भिक्षु मच्छ था। पुरोहित मैं ही था।

२१७. सेगु जातक

“सब्सो लोको” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तरकारी बेचने वाले उपासक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कथा पहले परिच्छेद में आ ही चुकी है ।^१ इस कथा में शास्ता ने पूछा—उपासक ! क्यों देर करके आया है ?

“भन्ते ! मेरी लड़की सदैव हँसमुख रहती थी । मैंने उसकी परीक्षा कर उसे एक तरुण को दिया । सो यह करने से आपके दर्शन के लिए आने का समय नहीं मिला ।”

“उपासक ! वह अब ही सदाचारिणी नहीं है । पहले भी सदाचारिणी थी । तूने न केवल अभी उसकी परीक्षा नहीं की है, पहले भी की ही थी ।”

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता हुए । उस समय उसी तरकारी बेचने वाले उपासक ने लड़की की ‘परीक्षा करने के लिए’ उसे जंगल में ले जा काम-भोग चाहने वाले की तरह उसे हाथ से पकड़ा । वह रोने लगी । उसे यह पहली गाथा कही—

सब्सो लोको असमनो अहोसि,
अकोविदा गामघम्मस्स सेगु॥
कोमारि को नाम तवज्ज बम्मो,
यं त्वं गहिता पवने परोवसि॥

[सारा लोक (इससे) आनन्दित (होता) है। सेगु तू इस ग्राम्य-धर्म से अपरिचित है। कुमारी ! यह तेरा क्या धर्म है कि तू बन में पकड़ने पर रोती है।]

सबो लोको अत्तमनो अहोसि, अम्म ! सारे प्राणी इस काम-भोग के सेवन से सन्तुष्ट (होते) हैं। अकोविदा गामधम्मस्स सेगु, सेगु उसका नाम है। सो अम्म सेगु ! तू इस ग्राम्य-धर्म में, इस चाण्डाल-कर्म में दक्ष नहीं है। कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो, अम्म कुमारी ! यह आज तेरा क्या स्वभाव है ? यं त्वं गहिता पवने परोदसि, जो तू मेरे द्वारा इस बन में कामभोग के लिए पकड़ी जाने पर रोती है। स्वीकार नहीं करती। यह तेरा क्या स्वभाव है ? क्या तू कुमारी ही है ?—पूछता है।

इसे सुन कुमारी ने कहा—हाँ तात ! मैं कुमारी ही हूँ। मैं मैथुन-धर्म को नहीं जानती हूँ। ऐसा कह, रोती हुई वह दूसरी गाथा बोली—

यो दुक्खफट्ठाय भवेम्य ताणं,
सो मे पिता दूभि वने करोति॥
सा कस्स कन्धामि वनस्स मज्जे,
यो तायिता सो सहसा करोति॥

अर्थ उपरोक्त प्रकार^१ से ही है।

तब वह तरकारी बेचने वाला उस लड़की की परीक्षा कर, धर ले जा, तरुण को दे, यथा-कर्म सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का भेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर तरकारी बेचने वाला श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय लड़की (अब की) लड़की ही थी। पिता पिता ही हुआ। उस बात को प्रत्यक्ष करने वाला वृक्ष-देवता मैं ही था।

२१८. कूटवाणिज जातक

“सठस्स साठेयमिदं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कूट व्यापारी के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कूट व्यापारी और पण्डित व्यापारी दो श्रावस्ती निवासी व्यापारियों ने साक्षा व्यापार करना आरम्भ करके, सामान की पाँच सौ गाड़ियाँ भरीं । वे पूर्व से पश्चिम घूमते हुए व्यापार कर बहुत मुनाफा कमा श्रावस्ती लौटे । पण्डित व्यापारी ने कूट व्यापारी को कहा—दोस्त ! सामान बाँट लें ।

कूट व्यापारी ने सोचा—यह बहुत दिनों तक आराम से सोना तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण थका हुआ अपने घर जाकर नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे भोजन खाएगा ; बदहजमी से मरेगा । तब यह सारा सामान मेरा ही हो जाएगा । इसलिए वह ‘आज नक्षत्र अच्छा नहीं, कल देखेंगे’, ‘आज दिन अच्छा नहीं, कल देखेंगे’ करता हुआ समय बिताने लगा ।

पण्डित व्यापारी ने उसे मजबूर कर सामान बँटवाया । फिर गन्धमाला ले शास्ता के पास जा, पूजा-वन्दना कर एक ओर बैठा । शास्ता ने पूछा—कब आया ?

“भन्ते ! मुझे आए आधा महीना हुआ ।”

“तो इस प्रकार देर करके क्यों बुद्ध की सेवा में आया है ?”

उसने वह हाल कहा । शास्ता ने ‘उपासक ! यह केवल अभी ठग व्यापारी नहीं है, पहले भी ठग व्यापारी ही था’ कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उस राजा के विनिश्चय-अमात्य^१ हुए।

उस समय एक ग्राम-वासी तथा एक नगर-वासी दो बनियों की आपस में मित्रता थी। ग्रामवासी ने नगरवासी के पास पाँच सौ फाल रक्खे। उसने उन फालों को बेच, कीमत ले, जिस जगह पर फाल रक्खे थे वहाँ चूहों की मँगनें फैला दीं। समय बीतने पर ग्रामवासी ने आकर कहा—मेरे फाल दे। कुटिल बनिए ने चूहे की मँगनें दिखाकर कहा कि तेरे फालों को चूहे खा गए।

दूसरे ने 'अच्छा खा गए सो खा गए, चूहों के खा लेने पर क्या किया जा सकता है' कह नहाने के लिए जाते समय उसके पुत्र को साथ ले जा एक मित्र के घर में बिठा कर कहा—इसे कहीं न जाने दें। फिर स्वयं नहा कर कुटिल बनिए के घर गया।

उसने पूछा—मेरा पुत्र कहाँ है ?

“मैं तेरे पुत्र को किनारे बैठा कर पानी में डुबकी लगा रहा था। एक चिड़िया आई और तेरे पुत्र को पंजों में ले आकाश में उड़ गई। मैंने हाथ पीटे, चिल्लाया, कोशिश की—लेकिन तब भी उसे न छुड़ा सका।”

“तू झूठ बोलता है। चिड़िया बच्चों को लेकर नहीं जा सकती।”

“मित्र, हो, असम्भव होने पर भी मैं क्या करूँ ? तेरे पुत्र को चिड़िया ही ले गई है।”

उसने डराते हुए कहा—‘अरे मनुष्यघातक, दुष्ट चोर ! अभी अदालत में जाकर निकलवाता हूँ।’ यह कह वह चला। ‘जो तुझे अच्छा लगे कर’ कहते हुए वह भी उसके साथ अदालत गया। कुटिल व्यापारी ने बोधिसत्त्व से कहा—“स्वामी ! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया। अब ‘मेरा पुत्र कहाँ है ?’ पूछने पर कहता है कि उसे चिड़िया ले गयी। इस मुकद्दमे का फैसला करें।”

बोधिसत्त्व ने दूसरे से पूछा—

“क्या यह सच है ?”

^१ मुकद्दमों का फैसला करने वाला अमात्य।

“स्वामी ! मैं उसे लेकर गया । चिड़िया के उसे ले जाने की बात सच ही है ।”

“क्या इस दुनिया में चिड़ियाँ बच्चों को ले जाती हैं ?”

“स्वामी ! मैं भी आप से पूछना चाहता हूँ कि चिड़ियाँ तो बच्चों को लेकर आकाश में नहीं उड़ सकतीं, तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते हैं ?”

“इसका क्या मतलब है ?”

“स्वामी ! मैंने इसके घर में पाँच सौ फाल रखे । यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए और ‘यह तेरे फालों को खाने वाले चूहों की मँगनी है’ वह मँगनी दिखाता है । स्वामी ! यदि चूहे फालें खाते हैं, तो चिड़ियाँ भी बच्चे ले जाती हैं । यदि नहीं खाते हैं, तो बाज़ तक भी नहीं ले जा सकते हैं । यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए । उन्होंने खाए, वा नहीं खाए—इसकी परीक्षा करें । मेरे मुकद्दमे का फैसला करें ।”

बोधिसत्त्व ने सोचा—इसने शठ के प्रति शठता का व्यवहार करके जीतने की बात सोची होगी । उसने कहा—तूने ठीक सोचा है । और यह गाथा कही—

सठस्स साठेय्यमिदं सुचिन्तितं,
पञ्चोड्ढितं पतिकूटस्स कूटं ।
फालञ्चे अबेय्यं सूसिका,
कस्मा कुमारं कुळला नो हरेय्युं ॥
कूटस्स हि सन्ति कूटकूटा,
भवति चापि निकतिनो निकत्था ।
देहि पुत्तनदठ फालनदठस्स फालं,
मा ते पुत्तमहासि फालनदठो ॥

[शठ के प्रति शठता, यह अच्छा सोचा है । कुटिल के प्रति कुटिलता का जाल फैलाया है । यदि चूहे फाल खा जाएँगे, तो चिड़ियाँ बच्चे को क्यों नहीं ले जाएँगी ?

कुटिल के प्रति कुटिलता का व्यवहार करने वाले ठग हैं । ठग को भी ठगने वाले होते हैं । हे पुत्र-नष्ट ! जिसकी फाल खोई गई है उसकी फाल दे । तेरे पुत्र को, जिसकी फाल नष्ट हुई है, वह न ले जाए ।]

सठस्स, शठता से, धोखे से कोई ढंग निकाल कर दूसरे का माल खाना चाहिए, ऐसा समझने वाले शठ के प्रति । साठेभिबं सुचिन्तितं, जो यह शठता का व्यवहार सोचा है, सो तूने ठीक सोचा है । पञ्चोड्डितं पतिकूटस्स कूटं, कुटिल आदमी के प्रति तूने कुटिलता का जाल ठीक फैलाया, उसकी चाल का जवाब दे, जाल फैलाने सा ही किया—यही अर्थ है । फालञ्चे अबेय्यं मूसिका, यदि चूहे फाल खाएँ । कस्मा कुमारं कुलला नो हरेय्यं, जब चूहे फाल खा जाते हैं तो चिड़ियाँ क्यों बच्चों को नहीं ले जाएँगी ?

कूटस्सहि सन्ति कूटकूटा, तू समझता है कि मैं ही चूहों को फाल खिला देने वाला कुटिल पुरुष हूँ; तरे जैसे कुटिल पुरुष के साथ कुटिलता करने वाले इस लोक में बहुत कुटिल हैं । कुटिल के (भी) कुटिल यह कुटिल के प्रति कुटिलता करने वालों का नाम है । यही कहा गया है कि कुटिल के प्रति कुटिलता करने वाले हैं । भवति चापि निकलिनो निकत्था, ठगने वाले को ठगने वाला भी दूसरा आदमी होता है । बेहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं, भो पुत्र-नष्ट-पुरुष ! जिसकी फाल नष्ट हुई है उसकी फाल दे । मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो, यदि इसकी फाल नहीं देगा, तो यह तरे पुत्र को ले जाएगा । जिससे यह न ले जाए । इसलिए इसकी फाल दे ।

—————

“स्वामी ! मैं इसकी फाल देता हूँ, यदि यह मेरा पुत्र दे ।”

“स्वामी ! मैं देता हूँ, यदि यह मेरे फाल दे ।”

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया गया था उसने पुत्र पाया । जिसकी फाल खोई गई थी उसने फाल पाई । दोनों कर्मानुसार गए ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना जातक का मेल बैठाया । उस समय का कुटिल व्यापारी ही कुटिल व्यापारी था । पण्डित व्यापारी ही पण्डित व्यापारी था ।

मुकदमा फैसला करने वाला अमात्य मैं ही था ।

२१९. गरहित जातक

“हिरञ्जम्मे सुवण्णम्मे...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही जिसका मन बुद्ध-शासन में नहीं था, जो उत्कण्ठित था।

क. वर्तमान कथा

इस (भिक्षु) का ध्यान किसी भी बात में एकाग्र नहीं होता था। इस अन्यमनस्क हो, जीवन बिताते हुए को शास्ता के पास लाए। शास्ता ने पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

“हाँ! सचमुच।”

“किस कारण से?”

“कामासक्ति के कारण।”

“भिक्षु, कामासक्ति की पूर्व समय में पशुओं ने भी निन्दा की है। तू इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित हो, जिन कामभोगों की पशुओं तक ने निन्दा की है, उनके कारण क्यों उत्कण्ठित हुआ है?”

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय में बानर की योनि में पैदा हुए।

एक बनचर ने उसे पकड़ लाकर राजा को दिया। वह चिरकाल तक राजभवन में रहने के कारण सम्यता सीख गया। राजा ने उसके सम्य-व्यवहार से प्रसन्न हो बनचर को बुलाकर आज्ञा दी—इस बानर को जहाँ से पकड़ा है, वहीं छोड़ आओ। उसने वैसा ही किया।

बानरों ने जब सुना कि बोधिसत्त्व आया है, तो उसे देखने के लिए महान्

शिला-तल पर इकट्ठे हुए। उन्होंने बोधिसत्त्व से कुशल-समाचार की बात कर पूछा—“मित्र, इतने दिन तक कहाँ रहे?”

“वाराणसी में, राजभवन में।”

“कैसे छूटे?”

“राजा ने मुझे खेल करने वाला बन्दर बना, मेरे करतबों से प्रसन्न हो, मुझे छोड़ दिया।”

“आप मनुष्य लोकों का बरताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम सुनना चाहते हैं।”

“मनुष्यों की करनी मुझसे मत पूछो।”

“कहें। हम सुनना चाहते हैं।”

बोधिसत्त्व ने, “मनुष्य चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण हों, सभी मेरा-मेरा करते हैं। वस्तुएँ अस्तित्व में आकर विनष्ट हो जाती हैं, इस अनित्यता को वे नहीं जानते। अब उन अन्धे मूर्खों की बात सुनो” कह यह गाथाएँ कहीं—

हिरञ्जम्मे सुवण्णम्मे ऐसा रत्तिन्विवा कप्पा,
 दुम्मेधानं मनस्सानं अरियधम्मं अपस्सतं॥
 द्वे द्वे गहपतयो गेहे एको तत्थ अमस्सुको,
 लम्बत्थनो वेणिकतो अथो अंकितकण्णको;
 कीतो धनेन बहुना सो तं वितुवते जणं॥

[आर्यधर्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य दिन रात यही बातचीत करते रहते हैं—मेरा हिरण्य, मेरा सोना।

घर में दो दो जने रहते हैं। एक को मूछ नहीं होती। उसके लम्बे स्तन होते हैं, वेणि होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे बहुत धन से खरीदा होता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।]

हिरञ्जम्मे सुवण्णम्मे, यह शीर्षकमात्र है। इन दो पदों से दसों तरह के रत्न अगली-पिछली फसल, सब द्विपद तथा चतुष्पदों का ग्रहण कर ‘यह मेरा यह मेरा’ कहा गया है। ऐसा रत्तिन्विवा कप्पा, मनुष्य-लोक रात दिन यही बातचीत करते रहते हैं। वे पाञ्च स्कन्ध अनित्य हैं, उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं आदि नहीं

जानते हैं। इस प्रकार रोते हुए भटकते हैं। बुद्धमोक्षानं अज्ञानियों की अरिषड्वर्त्म अपस्सत्तं, बुद्धादि आर्य्यों के धर्म को न देखते हुए लोगों की अथवा नौ प्रकार के निर्दोष लोकोत्तर आर्य-धर्म' को न देखते हुए लोगों की यही बातचीत होती है ; अन्य अनित्यता वा दुःख की बातचीत उनकी नहीं होती।

गृहपत्यो घर के मालिक। एको तत्थ उन दो घर के मालिकों में से एक अर्थात् स्त्री। वेणिकत्तो कृतवेणि ; नाना प्रकार से जिसने अपने बालों को क्रम से गठिया रक्खा है। अथो अंकितकण्णको, वह बिंधे हुए कानों वाला, बां छिदे हुए कानों वाला। लम्बे कानों के बारे में कहा। कीत्तो धनेन बहुना, यह मूछ-विरहित, लम्बे-स्तन वाला, वेणिधारी, छिदे कान वाला माता-पिता को बहुत धन देकर खरीदा गया; सजा कर, गहने पहना कर, गाड़ी में बिठा, बड़ी शान-शौकत से घर में लाया गया। सो तं बिबुदत्ते जनं, वह गृहस्वामी (स्वामिनी) जिस समय से आता है उस समय से दासों, मजदूरों आदि को 'अरे दुष्ट दास ! यह नहीं करता है, अरी दुष्ट दासी ! यह नहीं करती है' आदि वचन-रूपी मुखशक्ति से बींघता है। स्वामी की तरह से व्यवहार करता है। इस प्रकार मनुष्यलोक में बहुत अनुचित है—मनुष्य-लोक की निन्दा की।

यह सुन सभी बन्दरों ने दोनों हाथों से अपने कान जोर से बन्द कर लिए—मत कहें। मत कहें। न सुनने योग्य बात हमने सुनी। इस स्थान पर हमने अनुचित बात सुनी। इसलिए उस स्थान की भी निन्दा कर अन्यत्र चले गए। उस पाषाण-शिला का नाम निन्दित-पाषाण शिला हो गया।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला सत्त्वों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्वों के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय के वानर-गण बुद्ध-परिषद् थी। वानरेन्द्र तो मैं ही था।

२२०. धम्मद्व जातक

“सुखं जीवितरूपोत्ति....” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय बघ का प्रयत्न करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने ‘भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने मेरे बघ के लिए प्रयत्न किया है, पहले भी किया है; लेकिन त्रासमात्र भी पैदा नहीं कर सका’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में पायासपाणी नाम का राजा राज्य करता था । काळक नामका उसका सेनापति था । उस समय बोधिसत्त्व उसी के पुरोहित थे । नाम था धर्मध्वज । राजा के सिर को अलंकृत करने वाले नाई का नाम था छत्तपाणी ।

राजा धर्म-पूर्वक राज्य करता था; लेकिन उसका सेनापति मुकद्दमों का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था । चुगल-खोर रिश्वत लेकर स्वामी को अस्वामी कर देता था ।

एक दिन मुकद्दमे में हारे हुए आदमी ने बाहें पकड़ कर रोते हुए, अदालत से निकल राज-सेवा में जाते हुए बोधिसत्त्व को देखा । उसने उसके पाँव में गिरकर कहा—स्वामी ! तुम्हारे सदृश राजा के अर्थधर्मानुशासक के होते हुए काळक सेनापति रिश्वत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है; और अपने मुकद्दमे हारने की बात कही ।

बोधिसत्त्व ने मन में कष्ट का भाव ला कर कहा—अरे, आ तेंरे मुकद्दमे का फैसला कल्लंगा । वह उसे लेकर मुकद्दमे की जगह गए । जन-समूह इकट्ठा हो गया । बोधिसत्त्व ने उस मुकद्दमे के फैसले को उलटते हुए फिर स्वामी को

ही स्वामी बना दिया। जन-समूह ने 'वाह-वाह' की। बड़ा शोर हुआ। राजा ने सुनकर पूछा—यह क्या आवाज है ?

“देव ! धर्मध्वज पण्डित ने एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका ठीक फैसला नहीं हुआ था, ठीक फैसला किया है। उसीमें यह 'वाह-वाह' हो रही है।”

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—“आचार्य्य ! तुमने मुकद्दमे का फैसला किया ?”

“हाँ महाराज ! काळक ने जिस मुकद्दमे का ठीक फैसला नहीं किया, उसका फैसला किया।”

“अब से तुम ही मुकद्दमे का फैसला किया करो। मेरे कानों को सुख मिलेगा। जनता की उन्नति होगी।”

उसके इच्छा न करने पर भी राजा ने “प्राणियों पर दया करने के लिए न्याय की गद्दी पर बैठें” प्रार्थना कर राजी किया। तब से बोधिसत्त्व न्याय की गद्दी पर बैठने लगे। स्वामी को ही स्वामी बनाते।

उसके बाद से जब काळक को रिशवत न मिलने के कारण लाभ की हानि हुई तो उसने “महाराज ! धर्मध्वज पण्डित आपका राज्य चाहता है” कह राजा और बोधिसत्त्व में भेद पैदा करने की कोशिश की।

राजा ने अविश्वास करते हुए मना किया—ऐसा मत कहो। वह बोला—यदि मेरा विश्वास नहीं करते तो उसके आने के समय झरोखे से देखें। तब देखेंगे कि इसने सारे नगर को अपने हाथ में कर लिया है। राजा ने उसके पास मुकद्दमे के लिए आए लोगों को उसी के आदमी समझ विश्वास कर पूछा—

“सेनापति ! क्या करें ?”

“देव ! इसे मार डालना चाहिए।”

“कोई बड़ा दोष न दिखाई देने पर कैसे मारें ?”

“एक उपाय है।”

“कौन सा उपाय ?”

“इसे कोई असम्भव कार्य्य करने के लिए कह कर उसके न कर सकने पर, उस दोष का दोषी बना मारेंगे।”

“कौन सा असम्भव कार्य्य ?”

“महाराज, जरखेज भूमि में लगाने पर, देसभाल करने पर उद्यान दो चार

साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहें कि कल हम उद्यान में खेलेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।”

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—“पण्डित ! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले। अब नए उद्यान में क्रीड़ा करने की इच्छा है। कल क्रीड़ा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाएँ। यदि न बना सकोगे तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।”

बोधिसत्त्व समझ गए कि काळक को रिशवत न मिलने से उसने राजा को फोड़ लिया होगा। वह “महाराज ! कर सका तो देखूंगा” कह घर जा प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेट सोचने लगे। शक्रभवन गर्म हो गया। शक्र ने ध्यान लगा कर देखा। बोधिसत्त्व की पीड़ा को जान उसने जल्दी से आ, सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश में खड़े हो पूछा—“पण्डित क्या चिन्ता कर रहे हो ?”

“तू कौन है ?”

“मैं शक्र हूँ।”

“राजा ने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूँ।”

“पण्डित चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन सदृश उद्यान बना दूंगा। किस जगह पर बनाऊँ ?”

“अमुक स्थान पर बना।”

शक्र बनाकर देवपुर चला गया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उद्यान को प्रत्यक्ष देख जाकर राजा को कहा—

“महाराज, मैंने उद्यान समाप्त कर दिया है। खेलें।”

राजा ने जाकर देखा अठारह हाथ की, मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा; द्वार-अट्टालिका सहित, फूल फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है। उसने काळक से पूछा—पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करें ?

“महाराज, जो एक रात में उद्यान बना सकता है वह राज्य ले सकता है वा नहीं ?”

“अब क्या करें ?”

“उससे दूसरा असम्भव कार्य्य कराएँ।”

“कौन सा काम ?”

“सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनवाएँ।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—

“आचार्य्य ! तुमने उद्यान तो बना दिया अब इसके योग्य सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनाएँ। यदि नहीं बना सकोगे तो तुम्हारी जान जाएगी।”

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज, अच्छा। बना सकेंगे तो बनाएँगे।

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थों वाली, हजार जगह से मुड़ी, पाँच प्रकार के कमलों से ढकी, नन्दन-पुष्करिणी^१ सदृश बना दी। बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा से जाकर कहा—देव, पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख काळक से पूछा—अब क्या करें ? ‘देव, उद्यान के योग्य घर बनाने को कहें।’ राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—“आचार्य्य, इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाएँ जो सारा का सारा हाथी-दाँत का हो। यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।”

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने उसे भी देख काळक से पूछा—अब क्या करें ? ‘महाराज, घर के योग्य मणि बनाने को कहें।’ राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—“पण्डित, इस हाथीदाँत के घर के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश में घूमेंगे। यदि नहीं बना सकोगे, तो तुम्हारी जान जाएगी।”

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन बोधिसत्त्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने देखकर पूछा—अब क्या करें ? “महाराज ! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मध्वज ब्राह्मण को जो जो वह चाहता है, देता है। अब जिसे देवता भी न बना सके, ऐसी आज्ञा दें। चारों अङ्गों^२ से युक्त मनुष्य को देवता भी नहीं बना सकता। इसलिए उसे कहें कि मुझे चारों अङ्गों से युक्त उद्यानपाल बनाकर दे।”

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर कहा—“आचार्य्य, तूने हमारे लिए उद्यान, पुष्करिणी, हाथी-दाँत का प्रासाद, उसमें प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया।

^१ सिंहल में ‘नन्दा पोक्खरलि’ पाठ है।

^२ चार गुणों।

अब मेरे उद्यान की रक्षा करने वाला चारों-अङ्गों से युक्त उद्यानपाल बनाएँ । यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी ।”

बोधिसत्त्व ‘होवे, मिलने पर देखूँगा’ कह, घर जा प्रणीत भोजन खा, सोकर जब प्रातःकाल उठा तो शय्या पर बैठ कर सोचने लगा—देवराज शक्र ने जो स्वयं बना सकता था, बनाया । वह चारों अङ्गों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता । ऐसा होने पर दूसरों के हाथ से मरने की अपेक्षा जंगल में अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है ।

वह बिना किसी से कहे; प्रासाद से उतर, मुख्यद्वार से ही नगर से निकल, जंगल में प्रवेश कर एक वृक्ष के नीचे बैठ सत्पुरुषों के धर्म का ध्यान करने लगा । शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक बनचर की शकल बना बोधिसत्त्व के पास जा पूछा—“ब्राह्मण ! तू सुकुमार है । तूने पहले दुःख नहीं देखा सा है । तू इस अरण्य में दाखिल हो बैठा क्या कर रहा है ?” यह पूछते हुए पहली गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोसि रट्ठा विवनमागतो,
सो एक्को अरञ्जस्मि रुक्खमूले कपणो वियि ज्ञायसि ॥

[तू सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले सा है । जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया है । तू जंगल में वृक्ष के नीचे अकेला बैठ कृपण की तरह (क्या) सोचता है ?]

सुखं जीवितरूपोसि, तू सुख से जीने वाले, सुख से रहने वाले, सुख से पालन हुए की तरह है । रट्ठा जनाकीर्ण स्थान है । विवनमागतो, जनरहित स्थान जंगल में दाखिल हुआ । रुक्खमूले, वृक्ष के पास । कपणो वियि ज्ञायसि, कृपण की तरह अकेला बैठा हुआ ध्यान करता है, विशेष ध्यान करता है । तू यह क्या सोच रहा है ?—यही पूछा ।

इसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोस्मि रट्ठा विवनमागतो,
सो एक्को अरञ्जस्मि रुक्खमूले;
कपणो वियि ज्ञायामि सतं धम्मं अनु सरं ॥

[सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला हूँ। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूँ। अरण्य में वृक्ष के नीचे अकेला ही कृपण की तरह श्रेष्ठ पुरुषों के धर्म को स्मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूँ।]

सतं धम्मं अनुस्सरं, मित्र, यह सत्य ही है कि मैं सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूँ। मैं इस जंगल में वृक्ष के नीचे अकेला ही बैठकर कृपण की तरह ध्यान करता हूँ। जो तू पूछता है कि क्या सोच रहा हूँ। वह कहता है मैं श्रेष्ठ (पुरुषों के) धर्म को स्मरण करता हुआ यहाँ बैठा हूँ। सतं धम्मं बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, श्रावकों का, श्रेष्ठ सत्पुरुषों का, पण्डितों का धर्म—लाभ, हानि, अपकीर्ति, कीर्ति, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुख, यह आठ प्रकार का लोक-धर्म है। इनसे आघात पाने पर सत्पुरुष काँपते नहीं हैं, चंचल नहीं होते हैं। यह न काँपना सत्पुरुषों का धर्म है। इस सत्पुरुषों के धर्म को स्मरण करता हुआ बैठा हूँ—यही प्रकट करता है।

शक्र ने पूछा—ब्राह्मण ! ऐसा है तो इस जगह क्यों बैठा है ?

“राजा चारों-अङ्गों से युक्त उद्यानपाल मँगवाता है। वैसे नहीं मिल सकता है। सो मैं यह सोचकर कि किसी के हाथ से मरने से क्या लाभ, जंगल में प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूँगा; (इसलिए) यहाँ आकर बैठा हूँ।”

“ब्राह्मण ! मैं देवराज शक्र हूँ। मैंने तेरे लिए उद्यान आदि बनाए। चारों अङ्गों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। तुम्हारे राजा के बालों को सजाने वाला छत्तपाणी नाम का नाई है। चारों अङ्गों से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर, उसे उद्यानपाल बनाने के लिए कहना।”

शक्र बोधिसत्त्व को यह उपदेश दे, ‘डर मत’ कह आश्वासन दे, अपने देवनगर को गया।

बोधिसत्त्व प्रातःकाल का भोजन कर राजद्वार गया। वहीं छत्तपाणी को देख हाथ से पकड़ पूछा—मित्र, क्या तू चारों अङ्गों से युक्त है ?

“तुझे किसने कहा है कि मैं चारों अङ्गों से युक्त हूँ।”

“देवराज शक्र ने।”

“किस कारण से कहा ?”

“इस कारण से” कह सब कहा। वह बोला—“हाँ, मैं चारों अङ्गों से युक्त हूँ।”

बोधिसत्त्व उसे हाथ से पकड़े ही पकड़े राजा के पास ले जाकर बोले—
“महाराज, यह छत्तपाणी चारों अङ्गों से युक्त है। उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनावें।”

राजा ने उसे पूछा—क्या तू चारों अङ्गों से युक्त है? “हाँ महाराज।”
“किन चारों अङ्गों से युक्त है?” उत्तर दिया—

अनुसुम्यको अहं देव अमज्जपायको अहं,
निस्नेहको अहं देव अक्कोधनं अधिट्ठतो॥

[महाराज ! मुझ में ईर्ष्या नहीं है। मैंने कभी शराब नहीं पी है। देव !
मुझमें दूसरे के प्रति न स्नेह है, न क्रोध है। मैं इन चारों अङ्गों से युक्त हूँ।]

राजा ने पूछा—छत्तपाणी ! तू अपने आपको ईर्ष्या-रहित कहता है ?
—हाँ देव ! मैं ईर्ष्या रहित हूँ।

“किस बात को देखकर ईर्ष्या-रहित हुआ ?”

‘देव ! सुनें’ कह अपने ईर्ष्या-रहित होने का कारण बताते हुए यह गाथा
कही—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसि पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुम्यको॥

[राजन ! स्त्री के कारण मैंने पुरोहित को बंधवाया। उसने मुझे सदर्थ
में लगाया। इसलिए मैं ईर्ष्या-रहित रहूँ।]

इसका अर्थ है कि देव ! मैं पहले इसी वाराणसी नगर में तुम्हारे जैसा ही
राजा था। मैंने स्त्री के लिए पुरोहित को बंधवाया।

“अबद्धा तत्थ बज्जन्ति यत्थ बाला पभासरे,
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ बीरा पभासरे॥”

इस जातक^१ में आए अनुसार ही एक समय इसे जब यह छत्तपाणी राजा था, चौंसठ नौकरों के साथ अनाचार कर बोधिसत्त्व के द्वारा अपनी इच्छा-पूर्ति न होने के कारण बोधिसत्त्व को नष्ट करने की इच्छा से देवी ने इसे फोड़ा। इसने बोधिसत्त्व को बंधवा दिया। तब बाँधकर लाए गए बोधिसत्त्व ने देवी का यथार्थ दोष कह स्वयं मुक्त हो, राजा के बंधवाए हुए सभी नौकरों को मुक्त करवा, राजा को उपदेश दिया कि इनका और देवी का अपराध क्षमा करें। सब पूर्वोक्त प्रकार से विस्तार से कहनी चाहिए। इसीके बारे में कहा है—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसि पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुय्यको॥

• तब मैं सोचने लगा—मैं सोलह हजार स्त्रियाँ छोड़ इस अकेली से कामा-सक्त हो, इसे भी मन्तुष्ट न कर सका। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से सन्तुष्ट की जा सकने वाली स्त्रियों पर क्रोध करना वैसा ही है जैसे कोई कपड़ों के पहनने पर उनके मैले होने से क्रोध कर कि यह मैले क्यों होते हैं; अथवा जैसे कोई खाए भोजन के गूह बनने पर क्रोध करे कि यह ऐसा क्यों होता है? तब मैंने दृढ़ संकल्प किया कि अब से जब तक अर्हत्व प्राप्त न हो जाए तब तक कामभाग के प्रति मेरी ईर्ष्या न हो। उस समय से ईर्ष्या-रहित हो गया। इस सम्बन्ध से ही तस्माहं अनुसुय्यको कहा।

तब राजा ने पूछा—मित्र छत्तपाणि! किस बात को देखकर तू अमद्यप हो गया? उसने वह बात कहते हुए यह गाथा कही—

मत्तो अहं महाराज पुत्तमंसानि खादयिं,
तस्स सोकेनहं फुट्ठो मज्जपानं विवज्जयिं॥

[महाराज! मैंने मद्य पी बेहोश हो अपने पुत्र के मांस को खाया। उस शोक से शोकाभिभूत हो मैंने मद्यपान छोड़ दिया।]

महाराज! पूर्वकाल में मैं तुम्हारी ही तरह वाराणसी का राजा था। शराब के बिना न रह सकता था। बिना मांस का भोजन न खा सकता था। नगर में

उपोसथ के दिनों में पशु-हत्या बन्द रहती। रसोइये ने पक्ष की त्रयोदशी को ही मांस लेकर रख दिया। सँभालकर न रखा होने से उसे कुत्ते खा गए। रसोइये ने उपोसथ के दिन मांस न पा, राजा के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना प्रासाद पर चढ़ राजा के पास भोजन न ले जा सकने के कारण देवी के पास जाकर पूछा—देवी ! आज मुझे मांस नहीं मिला। बिना मांस का भोजन राजा के पास नहीं ले जा सकता। क्या करूँ ?

“तात ! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देख कर राजा उसे चूमता हुआ, लाड़-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व भी भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोदी में बिठा दूँगी। उमके पुत्र के साथ खेलते समय तू भोजन लाना।”

ऐसा कह उसने अपने पुत्र सुन्दर बालक को सजाकर राजा की गोद में बैठाया। राजा के पुत्र के साथ खेलते समय रसोइया भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका हुआ मांस न पा पूछा—मांस कहाँ है ? ‘देव ! आज दिन पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।’ राजा ने ‘मुझे मांस नहीं मिलेगा’ कह गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़, जान से मार रसोइये के सामने फेंका और आज्ञा दी—जल्दी से पका कर ला। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो पीट सका न कुछ कह ही सका।

राजा ने भोजन खा, शय्या पर सो, प्रातःकाल उठ नशे के उतरने पर कहा—“मेरे पुत्र को लाओ।” उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—‘भद्रे ! क्या हुआ ?’ बोली—‘देव ! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन खाया।’ राजा ने पुत्रशोक से अभिभूत हो रो पीट कर ‘मुझे यह दुःख सुरापान के कारण हुआ’ समझ सुरापान में दोष देख बालू से मुंह पोंछते हुए प्रतिज्ञा की—“अब से मैं अहंत्व प्राप्त होने तक ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊँगा।” तब से मद्य नहीं पी। इसीलिए मत्तो अहं महाराज, यह गाथा कही।

तब राजा ने पूछा—मित्र ! क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया ? उस बात को कहते हुए यह गाथा कही—

कितबासो नामहं राजा पुत्तो पच्छेकबोधिमे,

पत्तं भिन्दित्वा चचितो निस्नेहो तस्स कारणा ॥

[मैं कितवास नाम का राजा था। मेरा पुत्र पञ्चेकबुद्ध के पात्र को फोड़ कर मर गया। उस कारण से मैं स्नेह-रहित हो गया।]

महाराज ! पहले मैं वाराणसी में कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जानने वालों ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्टकुमार रखा गया। बालिग होने पर वह उपराजा बना।

राजा दुष्टकुमार को सदैव अपने आगे पीछे रखता। पानी न पाकर मरण के भय से, उसके लिए चारों दरवाजों पर और नगर के भीतर जहाँ तहाँ पुष्करिण्यां बनवा दीं। चौरस्तों आदि पर मण्डप बनवा पानी की चाटियाँ रखवाईं।

उसने एक दिन सजधज कर अकेले ही उद्यान जाते हुए रास्ते में प्रत्येकबुद्ध को देखा। जनता भी प्रत्येकबुद्ध को देखकर उन्हीं को प्रणाम करती, प्रशंसा करती। उन्हीं को हाथ जोड़ती। राजकुमार सोचने लगा—मेरे जैसे के साथ चलते हुए लोग इस सिर-मुण्डे को प्रणाम करते हैं, प्रशंसा करते हैं, हाथ जोड़ते हैं। उसने क्रोधित हो, हाथी से उतर प्रत्येकबुद्ध के पास जाकर पूछा—

“श्रमण ! तुझे भोजन मिला ?”

“राजकुमार ! हाँ मिला।”

उसने प्रत्येकबुद्ध के हाथ से पात्र ले, उसे जमीन पर पटक, भोजन सहित पाँव से मर्दन कर, पाँव की ठोकर से चूर चूर कर दिया। प्रत्येकबुद्ध उसके मुंह की ओर देखने लगे—अब यह प्राणी नष्ट हुआ। कुमार बोला—श्रमण ! मैं कितवास राजा का पुत्र हूँ। मेरा नाम है दुष्टकुमार। तू मुझ पर क्रोधित हो आँखें फाड़ फाड़ कर देखने से मेरा क्या करेगा ? प्रत्येक-बुद्ध का भोजन नष्ट हो गया। वे आकाश में उड़कर उत्तर हिमालय में नन्दमूल पर्वत पर ही चले गए। राजकुमार के पापकर्म ने भी उसी क्षण फल दिया। उसके शरीर में दाह पैदा हुआ। वह ‘जल रहा हूँ’ कहता हुआ वहीं गिर पड़ा। उतना पानी भी समाप्त हो गया। सारी चाटियाँ सूख गईं। वहीं उसका प्राणान्त होकर वह अवीची नरक में पैदा हुआ।

राजा ने वह समाचार सुन पुत्रशोक से अभिभूत हो सोचा—मेरा यह शोक प्रिय-वस्तु से उत्पन्न हुआ। यदि मैं स्नेह न करता, तो शोक न होता। उसने निश्चय किया कि अब से किसी भी चीज में—चाहे वह जानदार हो चाहे बेजान हो—

स्नेह पैदा न हो। उस समय से लेकर उसे स्नेह नहीं है। उसी सम्बन्ध से कितवासी नामहं गाथा कही।

पुत्तो पञ्चकेबोधिमे पत्तंभिन्दिवा चवितो का अर्थ है कि मेरा पुत्र प्रत्येक-बुद्ध का पात्र तोड़कर मर गया। निस्नेहो तस्स कारणा, उस समय उत्पन्न स्नेह के कारण स्नेह-रहित हो गया।

तब राजा ने उसे पूछा—मित्र ! किस बात को देखकर तू क्रोध-रहित हो गया ? उसने वह बात बताते हुए यह गाथा कही—

अरको हुत्वा मेत्तचित्तं सत्त वस्सानि भावयिं,

सत्त कप्पे ब्रह्मलोके तस्मा अक्कोधनो अहं॥

[महाराज ! मैं अरक नामक तपस्वी हो, सात वर्ष तक मैत्री चित्त की भावना कर, सात संवर्त-चिवर्त कल्पों तक ब्रह्मलोक में रहा। इसलिए मैं दीर्घकाल तक मैत्रीभावना का अभ्यास करने से क्रोध-रहित हो गया।]

इस प्रकार छत्तपाणि के अपने चारों अङ्ग कहने पर राजा ने परिषद को इशारा किया। उसी क्षण अमात्यों तथा ब्राह्मण गृहपति आदि ने उठकर 'अरे ! रिश्वतखोर ! दुष्ट चोर ! तू रिश्वत न पाकर पण्डित की निन्दा कर उसे मारना चाहता था' कह काळक के हाथ पाँव पकड़, राजमहल से उतार, जो जो हाथ में आया पत्थर, मुद्गर आदि से सिर फोड़ मार डाला। फिर पाँव से घसीट कर कूड़े की जगह पर फेंक दिया।

उसके बाद से राजा धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ कर्मानुसार (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय काळक सेनापति देवदत्त था। छत्तपाणि नाई सारिपुत्र। धर्मध्वज तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

८. कासाव वर्ग

२२१. कासाव जातक

“अनिष्कसावो कासावं...” यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जेतवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही। घटना राजगृह में घटी।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वेळुवन में रहते थे। देवदत्त भी अपने जैसी दुराचारी-परिषद से घिरा हुआ गयाशीर्ष पर रहता था।

उस समय राजगृह निवासी चन्दा इकट्ठा करके दान की तैयारी करते थे। व्यापार के लिए आए एक बनिए ने एक मूल्यवान् सुगन्धित काषाय वस्त्र देकर कहा कि इस वस्त्र का दान कर मुझे भी (दान में) हिस्सेदार बनावें। नागरिकों ने महादान दिया। सब चन्दा करके इकट्ठे किए गए कार्षापणों से ही पूरा हो गया। वह वस्त्र बच गया। लोग इकट्ठे होकर सोचने लगे कि यह वस्त्र किसे दें? क्या सारिपुत्र स्थविर को? अथवा देवदत्त को? कुछ ने कहा सारिपुत्र स्थविर को। दूसरों ने कहा—सारिपुत्र स्थविर कुछ दिन रह कर यथाशक्ति चल देगा। देवदत्त स्थविर सदैव हमारे नगर ही के पास रहता है। मज्जल-अमंगल में यही हमारा सहायक होता है। देवदत्त को दें। राय लेने पर ‘देवदत्त को दें’ कहने वालों की संख्या अधिक निकली। उन्होंने देवदत्त को दे दिया। देवदत्त ने उसकी डसैं कटवा, ओवट्टक वस्त्र सिलवा, रँगवा कर सुनहरी रेशम सदृश बना पहना।

उस समय तीस भिक्षुओं ने राजगृह से श्रावस्ती पहुँच, शास्ता को प्रणाम कर कुशल समाचार पूछे जाने पर वह समाचार कह निवेदन किया कि भन्ते !

इस प्रकार देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर (=अर्हत-ध्वजा) को धारण किया। शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर को धारण किया, पहले भी धारण किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में हाथी के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अस्मी हजार मस्त हाथियों के नायक बन जंगल में रहने लगे।

एक गरीब आदमी ने वाराणसी में दन्तकार गली में हाथी-दाँत का काम करने वालों को चूड़ी आदि बनाते देख कर पूछा—हाथी-दाँत मिलें तो लोगें ? उन्होंने कहा—लेंगे। वह शस्त्र ले, कापाय वस्त्र पहन, प्रत्येक-बुद्ध का वंष बना, टोपा पहन, हाथियों की गली में जा, आयुध से हाथियों को मार, दाँत ला, वाराणसी में बेच, जीविका चलाता था। आगे चलकर उसने बोधिसत्त्व के दान के सबसे अन्तिम हाथी को मारना आरम्भ किया। रोज रोज हाथियों को कम होते देख हाथियों ने बोधिसत्त्व से कहा—किस कारण से हाथी कम हो रहे हैं ?

बोधिसत्त्व ने देखभाल करते हुए सोचा—एक आदमी प्रत्येक-बुद्ध का वंष पहनकर हाथियों की कतार के सिरे पर रहता है। कहीं वही तो नहीं मारता है। उसका पता लगाऊँगा। एक दिन हाथियों को आगेकर स्वयं पीछे पीछे चला। वह आदमी बोधिसत्त्व को देखते ही शस्त्र लेकर कूदा। बोधिसत्त्व ने रुक कर खड़े हो, उसे जमीन पर गिरा, कुचल कर मार डालने के लिए सूण्ड उठाई। (लेकिन) उसके पहने कापाय वस्त्रों को देख सोचा—इस अर्हत-ध्वजा का मुझे आदर करना चाहिए। उसने सूण्ड लपेट कर “भो पुरुष ! यह अर्हत-ध्वजा तेरे योग्य नहीं है। तू इसे क्यों धारण करता है ?” कहते हुए ये गाथाएँ कहीं—

अनिक्कवासो कासावं यो वत्थं परिवहेस्सति,
अपेतो दमसच्चैनं न सो कासावमरहति॥
यो च वन्तकसावरसं संलेसु सुसमाहितो,
उपेतो दमसच्चैनं स वे कासावमरहति॥

[जो अपने मन को स्वच्छ किए बिना काषाय-वस्त्र को धारण करता है, सत्य और संयम से रहित वह व्यक्ति काषाय-वस्त्र का अधिकारी नहीं।

[जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और संयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय-वस्त्र का अधिकारी है।]

अनिष्कसावो, कसाव (=मैल) कहते हैं राग को, द्वेष को, मूढ़ता को, भ्रष्ट (=दूसरे के गुणों को माखना) को, प्लास (=दूसरे गुणी के साथ अपनी तुलना करना) को, ईर्ष्या को, मात्सर्य को, माया को, शठता को, अकड़ को, स्पर्धा को, मान को, अतिमान को, मद को, प्रमाद को—सभी अकुशल-धर्मों को, सभी दुश्चरित्रों को, संसार के सभी डेढ़ हजार बन्धन-क्लेशों को। वे जिस आदमी के प्रहीण नहीं हुए; जिसके (चित्त-) संतान से नहीं निकले, नहीं उखड़े, वह आदमी **अनिष्कसावो**। **कासावं** काषाय रस (रंग) पी हुई अहंत्वज्जा। **यो बत्थं परिदहेस्सति**, जो ऐसा होकर इस प्रकार का वस्त्र धारण करेगा, पहनेगा। **अपेतो दमसच्चेन**, इन्द्रिय-दमन नामक संयम से तथा निर्वाण नामक परमार्थ-सत्य से दूर। अथवा **अपादान** (-विभक्ति) के अर्थ में **कर्ण**; मतलब हुआ इस संयम-सत्य से दूर। सत्य का मतलब यहाँ वाणी का सत्य और चार (आर्य-) सत्य भी है। न तो **कासावमरहति**, वह आदमी कासावरहित न होने से काषाय रंग की अहंत्वज्जा का अधिकारी नहीं। वह इसके योग्य नहीं। **यो च वन्त्तकसावस्स**, जो आदमी उक्त प्रकार के कासाव से मुक्त होने के कारण कासाव-रहित है। **सीलेसु सुसमाहितो**, मार्ग-शील तथा फल-शील में सम्यक् स्थित, लाकर स्थापित कर दिए की तरह उनमें प्रतिष्ठित; उन शीलों से युक्त के लिए यह प्रयोग है। **उपेतो**, सम्पन्न, युक्त। **दमसच्चेन**, उक्त प्रकार के दमन से तथा सत्य से। **स वे कासावमरहति**, वह इस प्रकार का आदमी ही इस काषायवर्ण की अहंत्वज्जा का अधिकारी है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उस आदमी को यह बात कह, 'इसके बाद इधर न आना, यदि आया तो तेरी जान नहीं बचेगी' डराकर भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय हाथी मारने वाला आदमी देवदत्त था। दलपति मैं ही था।

२२२. चुल्लनन्दिय जातक

“इदं तदाचरियवच्चो...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त कठोर है, परुष है, दुस्साहसी है, उसने सम्यक्-सम्बुद्ध को मारने वाले नियुक्त किए, उन पर दुश्शीलता का आरोप लगाया, नालागिरि (हाथी) का प्रयोग किया; तथागत के प्रति उसकी शान्ति, मैत्री, दया कुछ भी नहीं।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? “अमुक बातचीत।” “भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है” कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में नन्दिय नामक वानर हुए। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्लनन्दिय। वे दोनों अस्सी हजार वानरों के नेता हो हिमालय प्रदेश में अन्धी माता की सेवा करते हुए रहते थे। वे माता को झाड़ी में सुला, स्वयं जंगल में जा, वहाँ से मीठे-मीठे फल ले, माता के पास भेजते। लाने वाले उसे न देते। वह भूख से पीड़ित हो हड्डी-चर्म मात्र रह गई।

बोधिसत्त्व ने कहा—“मां, हम तुम्हें मधुर फल भेजते हैं। तुम किसलिए कुम्हला रही हो ?”

“तात ! मुझे नहीं मिलते।”

बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मैं दल की नेतागिरी करता रहा तो माता मर जाएगी। मैं दल को छोड़ माता की ही सेवा करूँगा।

उसने चुल्लनन्दिय को बुलाकर कहा—तात ! तू दल की नेतागिरी कर।

मैं माता की सेवा करूँगा। उसने भी अपने भाई से कहा—मुझे दल की नेतागिरी से काम नहीं। मैं भी माता की ही सेवा करूँगा। वे दोनों एकमत हो दल को त्याग, माता को ले, हिमवन्त को छोड़, सीमान्त में न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे रहते हुए माता की सेवा करने लगे।

एक वाराणसी-वासी ब्राह्मण-विद्यार्थी ने तक्षशिला में सर्वप्रसिद्ध आचार्य के पास सब विद्यायें ग्रहण कर पूछा—अब मैं जाऊँ? आचार्य ने विद्या के प्रताप से उसका कठोर, पुरुष तथा दुस्साहसी स्वभाव जान 'तात! तू कठोर, पुरुष तथा दुस्साहसी है। ऐसे लोगों को सब समय एक सा ही नहीं होता। महा-विनाश, महा-दुःख को प्राप्त होते हैं। तू कठोर मत हो। ऐसा काम मत कर जिससे पीछे पछताना पड़े' उपदेश दे विदा किया।

उसने आचार्य को प्रणाम कर, वाराणसी पहुँच, घर बसा, सोचा कि मैं किसी दूसरे शिल्प से जीविका न चला सकूँगा। इसलिए मैं धनुष के सिरे से जीवित रहूँगा। मैं शिकारी का काम कर जीविका चलाऊँगा। वह वाराणसी से निकल सीमान्त के गाँव में रहते हुए धनुष-तरकस बाँध, जंगल में जा, नाना प्रकार के पशुओं को मार मांस बेचकर जीविका चलाने लगा।

एक दिन उसे जंगल में कुछ नहीं मिला। घर लौटते हुए उसने खुले मैदान के एक सिरे पर एक बट-वृक्ष देखा। शायद यहाँ कुछ मिले सोच वह बट-वृक्ष की ओर गया।

उसी समय दोनों भाई माँ को फल खिला, उसे आगे करके वृक्ष के नीचे बैठे थे। जब उन्होंने उस शिकारी को आते देखा, तो सोचा कि हमारी माँ को देखकर भी क्या करेगा? वे स्वयं शाखाओं के बीच में छिप गए। उस निर्दयी आदमी ने भी वृक्ष के नीचे पहुँच, उनकी उस बुढ़ापे से दुर्बल अन्धी माँ को देख कर सोचा—'खाली हाथ जाने से मुझे क्या लाभ? इस बन्दरी को मार कर जाऊँगा।'

उसने उसे मारने के लिए धनुष हाथ में लिया। बोधिसत्व ने यह देख-चुल्ल-नन्दिय को कहा—“तात! यह आदमी मेरी माँ को बीधना चाहता है। मैं इसे अपना जीवन दान दूँगा। तू मेरे मरने पर माता की सेवा करना।” फिर शाखाओं की ओट से निकल 'हे पुरुष! मेरी माँ को मत मार। यह अन्धी है। फिर बुढ़ापे से दुर्बल है। मैं इसे जीवन दान देता हूँ। तू इसे न मार कर मुझे मार' कह उससे प्रतिज्ञा करा जाकर तीर के पास बैठा।

उस निर्दयी ने बोधिसत्व को बींध, गिराकर फिर उसकी माँ को भी मारने को धनुष उठाया। इसे देख चुल्लनन्दिय ने सोचा—यह मेरी माँ को मारना चाहता है। एक दिन भी यदि मेरी माँ जी सके, तो 'प्राण बचे' ही कहा जाएगा। मैं इसे अपना जीवनदान दूंगा। उसने शाखाओं की ओट से निकल कर कहा—“भो पुरुष! मेरी माँ को मत मार। मैं इसे जीवन-दान देता हूँ। तू मुझे मार। हम दोनों भाइयों को ले जाकर हमारी माँ को जीवनदान दे।” उससे प्रतिज्ञा ले, वह तीर के पास जा बैठा। शिकारी उसे मार 'यह घर पर बच्चों के लिए होगी' सोच, उनकी माता को भी मार; तीनों जनों को लेकर घर की ओर गया।

इस पापी के घर पर बिजली गिर पड़ी। उसकी भार्य्या और दो लड़के घर के साथ ही जल गए। पृष्ठ-बाँस और थम्बा मात्र बचे।

गाँव के दरवाजे पर ही एक आदमी ने उसे देख यह समाचार कहा। वह स्त्री-बच्चों के शोक से इतना अभिभूत हुआ कि उसी जगह पर मांस की बहँगी और धनुष छोड़, वस्त्र उतार, नंगा हो, बाँहें पकड़ रोताहुआ घर गया। वह खम्भा टूट कर सिर पर गिर पड़ा। सिर फट गया। पृथ्वी ने विवर दे दिया। अवीचि नरक से अग्नि-ज्वाला निकली। जब वह पृथ्वी से निगला जा रहा था, उसने आचार्य्य के उपदेश को याद कर 'इसी बात को देख पाराशर्य्य ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया था' रोते हुए इन दो गाथाओं को कहा—

इदं तदाचरियबचो पारासरियो यदन्नवी,
मासु त्वं अकरा पापं यं त्वं पच्छा कतं तपे॥
यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं॥

इसका अर्थ—जो पारासरिय (पाराशर्य्य) ब्राह्मण ने कहा कि तू पापकर्म मत कर, पीछे तुझे ही कष्ट देगा—यह उस आचार्य्य का वचन है। आदमी शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी कर्म करता है उनका फल पाता हुआ उन्हीं कर्मों को अपने में देखता है। शुभकर्म करने वाला शुभफल पाता है, पापकर्म करनेवाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। दुनिया में भी जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल

पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता है, ग्रहण करता है, भोगता है।

इस प्रकार रोता हुआ वह पृथ्वी में दाखिल हो अबीची महानरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने, “भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है” कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य सारिपुत्र। चुल्लनन्दिय आनन्द। माता महाप्रजापति गौतमी। महानन्दिय तो मैं ही था।

२२३. पुटभत्त जातक

“नमे नमन्तस्स . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुटुम्बी के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती नगर निवासी एक गृहस्थ जनपदनिवासी एक गृहस्थ के साथ लेन-देन करता था । वह अपनी भार्या लेकर अपने करजदार के पास गया । उसने ‘दे नहीं सकता हूँ’ कह, कुछ न दिया । वह क्रुद्ध हो बिना कुछ खाए ही चल दिया ।

रास्ते में उसे भूख से पीड़ित देख, रास्ता चलने वाले आदमियों ने भात की पोटली दी—भार्या को भी देकर खाओ । उसने वह ले उसे न देने की इच्छा से कहा—भद्रे, यह चोरों के ठहरने का स्थान है । तू आगे आगे जा । फिर सब भात खा चुकने पर उसे खाली पोटली दिखा कहा—‘भद्रे, उन्होंने भात-रहित खाली पोटली ही दी ।’ यह जान कि वह अकेला ही खा गया, उसे दुःख हुआ ।

वे दोनों जेतवन में विहार की पिछली तरफ से जाते हुए पानी पीने के लिए जेतवन में प्रविष्ट हुए । शास्ता भी उनके आने की प्रतिक्षा करते हुए गन्धकुटी की छाया में बैस ही बैठे जैसे रास्ता घेर कर कोई शिकारी बैठा हो । वे दोनों शास्ता को देख, पास जा, प्रणाम कर बैठे ।

शास्ता ने उनका कुशल समाचार पूछ स्त्री से प्रश्न किया—“भद्रे ! क्या यह तेरा स्वामी तेरा हितैषी है, क्या तेरे प्रति स्नेह रखता है ?”

“भन्ते, मेरा तो इसके प्रति स्नेह है, किन्तु यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है । और दिनों की बात रहने दें आज ही इसे रास्ते में भात की पोटली मिली । यह बिना मुझे दिए ही स्वयं खा गया ।”

“उपासिके, तू नित्य इसकी हितैषिणी तथा इसके प्रति स्नेह रखती रही है । यह स्नेह-रहित ही रहा है । लेकिन जब इसे पण्डितों की जबानी तेरे गूण मालूम होते रहे हैं, तो यह तुझे सारा ऐश्वर्य दे देता रहा है ।”

उसके प्रार्थना करने पर (भगवान् ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व अमात्य कुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्या सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उसे भार्या को भी देकर खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्या को न दे अकेले ही खाया। भार्या कठोर-हृदय जान बड़ी दुखी हुई।

वह वाराणसी का राजा हो उसे पटरानी बना 'इतना ही इसके लिए पर्याप्त है' समझ उसका और कोई सत्कार सम्मान न करता। कैसे दिन कटते हैं? तक न पूछता। बोधिसत्त्व ने सोचा—यह देवी राजा का बहुत उपकार करने वाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है; लेकिन राजा इसे कुछ नहीं मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊँगा।

बोधिसत्त्व ने पास जा आदर पूर्वक एक ओर खड़े हो 'तात क्या है?' पूछने पर बातचीत चलाने के लिए कहा—देवी! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। क्या बड़े बूढ़ों को वस्त्र-खण्ड या भात नहीं देना चाहिए?

“तात, मैं स्वयं कुछ नहीं पाती। तुम्हें क्या दूँगी। जब मिलता था दिया। अब राजा मुझे कुछ नहीं देता। दूसरी किसी चीज की बातें जाने दें। राज्य ग्रहण करने के लिए आने के समय रास्ते में भात की पोटली पा मुझे भात तक न दे अपने ही खाया।”

“अम्म! क्या राजा के सामने ऐसा कह सकेगी?”

“तात! कह सकूँगी।”

“तो आज ही जब मैं राजा के सामने खड़ा होकर पूछूँ तो ऐसा कहना। मैं आज ही तेरे गुण प्रकट करूँगा।”

ऐसा कह बोधिसत्त्व पहले से जाकर राजा के सामने खड़ा हुआ। वह भी जाकर राजा के सामने खड़ी हुई।

बोधिसत्त्व ने उसे कहा—अम्म ! तुम अति कठोर-हृदया हो । क्या बड़े बूढ़ों को वस्त्र या भात नहीं देना चाहिए ?

“तात ! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता । तुम्हें क्या दूँगी ।”

“क्या पटरानी नहीं हो ?”

“तात ! कुछ सम्मान न मिलने पर पटरानी होने से क्या होगा ? अब मुझे तुम्हारा राजा क्या देगा । उसने रास्ते में भात की पोटली पा, उसमें से कुछ भी न दे स्वयं खाया ।”

बोधिसत्त्व ने पूछा—

“महाराज, क्या ऐसी बात है ?”

राजा ने स्वीकार किया । बोधिसत्त्व ने राजा ‘स्वीकार करता है’ जान बेबी को कहा—

“देवी ! राजा को अप्रिय होने पर तुम्हें यहाँ रहने से क्या लाभ ? संसार में अप्रिय का साथ दुखदायी होता है । तुम्हारे यहाँ रहने से राजा को अप्रिय के साथ रहने का दुख होगा । ‘प्राणी मिलने वाले के साथ मिलते हैं, न मिलने वाले के साथ नहीं मिलते’ जान दूसरी जगह चला जाना चाहिए । दुनिया बहुत बड़ी है ।”

इतना कह ये गाथाएँ कहीं—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
किञ्चानुकुब्बस्स करेय्य किञ्चं,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्मि न सम्भजेय्य ॥१॥
खजे चजन्तं वण्णं न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य
द्विजो दुमं खीणफलं ति आत्वा
अञ्जं समेक्खेय्य महा हि लोको ॥२॥

[शुकनेवाले के सामने शुक । संगति करने वाले के साथ संगति करे । जो अपने काम आता हो उसका काम करे । अनर्थ चाहने वाले का अर्थ न करे । जो संगति करना चाहता न हैं, उससे संगति न करे ॥१॥

[छोड़ने वाले को छोड़ दे। ऐसे से स्नेह न करे। जिसका दिल विमुख हो गया हो, उससे संगति न करे। जिस तरह पक्षी वृक्ष को फलरहित जानकर दूसरे (वृक्ष) को ढूँढ़ते हैं; उसी तरह दूसरे को ढूँढ़े। संसार बड़ा है ॥२॥]

नमो नमन्तस्स भजे भजन्तं जो अपने सामने झुके उसी के सामने झुके। जो संगति करता है उसी से संगति करे। किञ्चानुकुब्धस्स करेय्य किञ्च, काम पड़ने पर जो काम आवे, काम पड़ने पर उसका भी काम करे।

वजो वजन्तं वण्णं न कयिरा अपने को छोड़ने वाले को छोड़ ही दे। उससे तृष्णा नामक स्नेह न करे। अपेतचित्तेन विगत चित्त से वा बदले हुए चित्त (वाले) के साथ। न सम्भजेय्य वैसे के साथ न मिले जुले। द्विजो बुभं जैसे पक्षी पहले फल होने पर भी जब वृक्ष के फल नहीं रहते तो क्षीणफल हुआ जान उसे छोड़ दूसरे को देखता है, खोजता है उसी तरह अञ्जं समेक्खेय्य महा हि यह लोको। तुम्हें स्नेह करने वाला एक न एक आदमी मिल जायगा।

यह सुन वाराणसी राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य्य दिये। तब से लगाकर वे मिल-जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्त्वों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्वों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पति-पत्नी स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय पति पत्नी यह दोनों पति पत्नी थे। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२२४. कुम्भाल जातक^१

“यस्सते चतुरो धम्मा . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

यस्सते चतुरो धम्मा वानरिन्द यथा तव,
सच्चं धम्मो धित्ति चागो विट्ठं सो अतिववत्तति ॥
यस्स चेतो न विज्जन्ति गुणा परमभट्टका,
सच्चं धम्मो धित्ति चागो विट्ठं सो नातिवत्तति ॥

[वानरेन्द्र, जिसमें तेरे समान यह चारों गुण हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है । जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ गुण नहीं हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को नहीं जीत सकता ।]

गुणा परमभट्टका जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ एकत्रित होकर संक्षिप्त रूप से गुण नहीं हैं, वह शत्रु को नहीं जीत सकता है ।

बाकी सब पूर्वोक्त कुम्भील जातक^२ में कहे अनुसार ही है; मेल बैठाना भी ।

^१ वेल्ले वानरिन्द जातक (५७) । कथा समान है । केवल एक गाथा अधिक है ।

^२ कुम्भील जातक=वानरिन्द जातक (१.६.५७)

२२५. खन्तिवण्णन जातक

“अत्थि मे पुरिसो देव . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल राजा के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसके एक बहुत उपकारी अमात्य ने अन्तःपुर दूषित किया । राजा ने ‘मेरा उपकारी है’ सोच सहन करके शास्ता से कहा । शास्ता ने कहा—“महाराज ! पुराने राजाओं ने भी इस प्रकार सहन किया है ।” उसके प्रार्थना करने पर (शास्ता) ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय एक अमात्य ने उसके रणवास को दूषित किया । अमात्य के सेवक ने उसके घर को दूषित किया । अमात्य ने उसके अपराध को सहन न कर सकने के कारण उसे राजा के पास ले जाकर पूछा—देव ! मेरा एक सेवक है । वह मेरे सभी काम करने वाला है । उसने मेरे घर में दूषित-कर्म किया है । उसका क्या करना चाहिए ? इस प्रकार पूछते हुए पहली गाथा कही—

अत्थि मे पुरिसो देव! सब्बकिञ्चेसु व्यावटो,
तस्स चेको पराधत्थि तत्थ त्वं किन्ति मञ्जसि ॥

[देव ! मेरा एक सभी काम करने वाला आदमी है । उसका एक अपराध है । उस विषय में आप क्या कहते हैं ?]

तस्स चेको पराधत्थि उस पुरुष का एक अपराध है । तत्थ त्वं किन्ति मञ्जसि

उस पुरुष के अपराध के बारे में आप क्या करना चाहिए मानते हैं ? जैसे आपके मन में आए वैसा दण्ड दें ।

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

अम्हाकञ्चत्थि पुरिसो एदिसो इष विज्जति,
दुल्लभो अंगसम्पन्नो खन्तिरस्माकरुच्चति ॥

[हमारा भी ऐसा आदमी यहाँ है । सब गुणों से युक्त आदमी दुर्लभ है । हमें (इस विषय में) सहन करना ही अच्छा लगता है ।]

अम्हाकम्पि राजाओं का भी एदिसो बहुत उपकारी (किन्तु) घर में दूषित कर्म करने वाला आदमी है । और वह इष विज्जति अभी भी यहीं रहता है । हम राजा होते हुए भी बहुत उपकारी होने से सहन करते हैं । तुम्हें राजा न होने पर भी सहना भार हुआ । अंगसम्पन्नो सभी गुणों से युक्त मनुष्य दुल्लभो इस कारण से अस्माकं ऐसे स्थानों पर सहन करना ही रुच्चति ।

अमात्य समझ गया कि राजा ने उसीके बारे में कहा है । उसके बाद से उसने रणवास को दूषित करने का साहस नहीं किया । उसके सेवक ने भी यह जानकर कि अमात्य को पता लग गया है उसके बाद से वह कर्म करने का साहस नहीं किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मैं ही वाराणसी-राजा था । वह अमात्य भी, राजा ने शास्ता को कह दिया जान तब से वह कर्म नहीं कर सका ।

२२६. कोसिय जातक

“काले निक्खमणा साधु...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा प्रत्यन्त देश को शान्त करने के लिए गैर मुनासिब समय पर निकल पड़ा। कथा उपरोक्त कथा^१ के सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

शास्ता ने पूर्व(-जन्म) की कथा लाकर कहा—महाराज ! पूर्वकाल में वाराणसी नरेश ने नामुनासिब समय निकल उद्यान में पड़ाव डलवाया। उसी समय एक उल्लू बाँसों के झुण्डों में घुस कर छिप रहा। कौओं की सेना ने आकर उसे घेर लिया कि निकलते ही पकड़ेंगे। उसने सूर्यास्त तक बिना रुके, समय रहते ही निकल भागना आरम्भ किया। कौओं ने उसे घेर चोंचों से ठोंगे मार मार कर गिरा दिया। राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—तात ! यह कौवे उल्लू को क्यों मार गिरा रहे हैं ? बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—महाराज ! अपने निवास-स्थान से असमय बाहर निकलने वाले इस प्रकार का दुःख अनुभव करते ही हैं। इसलिए नामुनासिब समय पर अपने स्थान से नहीं निकलना चाहिए। यह बात कहते हुए ये दो गाथाएँ कहीं—

काले निक्खमणा साधु नाकाले साधु निक्खमो,
अकालेनहि निक्खम्म एककम्पि बहूजनो;
न किञ्चि अत्थं जोतेति धंकसेनाव कोसियं ॥

^१ देखें कलाय मुट्ठि जातक (१७६)

धीरो च विधिविधानञ्च परेसं विवरन्तगू,
सम्बामित्ते वसीकत्वा कोसियोव सुखी सिया ॥^१

[समय पर (घर से बाहर) निकलना अच्छा है। असमय निकलना अच्छा नहीं। असमय पर निकलने से किसी लाभ को प्राप्त नहीं करता। अकेले को भी बहुत जन (मार देते हैं) जैसे कौओं की सेना ने उल्लू को।

[धीर, विधि-विधान को जानने वाला, तथा दूसरों के मार्ग पर चलने वाला सभी शत्रुओं को वशीभूत कर (पण्डित) उल्लू की तरह सुखी होवे]

काले निक्खमणा साधु महाराज निष्क्रमण का मतलब है निकलना वा पराक्रम करना; यह उचित समय पर ही अच्छा होता है। नाकाले साधु निक्खमो असमय अपने निवासस्थान से दूसरे स्थान पर जाना—निकलना वा पराक्रम करना—ठीक नहीं। अकालेनहि इत्यादि चारों पदों में पहले से तीसरे और दूसरे से चौथे का सम्बन्ध जोड़कर इस प्रकार अर्थ जानना चाहिए। अपने निवास-स्थान से असमय निकलकर आदमी न किञ्चित् अत्यं जोतेति अपनी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता। सो एककम्पि बहुजनो बहुत से भी वे शत्रु इसे अकेला निकला वा जाता देख मारकर महाविनाश को पहुँचा देंगे। यह उपमा है—धंकसेनाव कोसियं जिस प्रकार यह कौओं की सेना इस असमय पर निकले, जाते उल्लू को चोंच से ठोंगे मारती है, महाविनाश को प्राप्त करती है, वैसे ही। इसलिए पशु-पक्षियों तक को भी—किसीको भी असमय पर अपने निवासस्थान से नहीं निकलना चाहिए, नहीं चल पड़ना चाहिए।

दूसरी गाथा में धीर का मतलब है पण्डित। विधि पुराने बुद्धिमान लोगों द्वारा स्थापित परम्परा। विधानं हिस्सा या क्रम। विवरन्तगू भेद को जानते हुए। सम्बामित्ते सभी शत्रु। वसी कत्वा अपने वश में करके। कोसियोव इस मूर्ख उल्लू से भिन्न किसी दूसरे बुद्धिमान उल्लू की तरह।

^१ गाथाओं का टीकाकार ने जो अर्थ किया है वह ठीक नहीं है। प्रतीत होता है कि कथा अन्यथा हो गई है।

मतलब यह है कि जो बुद्धिमान 'इस समय निकलना चाहिए, पराक्रम करना चाहिए ; इस समय नहीं निकलना चाहिए, नहीं पराक्रम करना चाहिए' पुराने पण्डितों द्वारा स्थापित परम्परा नामक जो यह विधि है उसके विभाग नामक विधान को, अथवा विधि के विधान, क्रम वा अनुष्ठान को जानता है ; वह विधि-विधान को जानने वाला पराए और अपने भेद को जानकर जैसे बुद्धिमान उल्लू रात्रि को अपने समय पर निकल, पराक्रम कर, जहाँ तहाँ सोए हुए कौओं के सिरों को छेदता हुआ उन सभी शत्रुओं को वश में कर सुखी होता है ; इस प्रकार बुद्धिमान आदमी समय पर निकल, पराक्रम कर, अपने शत्रुओं को वश में कर, सुखी होवे, दुःखरहित होवे ।

राजा बोधिसत्त्व का कहना सुन रुका ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । पण्डित अमात्य तो मैं ही था ।

२२७. गूथपाणक जातक

“सूरो सूरेन संगम्म . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन से गब्बूति^१, आधे योजन की दूरी पर एक निगम-ग्राम था। वहाँ से बहुत शलाका-भोजन^२ मिलता था। वहाँ एक प्रश्न पूछने वाला ठिगना व्यक्ति रहता था। वह शलाका-भोजन तथा पाक्षिकभोजन लेने के लिए गए तरुण भिक्षु तथा सामणेरों से ‘कौन खाते हैं? कौन पीते हैं? कौन भोजन करते हैं?’ आदि प्रश्न पूछता। उत्तर न दे सकने पर उन्हें लज्जित करता। वे उसके भय से शलाका-भोजन तथा पाक्षिक-भोजन लेने उस गाँव न जाते।

एक दिन एक भिक्षु शलाका बांटने के स्थान पर जाकर बोला—भन्ते ! क्या अमुक गाँव में शलाका-भोजन वा पाक्षिक-भोजन है ?

“आयुष्मान ! है, किन्तु वहाँ एक ठिगना व्यक्ति है जो प्रश्न पूछता है। उत्तर न दे सकने पर गाली देता है, अपशब्द कहता है। उसके भय से कोई नहीं जा सकते हैं।”

“भन्ते ! वहाँ का भोजन मेरे जिम्मे करें। मैं उसका दमन कर, उसे निर्विष करके ऐसा बना दूंगा कि आगे से तुम्हें देख कर भागे।”

भिक्षुओं ने ‘अच्छा’ कह वहाँ का भोजन उसके जिम्मे कर दिया।

उसने वहाँ ग्राम-द्वार पर पहुँच चीवर पहना। उसे देख ठिगने ने चण्डमेढे की तरह जल्दी से आकर कहा—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे।

^१ गब्बूति = १/४ योजन।

^२ शलाक भत्त—गृहस्थों के घर से शलाका से प्राप्त होने वाला भोजन।

“उपासक ! गाँव से भिक्षा माँग कर, यवागु लाकर आसनशाला लौट आने दे ।”

उसने उसके यवागु लेकर आसन-शाला लौट आने पर भी वैसे ही कहा । उस भिक्षु ने भी अभी यवागु पीने दे, फिर आसन-शाला बुहार लेने दे, फिर शलाका-भात ले आने दे कह शलाका-भात ला उसीको पात्र पकड़ा कर कहा—आ । तेरे प्रश्न का उत्तर दूँगा । इस प्रकार उसे गाँव के बाहर ले जा चीवर को इकट्ठा कर कंधे पर रख, हाथ से पात्र ले खड़ा हुआ । वहाँ भी वह बोला—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे । उसने ‘तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूँ’ कह एक ही मार से गिरा हड्डियों को चूर चूर करते हुए पीटा । फिर मुंह में गूँह डाल धमका कर गया—अब से यदि इस गाँव में आने वाले किसी भिक्षु से प्रश्न पूछा तो खबर लूँगा । उसके बाद सँ वह भिक्षु को देखकर ही भाग जाता ।

आगे चलकर उस भिक्षु की वह करनी धर्मसभा में प्रकट हो गई । एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु ठिगने के मुंह में गूँह डाल कर गया । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? “अमुक बातचीत” कहने पर “भिक्षुओ ! उस भिक्षु ने केवल अभी उसे गन्दगी नहीं लगाई, पहले भी लगाई है” कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में अङ्गमगध वासी एक दूसरे के राष्ट्र को जाते हुए, एक दिन दोनों राष्ट्रों की सीमा के बीच एक तालाब के पास बैठ, शराब पी, मत्स्य-मांस खा प्रातः-काल ही गाड़ियों को जोत चल पड़े । उनके चलने जाने पर एक गूँह खाने वाला कीड़ा गूँह की दुर्गन्ध से वहाँ आ, उनकी छोड़ी शराब को पानी समझ पी मस्त होकर गूँह के ढेर पर चढ़ा । गोला गूँह उसके चढ़ने से थोड़ा नीचे को दबा । वह चिल्लाया—पृथ्वी मेरा बोझ नहीं उठा सकती है । उसी समय एक मस्त हाथी उधर आया । गूँह की दुर्गन्ध सूँघ घृणा कर चल दिया । कीड़े ने उसे देख सोचा—यह मेरे भय से ही भागा जा रहा है । मेरा इसका युद्ध होना चाहिए । उसने उसे ललकारते हुए पहली गाथा कही—

सूरो सूरेन संगम्भ विवकन्तेन पहारिना,
एहि नाग निवत्तसु किन्नु भीतो पलायसि;
पत्सन्तु अंगमगधा मम तुय्हुञ्च विवकमं ॥

[तू शूर है। लड़ने में, प्रहार करने में समर्थ शूर के सम्मुख होने पर हे नाग रुक; डर कर भाग क्यों रहा है। जरा अङ्गमगध के लोग मेरा और तेरा पराक्रम देखें।]

तू सूरों मुझ सूरों साथ आकर वीर्य-विक्रम से विक्कन्तेन प्रहार करने की सामर्थ्य होने से पहारिना किस कारण से बिना लड़े ही जाता है। एक प्रहार तो देने दे। इसलिए एहि नाग निवत्तस्सु इतने से ही मरने से भयभीत हो किष्ण भीतो पलायसि। यह इस सीमा में रहने वाले पत्तन्तु अंगमगघा मम तुय्हञ्च विक्कमं हम दोनों का पराक्रम देखें।

उस हाथी ने ध्यान देकर उसकी बात सुन, रुक कर उसके पास जा उसे अप्रसन्न करते हुए दूसरी गाथा कही—

न तं पादा वधिस्सामि न दन्तेहि न सोण्डिया,
मिळ्हेन तं वधिस्सामि पूति हञ्जानु पूतिना ॥

[न तुझे पांव से मारूँगा, न दाँतों से, न सूण्ड से। तुझे गूँह से मारूँगा। गन्दगी गन्दगी से ही मरे।]

तुझे पाँव आदि से नहीं मारूँगा। तेरे योग्य गूँह से ही तुझे मारूँगा।

ऐसा कह 'गन्दगी में रहने वाला कीड़ा गन्दगी से ही मरे' (करके) उसके सिर पर बड़ा सा लेण्डा गिरा कर जल छोड़ उसे वहीं मार क्रौञ्चनाद करता हुआ अरण्य में गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गूँह का कीड़ा ठिगना था। हाथी वह भिक्षु था। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला, उस बन-खण्ड में रहने वाला देवता मैं ही था।

२२८. कामनीत जातक

“तयो गिरि. . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामनीत ब्राह्मण के बारे में कही। वर्तमान कथा तथा अतीत-कथा बारहवें परिच्छेद की काम जातक^१ में आएगी।

उन दोनों राजपुत्रों में ज्येष्ठ भाई वाराणसी का राजा हुआ। छोटा भाई उपराजा। राजा की काम भोगों से तृप्ति न होती थी। वह धन का लालची था।

तब बोधिसत्त्व शक्र देवेन्द्र राजा था। उसने जम्बूद्वीप पर नजर डालते हुए उस राजा को दोनों प्रकार के भोगों में अतृप्त जान उसका निग्रह कर उसे लज्जित करने के उद्देश्य से ब्राह्मण-ब्रह्मचारी का रूप बना आकर राजा को देखा। राजा ने पूछा—

“ब्रह्मचारी ! किस मतलब से आया ?”

“महाराज ! मुझे तीन नगर ऐसे दिखाई देते हैं जो शान्त हैं; धनधान्य से पूर्ण हैं; जहाँ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल बहुत हैं; तथा जो हिरण्य, स्वर्ण के अलंकारों से भरे हैं। उन नगरों को थोड़ी ही सेना से जीता जा सकता है। मैं तुम्हें वे नगर जीत कर देने के लिए आया हूँ।”

“ब्रह्मचारी ! कब चलेंगे।”

“महाराज ! कल।”

“तो जा, प्रातःकाल ही आना।”

“अच्छा महाराज ! जल्दी से सेना तैयार कराएँ” कह शक्र अपने स्थान को चला गया।

अगले दिन राजा ने मुनादी करवा सेना तैयार करवाई और अमात्यों को बुलाकर कहा—“कल एक ब्राह्मण-तरुण ने उत्तर-याञ्जवाल, इन्द्रप्रस्थ तथा केकय

^१ काम जातक (४६७)

इन तीन नगरों के राज्य को जीत कर देने के लिए कहा है। उस तरुण को लेकर तीनों नगरों का राज्य जीतेंगे। उसे जल्दी से बुलाओ।”

“देव ! उसे निवासस्थान कहाँ दिलवाया है ?”

“मैंने उसे निवास-गृह नहीं दिलवाया।”

“उसे भोजन-खर्च दिया ?”

“वह भी नहीं दिया।”

“उसे कहाँ ढूँढ़ें ?”

“नगर की गलियों में ढूँढ़ो।”

उन्होंने ढूँढ़ा। न मिलने पर कहा—

“महाराज ! दिखाई नहीं देता।”

माणवक को न देखने से राजा को महान शोक हुआ—अरे ! इतना बड़ा ऐश्वर्य जाता रहा। हृदय गर्म हो गया। रक्त प्रकुप्त हो गया। रक्तातिसार हो गया। वैद्य चिकित्सा न कर सके। तब तीन चार दिन गुजरने पर शक्र ने ध्यान देकर उसके रोग को जान उसकी चिकित्सा करूँगा सोच ब्राह्मण-रूप धारण कर दरवाजे पर खड़े हो कहलाया—वैद्य-ब्राह्मण तुम्हारी चिकित्सा के लिए आया है।

राजा ने उसे सुन कहा—बड़े बड़े वैद्य भी मेरा इलाज नहीं कर सके। इसे खर्चा देकर बिदा करो। शक्र बोला—मुझे न भोजन की आवश्यकता है, न खर्च की। वैद्य की फीस भी नहीं लूँगा। उसकी चिकित्सा करूँगा। राजा मुझे मिले। राजा ने यह सुनकर कहा—तो आ जाए।

शक्र प्रविष्ट हो जय बुलाकर एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने पूछा—“तू मेरी चिकित्सा करेगा ?”

“देव ! हाँ।”

“तो चिकित्सा कर।”

“अच्छा महाराज ! मुझे रोग का लक्षण बताएँ। किस कारण से रोग पैदा हुआ ? कुछ खाने पीने के कारण हुआ वा कुछ देखने सुनने के ?”

“तात ! मेरा रोग सुनने से पैदा हुआ।”

“तूने क्या सुना ?”

“तात ! एक तरुण ने आकर कहा कि मैं तीन नगरों का राज्य जीत कर दूँगा।

मैंने उसे निवासस्थान वा भोजन-स्वर्च नहीं दिलवाया। वह मुझसे क्रुद्ध होकर दूसरे राजा के पास चला गया होगा। इस प्रकार 'मेरा इतना बड़ा ऐश्वर्य्य जाता रहा' सोचते रहने के कारण यह रोग पैदा हो गया है। यदि कर सकते हो तो कामना रोग की चिकित्सा करो।" इस अर्थ को प्रकट करते हुए पहली गाथा कही—

तयोंगिरि अन्तरं कामयामि
पञ्चाला कुरयो केकये च;
ततुत्तरि ब्राह्मण कामयामि
तिकिच्छ मं ब्राह्मण कामनीतं ॥

[तीनों नगर और वे जिनकी राजधानी हैं उन पाञ्चाल, कुरु तथा केकय देश की इच्छा करता हूँ। उससे अधिक भी इच्छा करता हूँ। हे ब्राह्मण ! मुझ कामना-ग्रस्त की चिकित्सा कर।]

तयोंगिरि का मतलब है तीन गिरि। अथवा तयोंगिरी को ही पाठ समझें। जैसे 'यह सुनशंनगिरि के द्वार को प्रकाशित करता है' यहां सुदर्शन देवनगर को युद्ध करके ग्रहण करना कठिन होने से, अस्थिर करना कठिन होने से, सुदर्शन-गिरि कहा गया। इसी प्रकार यहाँ भी तीनों नगरों से मतलब है तीनों गिरि इसीलिए यही अर्थ है कि तीनों नगर और उनके अन्दर तीनों प्रकार के राष्ट्र की इच्छा करता हूँ। पञ्चाला, कुरयो केकये च यह उन राष्ट्रों के नाम हैं। उनमें पञ्चाला से मतलब है उत्तर पञ्चाल, जहाँ कम्पिल्ल नगर है। कुरयो का मतलब है, कुरुराष्ट्र, उसमें इन्वपत्त नाम का नगर है। केकये प्रथमा विभक्ति के अर्थ में द्वितीया है। इससे केकय राष्ट्र का मतलब है। वहाँ केकय राजधानी ही नगर है। ततुत्तरि मैंने यहाँ वाराणसी राज्य तो प्राप्त किया है और तीन राज्य कामयामि। तिकिच्छ मं ब्राह्मण कामनीतं, इन वस्तु-कामनाओं तथा भोग कामनाओं से ले जाए गए, मारे गए मुझको, हे ब्राह्मण ! यदि सामर्थ्य है तो अच्छा कर।

शक्र ने 'महाराज ! जड़फूल की औषधियों से तेरी चिकित्सा नहीं हो सकती, जानौषध से ही तेरी चिकित्सा हो सकती है' कह दूसरी गाथा कही—

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके
अमनस्सवद्धस्स^१ करोन्ति पण्डिता;
न कामनीतस्स करोति कोचि
ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिक्किञ्छा ॥

[कोई कोई काले साँप से डसे की चिकित्सा करते हैं, कोई कोई पण्डित भूत-प्रेतादि अमनुष्यों से अभिभूतों की चिकित्सा करते हैं, लेकिन कामनाओं के जो वशीभूत हुआ है उसकी कोई चिकित्सा नहीं करता। जो शुक्लधर्म की मर्यादा को लाँघ गया, उसकी क्या चिकित्सा ?]

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हंके कुछ चिकित्सक घोर विषैले सर्प, काले सर्प से डसे हुए की मन्त्रों से तथा औषधियों से किचित्सा करते हैं। अमनुस्सवद्धस्स करोन्ति पण्डिता दूसरे पण्डित भूतवैद्य, भूतयक्षादि अमनुष्यों द्वारा मारे गए, अभि-भूत, ग्रहण किए गए, लोगों की बलिकर्म, परित्तकर्म, औषध तथा भावना आदि से चिकित्सा करते हैं। न कामनीतस्स करोति कोचि कामनाओं के वशीभूत आदमी की पण्डितों को छोड़ दूसरा कोई चिकित्सा नहीं करता। यदि करे भी, तो कर नहीं सकता। किस कारण से ? ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिक्किञ्छा जिन्होंने कुशल-धर्म को पार कर लिया, जिन्होंने कुशलधर्म की मर्यादा लाँघ दी, जो अकुशल धर्म में प्रतिष्ठित हो गए, ऐसे आदमियों की मन्त्र वा औषध से क्या चिकित्सा होगी ? ऐसे मूर्ख को दवाइयों से अच्छा नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को यह बात समझाते हुए आगे यूँ कहा—
“महाराज ! यदि तू इन तीनों राज्यों को प्राप्त करेगा, तो इन चारों नगरों पर राज्य करता हुआ क्या तू एक ही साथ चार चार वस्त्र पहनेगा ? अथवा चार चार सोने की थालियों में भोजन करेगा। अथवा चार चार पल्लों पर सोएगा ? महाराज ! तृष्णा के वशीभूत न होना चाहिए। यह विपत्ति का मूल है। यह बढ़ने पर अपने को बढ़ाने वाले आदमी को आठ महा-निरयों में, सोलह उत्सद-निरयों में तथा शेष नाना प्रकार के अपायों में जा गिराती है।”

^१ ‘अमनुस्सवद्धस्स’ पाठ अच्छा है।

इस प्रकार राजा को निरय आदि के भय से धमका कर बोधिसत्त्व ने धर्मो-पदेश दिया । राजा भी धर्म सुनकर शोकरहित हुआ । उसी समय उसका रोग जाता रहा । शक्र भी इसे उपदेश दे, शीलों में प्रतिष्ठित कर, देवलोक को ही चला गया ।

वह भी उस समय से लेकर दानादि पुण्यकर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा कामनीत ब्राह्मण था । शक्र तो मैं ही था ।

२२९. पलासी जातक^१

“गजगमेधेहि...” यह शास्ता ने जंतवन में रहते समय पलासी परि-
ब्राजक के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से सारे जम्बूद्वीप में घूमा । कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला । घूमता घूमता वह श्रावस्ती पहुँचा । वहाँ जाकर लोगों से पूछा कि मेरे साथ कोई शास्त्रार्थ कर सकता है ? मनुष्यों ने इस प्रकार बुद्ध गुणों की प्रशंसा की—“तरे जैसे हजार हों तो उनके साथ भी शास्त्रार्थ कर सकने वाले, सर्वज्ञ, मनुष्यों में श्रेष्ठ, धर्मेश्वर, दूसरे वादों को जीतने वाले महान् गौतम हैं । सारे जम्बूद्वीप में भी उत्पन्न हुआ विरोधी-मत उन भगवान् को नहीं हरा सकता । सभी मत उनके चरणों में आने पर इस प्रकार चूर्ण विचूर्ण हो जाते हैं जैसे लहरें किनारे पर पहुँच कर ।”

परिब्राजक ने पूछा—इस समय वह कहाँ है ? उत्तर मिला—जंतवन

^१ पलायि जातक

में। उसने सोचा—अब उसके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। बहुत मे आदमियों के साथ उसने जेतवन जाते समय, नौ करोड़ खर्च से जेत राजकुमार द्वारा बनाया हुआ जेतवन-द्वार देखा। उसने पूछा—यही श्रमण गौतम के रहने के प्रासाद हैं ?

“यह तो ड्योढ़ी है।”

“यदि ड्योढ़ी ऐसी है तो निवासस्थान कैसा होगा ?”

“गन्धकुटी तो असीम है।”

उसने सोचा ऐसे श्रमण से कौन शास्त्रार्थ करेगा ! वह वहीं से भाग गया। शोर मचाते हुए कुछ मनुष्यों ने जेतवन में प्रवेश किया। शास्ता ने पूछा—क्यों असमय आए ? उन्होंने वह समाचार कहा। शास्ता ने कहा—उपासको ! केवल अभी नहीं, यह पहले भी मेरे निवासस्थान की ड्योढ़ी को ही देख कर भाग गया था। उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में गन्धार राष्ट्र में तक्षशिला में बोधिसत्त्व राज्य करते थे। वाराणसी में था ब्रह्मदत्त। उसने तक्षशिला पर अधिकार करने की इच्छा से बड़ी सेना के साथ जाकर, नगर के समीप पहुँच, सेना को यह आज्ञा देते हुए कि ‘इस तरह से हाथियों को भेंजो, इस तरह से घोड़े, इस तरह से रथ, इस तरह से पैदल, इस तरह दौड़ कर शस्त्रों से प्रहार करो तथा इस प्रकार बादलों की घनी वर्षा की तरह बाणों की वर्षा बरसाओ’ ये दो गाथाएँ कहीं—

गजगमेधेहि हयगमालिहि
रथूमिजतेहि सराभिवस्सहि;
थरुगगावट्टबट्टहप्पहारिहि
परिवारिता तक्कसिला समन्ततो ॥
अभिधावथा च पतया च
विबिधविनदिता च दन्तिहि;
वत्तज्ज तुमुतो घोसो
यथा विज्जता जलघरस्स गज्जतो ॥

[श्रेष्ठ हाथियों रूप बादलों से, उत्तम घोड़ों की पंक्तियों से, रथों की लहरों से, शरों की वर्षा से, तलवार-धारी चारों ओर प्रहार करने वालों से, तक्षशिला को चारों ओर से घेर लो ।

दौड़ो, उछलो तथा नाना प्रकार के नाद करने वाले हाथियों द्वारा आज तुमल घोष करो; जैसे बिजली गर्जना करने वाले मेघों के साथ उछलती कूदती है ।]

गजगमेधेहि श्रेष्ठ हाथियों रूप मेघों द्वारा । क्रौञ्चनाद गर्जना करने वाले, मस्त हाथियों रूप बादलों द्वारा, यही अर्थ है । ह्यग्गमालिहि श्रेष्ठ घोड़ों की पंक्ति द्वारा । श्रेष्ठ घोड़ों की पंक्ति के समूह के द्वारा, अश्वों की सेना के द्वारा, यही अर्थ है । रथमिजातेहि लहरों के बंग वाले, सागर के जल की तरह रथों की लहरों वाले—रथसेना यही मतलब है । सराभिवस्सहि उन रथ-सेनाओं से मूसलाधार बरसने वाले मेघ की तरह तीरों की वर्षा बरसाते हुए । थरुग्गहावट्ट वळ्ळहप्पहारिहि इधर उधर में घूम कर दृढ़ प्रहार करने वालों से, तलवार के दस्त पकड़े हुए, पैदल योद्धाओं में । परिवारिता तक्कसिला समन्ततो, जिस प्रकार यह तक्षशिला चारों ओर से घिर जाए, वैसा करो ।

अभिधावथा च पतथा च जल्दी से दौड़ो तथा कूदो । विविध विनदिता च दन्तिहि श्रेष्ठ हाथियों के साथ नाना प्रकार से शोर मचाने वाले हाथों । सीटी बजाने, गरजने, बाजें बजाने आदि के नाना प्रकार के शब्द करो । वत्ततज्ज तुमुलो घोसो आज बिजली के सदृश महान घोष हो । यथा बिज्जुता जलधरस्स गज्जतो जैसे गरजते हुए बादल के मुँह से निकली हुई बिजलियाँ विचरण करती हैं, उसी प्रकार विचरत हुए, नगर को चारों ओर से घेर कर, राज्य छीन लो, यही अभिप्राय है ।

वह राजा गरज कर सेना को आज्ञा दे नगर-द्वार के समीप गया । वहाँ ड्योढ़ी को देखकर उसने पूछा कि क्या यह राजा के रहने का स्थान है ? यह 'ड्योढ़ी है' सुन उसने सोचा—जब ड्योढ़ी ऐसी है तो राजा का निवासस्थान कैसा होगा ? उत्तर मिला—बैजयन्त-प्रासाद जैसा । इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राजा के साथ युद्ध न कर सकूंगा, सोच ड्योढ़ी देख कर ही रुक, भाग कर वाराणसी चला आया ।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बाराणसी राजा पलासी परिव्राजक था। तक्षशिला-राजा तो मैं ही था।

२३०. दुतियपलासी जातक

“धजमपरिमितं . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक पलासी परिव्राजक के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस कथा में वह परिव्राजक जेतवन में दाखिल हुआ। उस समय जनसमूह से घिरे हुए, अलंकृत धर्मासन पर बैठे हुए, शास्ता मनोशिला तल पर सिंहनाद करते हुए, सिंह-बच्चे के समान धर्म-देशना कर रहे थे। परिव्राजक दशबलधारी के ब्रह्म-शरीर जैसे रूप, पूर्ण चन्द्र जैसी शोभा वाले मुँह तथा स्वर्णपट जैसे ललाट को देख कर, ‘इस प्रकार के उत्तम पुरुष को कौन जीत सकेगा?’ सोच रुका और दूसरी मण्डली में घुस कर भाग गया। जनता ने उसका पीछा कर, रुक, शास्ता से वह वृत्तान्त कहा। शास्ता बोले—“न केवल अभी वह परिव्राजक मेरे स्वर्ण-वर्ण मुख को देख कर भाग गया है, वह पहले भी भागा है।” इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व बाराणसी में राज्य करते थे। तक्षशिला में एक गन्धार राजा था। उसने बाराणसी जीतने की इच्छा से चतुरंगिणी सेना के साथ आकर, नगर घेर लिया। फिर नगर-द्वार पर खड़े हो अपनी सेना को देखते हुए, ‘इतनी सेना को कौन जीत सकेगा’ सोच अपनी सेना की प्रशंसा करते हुए पहिली गाथा कही—

घजमपरिमितं अनन्तपानं
 दुप्पसहं धक्केहि सागरमिव;
 गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो
 दुप्पसहो अहमज्ज ताविसेन ॥

[मेरी असीम ध्वजाएँ हैं, अनन्त सेना है। जिस प्रकार कौबों के द्वारा सागर दुर्लभ्य होता है (अथवा) हवा के द्वारा पर्वत दुर्जेय होता है, उमी प्रकार मैं आज वैसे शत्रु द्वारा दुर्जेय हूँ।]

घजमपरिमितं यह मेरे रथों में मोरपंखों में लगा कर ऊँची की हुई ध्वजाएँ अपरिमित हैं, बहुत हैं, सैकड़ों हैं। अनन्तपारं मेरी सेना भी, इतने हाथी हैं, तथा इतने घोड़े हैं इस प्रकार गिनी नहीं जा सकती।

दुप्पसहं शत्रुओं द्वारा जीती नहीं जा सकती। जैमे क्या ? धक्केहि सागरमिव जैसे सागर बहुत कौबों द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उमी प्रकार दुर्धर्ष। गिरिमिव अनिलन दुप्पसह यह मेरी सेना, दूसरी सेना के सामने उमी तरह स्थिर रहती है जैमे हवा के सामने पर्वत। दुप्पसहो अहमज्ज ताविसेन इस सेना के साथ मैं आज वैसे (शत्रु) से दुर्जेय हूँ। महल पर खड़े बाधिसत्त्व के बारे में कहता है।

उसने उसे अपना पूर्ण चन्द्र की मी शोभा वाला मुख दिखला कर धमकाया—
 मूर्ख, बकवास मत कर, जिस प्रकार मस्त हाथी सरकण्डे के वन को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अभी तेरी सेना को विध्वंस करूँगा। और दूसरी गाथा कही—

मां बालियं विप्पलपि न हिस्स ताविसं
 बिळय्हसे नहि लभसे निसेषकं;
 आसज्जसि गजमिव एकचारिनं
 यो त पदा नळमिव पोथयिस्सति ॥

[मूर्खता की बात मत बक। ऐसा नहीं हो सकता; 'मुझे रोकने वाला नहीं मिलेगा' सोच उबलता है। तू एकचारी हाथी के सामने आया है जो तुझे वैसे ही पाँव से कुचल देगा जैसे सरकण्डे को।]

मा बालियं विष्पलपि अपनी मूर्खता मत बक। न हिस्स तादिसं अथवा न हिस्स ताबिसो पाठ है। मेरी सेना अनन्त है, इस प्रकार विचार कर राज्य जीत सकने वाला तेरे जैसा न होवे वा नहीं होता है। विळयहसे तू केवल राग, द्वेष, मांह तथा मान से जलकर उबल रहा है। नहिलभसे निसेषकं मेरे जैसे को जीत कर फिर और रुकावट डालने वाला तुझे न मिलेगा। जिस रास्ते से तू आया है उमो से भगाऊँगा। आसज्जसि प्राप्त हुआ है। गजभिव एकचारिनं एक चारी मस्त हाथी की तरह। यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति जो तुझे उसी तरह कुचल देगा जिस तरह मस्त हाथी पाँवों से सरकण्डे को कुचलता है, अच्छी तरह पीस डालता है। तू उसे प्राप्त हुआ, यह अपने बारे में कहा।

इस प्रकार धमकाते हुए का कहना सुन, गन्धार राजा उसके स्वर्ण-पट सदृश महा-ललाट को देख, भयभीत हो, रुक, भाग कर अपने नगर ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गन्धार राजा पलासी परिव्राजक था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

६. उपाहन वर्ग

२३१. उपाहन जातक

“यथापि कीता” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय, देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त आचार्य को छोड़, तथागत का विरोधी शत्रु बन विनाश को प्राप्त हुआ । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ । शास्ता ने, ‘भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य को त्याग, मेरा विरोधी बन, महाविनाश को प्राप्त हुआ, वह पहले भी हुआ है’ कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हथवानों के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर हस्ति-शिल्प में पारङ्गत हो गए ।

काशी के एक गामड़े के माणवक ने आकर उनसे विद्या सीखी । बोधिसत्त्व शिल्प सिखाते हुए आचार्य—मुट्ठी^१ नहीं रखते । जो जो जानते हैं, वह सब सिखा देते हैं । उस माणवक ने बोधिसत्त्व की सारी विद्या सीख चुकने पर कहा—“आचार्य ! अब मैं राजाओं की सेवा में रहूँगा ।” बोधिसत्त्व ने ‘तात ! अच्छा’ कह महाराजा से कहा—

^१ विद्या को छिपा कर रखना ।

“महाराज ! मेरा शिष्य आपकी सेवा में रहना चाहता है ।”

“अच्छा ! रहे ।”

“तो उसका वेतन कह दें ।”

‘आपका शिष्य आपके बराबर नहीं पा सकता । आपको सौ मिलने पर उसे पचास मिलेंगे, दो (सौ) मिलने पर एक (सौ) ।’

उसने घर जाकर शिष्य से कहा । शिष्य बोला—

“आचार्य ! मैं आपके बराबर शिल्प जानता हूँ । यदि जितना आप पाते हैं उतना ही वेतन मिलेगा तो राजा की सेवा में रहूँगा, नहीं तो नहीं रहूँगा ।”

बोधिसत्त्व ने वह वृत्तान्त राजा से कहा । राजा बोला—यदि वह तुम्हारे जितना शिल्प जानता है तो तुम्हारे बराबर शिल्प दिखा सकने पर उसे तुम्हारे बराबर मिलेगा । बोधिसत्त्व ने अपने शिष्य से वह बात कही । उसने कहा ‘अच्छा, मैं दिखाऊँगा ।’ बोधिसत्त्व ने राजा से कहा । राजा बोला, तो कल शिल्प दिखा । शिष्य ने कहा—दिखाऊँगा; नगर में मुनादी करा दें । राजा ने मुनादी करा दी कि कल आचार्य और उनका शिष्य हस्तिशिल्प दिखाएँगे । जो देखना चाहें वे राजाङ्गण में इकट्ठे होकर देखें । आचार्य ने यह सोच कि मेरा शिष्य उपाय-कुशल नहीं है एक हाथी ले उसे एक ही रात में ‘उल्टीबात’ सिखाई—चल कहने पर पीछे हटना, पीछे हटो कहने पर चलना, खड़ा हो कहने पर लेटना, लेट कहने पर खड़ा होना, पकड़ कहने पर रखना तथा रख कहने पर पकड़ना । इस प्रकार सिखा, अगले दिन वह उस हाथी पर चढ़ राजदरबार में पहुँचा । शिष्य भी एक सुन्दर हाथी पर चढ़ा । जनता इकट्ठी हुई । दोनों ने बराबर शिल्प दिखाया । बोधिसत्त्व ने अपने हाथी से (हाथी) बदल लिया । वह चल कहने पर पीछे हटा । पीछे हट कहने पर आगे दौड़ा । खड़ा हो कहने पर लेट गया । लेट कहने पर खड़ा हुआ । (उसने) पकड़ कहने पर रख दिया । रख कहने पर पकड़ा ।

जनता बोली—अरे दुष्ट शिष्य ! तू आचार्य के साथ झगड़ा करता है । अपनी सामर्थ्य नहीं जानता । समझता है कि मैं आचार्य के बराबर जानता हूँ । फिर जनता ने उसे ढेले और डण्डे की मार से वहीं मार डाला ।

बोधिसत्त्व ने हाथी से उतर राजा के पास जाकर कहा—महाराज ! विद्या अपने को सुखी बनाने के लिए सीखी जाती है । लेकिन किसी किसी के

लिए शिल्प विनाश का कारण होता है जैसे ठीक से न बनाया हुआ जूता । इतना कह ये दो गाथाएँ कहीं—

यथापि कीता पुरिसस्सुपाहना
 सुखस्स अत्थाय दुखं उदब्बहे;
 घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता
 तस्सेव पादे पुरिसस्स खादरे ॥
 एवमेव यो दुक्कुलीनो अनरियो
 तम्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय;
 तमेव सो तत्थ सुतेन खादति
 अनरियो वच्चति पानदूपमो ॥

[जिस प्रकार सुख के लिए खरीदे गए जूते गर्मी से तप्त होकर तथा पादतल से पीड़ित होकर उसी आदमी के पैर को काट खाते हैं; उसी प्रकार जो नीचकुल का अनार्य होता है वह जिस (आचार्य) से विद्या तथा श्रुत ग्रहण करना है उसी को वह अपने ज्ञान (श्रुत) से खाता है। अनार्य आदमी खराब जूते के समान समझा जाता है।]

उदब्बहे, कष्ट दे। घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता घाम से अभितप्त और पैर के तलुवे से पीड़ित। तस्सेव जिसने वह खराब जूते सुख की आशा से खरीद कर पाँव में डाले उसीके। खादरे जखम करते हैं वा पाँव खाते हैं।

दुक्कुलीनो खराब जाति का, कुलहीन पुत्र। अनरियो लज्जा-भय रहित असत्पुरुष। तम्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय उस उसको सिखाता है इसलिए तंमाको की जगह तम्हाको। मतलब है उस उसको हुनर का अभ्यास कराता है, उसमें लगाता है। आचार्य ही इसका अर्थ है, इसलिए तम्हाका। गाथा-बन्धन को सरल करने के लिए ह्रस्व किया गया है। विज्जं, अठारह विद्याओं में से कोई। सुतं जो कुछ श्रुतशास्त्र। आदिय, लेकर। तमेव सो तत्थ सुतेन खादति अपने ही आपको वह अर्थात् जो दुष्टकुल का अनार्य आचार्य से विद्या और ज्ञान ग्रहण करता है वह वहाँ ज्ञान से खाता है अर्थात् उसके पास से श्रुतज्ञान से वह अपने को ही नष्ट करता है।

अटुकथा' में तेनेब सो तत्थ सुतेन खादति भी पाठ है। उसका भी 'वह वहाँ ज्ञान से अपने को खाता है' ही अर्थ है। अनरियो वुच्चति पानदूपमो अनाय्य (आदमी) खराब जूते जैसा कहा जाता है। जिस प्रकार खराब जूते आदमी को खाते हैं, उसी प्रकार यह ज्ञान में खाता है तो अपने आप अपने को ही खाता है। अथवा जूते से जखमी पानदू। जूते में पीड़ित, जूते से खाए गए पैर से मतलब है। इसलिए अपने आपको जो ज्ञान से हानि पहुँचाता है, वह उस ज्ञान से खाया जाने के कारण अनाय्य कहलाता है। पानदूपमो का यही अर्थ है कि जूते से पीड़ित पाँव की तरह।

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व को महान् सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिष्य देवदत्त था। आचार्य तो मैं ही था।

२३२. वीणथूण जातक

“एकचिन्तितोव अयमत्थो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विचरते समय एक कुमारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती के एक सेठ की लड़की थी। उसने अपने घर में वृषभराज का सत्कार होते हुए देख दाईं से पूछा—माँ, यह कौन है जिसका इस प्रकार सत्कार होता है ?

“बेटी, यह वृषभराज है।”

एक दिन उस लड़की ने प्रासाद पर खड़े होकर गली में एक कुबड़े को देखा। उसने सोचा—बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुध होता है, मनुष्यों

‘पुरानी सिंहल अटुकथा।

में जो बड़ा हो उसकी पीठ पर भी होना चाहिए। यह मनुष्यों में वृषभराज होगा। मुझे इसकी चरणसेविका बनना चाहिए। उसने दासी को भेजकर उसे कहलवाया कि सेठ की लड़की तेरे साथ जाना चाहती है। तू अमुक स्थान पर जाकर ठहर। वह कीमती चीजें ले, भेष बदल, महल से उतर उसके साथ भाग गई। आगे चलकर वह बात नगर में और भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। धर्मसभा में भिक्षुओं ने बात चलाई—“आयुष्मानो! अमुक सेठ-लड़की कुबड़े के साथ भाग गई।”

शास्ता ने आकर पूछा—‘भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?’ ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी यह कुबड़े को चाहती है, इसने पहले भी कुबड़े की ही इच्छा की है।” इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने एक निगम-ग्राम में सेठ के कुल में पैदा हो, गृहस्थी बसाते हुए, पुत्र-पुत्री के साथ बढ़ते हुए अपने पुत्र के लिए वाराणसी-सेठ की लड़की पक्की कर दिन का निश्चय किया। सेठ की लड़की ने अपने घर पर वृषभ का सत्कार-सम्मान होते देख दारि से पूछा—यह कौन है? उसने कहा—यह वृषभ है। तब सेठ की लड़की ने गली में जाते हुए एक कुबड़े को देखकर समझा कि यह पुरुषों में वृषभ होगा। उसने कीमती सामान लिया और उसके साथ भाग गई।

बोधिसत्त्व भी सेठ की लड़की को घर लाने की इच्छा से बड़ी बारात के साथ वाराणसी जाते हुए उसी रास्ते पर हो लिए। वे दोनों सारी रात रास्ता चलते रहे। रात भर सर्दी खाने के कारण अरुणोदय होने पर कुबड़े के शरीर का वायु कुपित हो गया। बड़ी पीड़ा होने लगी। वह रास्ते से हट, पीड़ा से बेहोश होने के कारण वीणा के दण्डे की तरह मुड़कर पड़ रहा। सेठ की लड़की भी उसके चरणों में बैठ रही। बोधिसत्त्व ने सेठ की लड़की को कुबड़े के चरणों में बैठे देख, पहचान कर, पास आ, सेठ की लड़की से वार्तालाप करते हुए पहली गाथा कही—

एकचिन्तितोव अयमत्थो बालो अपरिनायको,
नहि खुज्जेन वामेन भोति संगन्तुमरहसि॥

[यह (कुबड़ के साथ भागने की बात) एक-देशी चिन्ता है। (कुबड़ा) मूर्ख है, जाने में असमर्थ है। कुबड़ बौने के साथ आपका जाना उचित नहीं।]

एकचिन्तितोव अयमत्थो, अम्म ! यह जो तू सोचकर इस कुबड़ के साथ निकल भागी यह बात तेरी अकेली की ही सोची होगी। बालो अपरिनायको यह कुबड़ा मूर्ख है, दुर्बुद्धि होने से बूढ़ा होने पर भी बाल ही है। दूसरा पकड़ कर ले जाने वाला न होने पर जाने में असमर्थ होने से अपरिनायक। नहिं खुज्जेन वामेन भोति संगतुमरहसि, इस कुबड़ के साथ, वामनरूप होने से बौने के साथ, तुम्हें जो महान् कुल में उत्पन्न हुई हो, सुन्दर हो, दर्शनीय हो जाना योग्य नहीं।

उसकी इस बात को सुनकर सेठ की लड़की ने दूसरी गाथा कही—

पुरिससभं मञ्जामाना अहं खज्जमकामयि,
सोयं संकुटितो सेति छिन्नतन्ति यथा थुणा॥

[मैंने कुबड़ को पुरुषों में वृषभ समझ कर उसकी इच्छा की। यह तार टूटी बीणा की तरह सुकड़ा हुआ पड़ा है।]

आर्य ! मैंने एक साँड़ को देखकर सोचा कि बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुध होता है। इसकी पीठ पर भी यह है। इसलिए यह पुरुषों में वृषभ होगा। इस प्रकार मैंने इस कुबड़ को पुरुष-वृषभ मान कर इसकी इच्छा की। यह तो जैमे, भग्न-तार तूमड़ी सहित बीणा-दण्ड हो वैसे मुड़ा हुआ पड़ा है।

बोधिसत्त्व यह जान कि वह अज्ञान के ही कारण घर से निकल पड़ी, उसे नहला, अलङ्कृत कर, रथ पर चढ़ा घर ले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय यही सेठ की लड़की थी। वाराणसी-सेठ तो मैं ही था।

२३३. विकण्णक जातक

“कामं यहि इच्छसि तेन गच्छ...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह धर्मसभा में लाया गया। शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है? ‘सचमुच’ कहने पर पूछा—किस कारण उत्कण्ठित है? बोला—कामुकता के कारण। शास्ता ने उसे कहा—“भिक्षु, कामुकता तीखे शल्य की तरह है। एक बार हृदय में प्रतिष्ठित होने पर तीर लगें मगरमच्छ की तरह मार ही डालती है।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व वाराणसी में धर्म से राज्य करते हुए एक दिन उद्यान में जाकर पुष्करिणी के किनारे बैठे। नृत्यगीतादि में जो चतुर थे उन्होंने नाचना गाना आरम्भ किया। नृत्यगीतादि से आकृष्ट होने के कारण मच्छ कछुवे इकट्ठे होकर राजा के ही साथ साथ चलते। ताड़ के तने के समान इकट्ठे हुए मच्छों को देखकर राजा ने अमात्यों से पूछा—यह मच्छ मेरे साथ साथ ही क्यों चलते हैं? अमात्यों ने उत्तर दिया—यह देव की सेवा में हैं। राजा ने ‘यह मेरी सेवा में हैं’ सन्तुष्ट हो उनके लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। रोज अम्मण^१ भर चावल पकता। भात खिलाने के समय कोई मच्छ आते, कोई न आते। भात नष्ट होता। राजा से वह बात कही गई। राजा ने कहा—अब से नगाड़ा बजाकर नगाड़ों की आवाज पर मच्छों के इकट्ठे होने पर उन्हें भात दिया जाए। तब से भात का प्रबन्ध करने वाला नगाड़ा बजवा कर, आए हुए मच्छों को भात देता। वे भी

^१ एक अम्मण = १ करीस = ११ ब्रोज।

नगाड़े की आवाज पर इकट्ठे हो कर खाते । उनके इस प्रकार इकट्ठे होकर भात खाने के समय एक मगर मच्छ आकर उन्हें खा जाता । भोजन-प्रबन्धक ने राजा से कहा । राजा ने उसे सुनकर कहा—जिस समय मगर-मच्छ मच्छों को खाता हो उसे तीर से बंध कर पकड़ लो । उसने 'अच्छा' कह, जाकर नौका पर खड़े हो मच्छ खाने के लिए आए मगरमच्छ पर तीर चलाया । वह उसकी पीठ में घुस गया । मगरमच्छ पीड़ा से व्याकुल हो उसे लेकर ही भाग गया । भोजन-प्रबन्धक ने उसका बिन्धना जान उसे सम्बोधित कर पहली गाथा कही—

कामं यंहि इच्छसि तेन गच्छ
विदोसि मम्महि विकणकेन;
हतोसि भत्तेन सवादितेन
लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो॥

[जहाँ इच्छा हो वहाँ जा । तीर से मर्म-स्थान में बिधा है । स्वादिष्ट भोजन के कारण मच्छों का पीछा करता हुआ लोभवश मारा गया है ।]

कामं निश्चय से । यंहि इच्छसि तेन गच्छ जहाँ चाहे वहाँ जा । मम्महि मर्म-स्थान में । विकणकेन उल्टी नोक वाले शल्य से । हतोसि भत्तेन सवादितेन लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो तू नगाड़ा बजाकर भात दिए जाते समय लोभी बन खाने के लिए मच्छों का पीछा करता हुआ उस स्वादिष्ट भोजन द्वारा मारा गया । जाने की जगह भी तू जीवित नहीं रहेगा ।

वह अपने वासस्थान पर पहुँच कर मर गया । शास्ता ने यह बात कह, अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

एबम्मि लोकामिसं ओपतन्तो
विहञ्जती चित्तवसानुदत्ती;
सो हञ्जति आतिसखानमग्गे
मच्छानुगो सोरिव सुंसमारो॥

[इस प्रकार लौकिक लाभ के पीछे भागता हुआ, अपने चित्त के वशीभूत

आदमी मारा जाता है। वह रिश्तेदारों और दोस्तों के बीच वैसे ही मारा जाता है जैसे मच्छों का पीछा करने वाला मगरमच्छ।]

लोकामिसं पाँच विषय। उन्हें संसार इष्ट, कान्त तथा सुन्दर समझ ग्रहण करता है, इसलिए लोकामिसं कहलाते हैं। ओपतन्तो उन लौकिक चीजों के पीछे भागता हुआ राग के वशीभूत आदमी विहङ्गति कष्ट पाता है सो हङ्गति इस प्रकार का वह आदमी रिश्तेदारों तथा मित्रों के बीच में भी सो तीर से बिधे मच्छानुगो सुसुमारो विय पाँच विषयों को सुन्दर मानकर हङ्गति कष्ट पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाय। सत्त्यों के प्रकाशन के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय वाराणसी राजा में ही था।

२३४. असिताभू जातक

“त्वमेवदानिमकर . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुमारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दोनों प्रधान शिष्यों की सेवा करने वाले एक कुल में एक कुमारी थी—सुन्दर, सौभाग्यशाली। वह बड़ी होने पर अपनी बराबर की जाति के कुल में गई। उसका स्वामी उसे कुछ न समझ किसी दूसरी जगह ही आसक्त रहता। वह उसके अनादर का कुछ ख्याल न कर, दोनों श्रावकों को निमन्त्रित कर, महादान दे धर्मोपदेश सुनती हुई स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद से वह

मार्ग-सुख तथा फल-सुख का आनन्द लेती हुई सोचने लगी कि स्वामी भी मुझे नहीं चाहता और गृहस्थी से भी मुझे प्रयोजन नहीं। मैं प्रब्रजित होऊँगी। वह माता-पिता को कह, प्रब्रजित हो अर्हत्त्व को प्राप्त हुई। उसकी वह करनी भिक्षुओं को ज्ञात हो गई।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक कुल की लड़की सदर्थ की खोज करने वाली है। उसने यह जान कि स्वामी उसे नहीं चाहता है, प्रधान शिष्यों का धर्मोपदेश सुन, स्त्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, फिर मातापिता की आज्ञा ले, प्रब्रजित हो अर्हत्त्व प्राप्त किया। ऐसी है वह सदर्थ की खोज करने वाली लड़की। शास्ता ने आकर पूछा—“भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?” ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, वह कुलकुमारी केवल अभी सदर्थ की खोज करने वाली नहीं है, वह पहले भी सदर्थ की खोज करने वाली ही रही है।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ऋषियों के क्रम से प्रब्रजित हो अभिञ्जा तथा समापत्तिर्या प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में रहने लगे। उस समय वाराणसी नरेश ने यह देख कि उसके पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार के साथ बहुत लोंग हैं उससे आशंका होने के कारण उसे राष्ट्र से बाहर करवा दिया। वह असिताभू नामक अपनी देवी को साथ ले, हिमालय में प्रविष्ट हो, मछली, मांस, फलमूल खाता हुआ पर्णशाला में रहने लगा। एक किन्नरी को देख, उसके प्रति आसक्त हो उसने सोचा कि इसे अपनी भार्य्या बनाऊँगा और असिताभू का ख्याल न कर उसके पीछे पीछे गया। उसने उसे किन्नरी के पीछे जाता देख सोचा यह मुझे छोड़ किन्नरी के पीछे जाता है, मुझे इससे क्या ? उसने उसके प्रति विरक्त हो बोधिसत्त्व के पास जा, प्रणाम कर, अपने योग्य कसिन पूछ, कसिन की भावना कर अभिञ्जा और समापत्तिर्या प्राप्त कीं। फिर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर आकर स्वयं पर्णशाला-द्वार पर खड़ी हुई। ब्रह्मदत्त भी किन्नरी का पीछा करता हुआ धूमता रहा। उसे उसके जाने का मार्ग तक न दिखाई दिया। वह निराश होकर पर्णशाला के सामने आया। असिताभू ने उसे आते देख आकाश में उठ, मणि वर्ण के गगनतल में खड़ी हो ‘आर्यपुत्र ! तेरे कारण मुझे यह ध्यान सुख प्राप्त हुआ’ कह पहली गाथा कही—

त्वमेववानिमकर यं कामो व्यगमा तयि,
सो यं अप्पटिसन्धिको खरा छिन्नं रेखं ॥

[यह तो तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, यह अब तूने ही किया है। आरी से कटे हाथीदाँत की तरह यह अब जुड़ नहीं सकती।]

त्वमेववानिमकर आर्यपुत्र ! मुझे छोड़ कर किन्नरी का पीछा करते हुए तूने ही यह किया है। यं कामो व्यगमा तयि जो मेरी तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, विषकम्भन-प्रहाण द्वारा प्रहीण हो गई, जिसके प्रहीण होने से मुझे यह विशेष-अवस्था प्राप्त हुई। सोयं अप्पटिसन्धिको वह आसक्ति अब बिना जुड़ सकने वाली हो गई, फिर जोड़ी नहीं जा सकती। खरा छिन्नं रेखं खर कहते हैं आरी को और रेख कहते हैं हाथीदाँत को। जैसे आरी से कटा हुआ हाथीदाँत फिर जुड़ नहीं सकता, फिर पहले की तरह से नहीं मिलता। इसी प्रकार मेरा तेरे साथ फिर चित्त का संयोग नहीं हो सकता।

यह कह उसके देखते हुए ही ऊपर उठकर दूसरी जगह चली गई। उसने उसके जाने पर रोते हुए दूसरी गाथा कही—

अत्रिच्छा अतिलोभेन अतिलोभमदेन च,
एवं हायति अत्थम्हा अहं व असिताभुया ॥

[जहाँ तहाँ इच्छा करने से, अति लोभ से तथा अति लोभमद से आदमी उसी प्रकार अपने लाभ को गँवा देता है जैसे मैंने असिताभू को।]

अत्रिच्छा अतिलोभेन अत्रिच्छा कहते हैं जहाँ तहाँ पैदा होने वाली असीम तुष्णा को। अतिलोभ कहते हैं सीमा लाँघने वाले लोभ को। अतिलोभमदेन च पुरुष-मद पैदा होने से अतिलोभ मद हो गया। भावार्थ यह है कि जहाँ तहाँ इच्छा करने वाला आदमी अतिलोभ से तथा अतिलोभमद से अहं व असिताभुया जैसे मैं असिताभू राजकन्या से जुदा हो गया वैसे वह अपने लाभ को गँवा देता है।

उसने यह गाथा कह रोते रहकर, अरण्य में अकेला ही विचर, पिता के मरने पर जाकर राज्य ग्रहण किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजपुत्र और राजकन्या यही दो जने थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२३५. वच्छनख जातक

“सुखा घरा वच्छनख . . .” यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय रोजमल्ल के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् आनन्द का गृहस्थी-काल का मित्र था। उसने एक दिन स्थविर के पास आने के लिए सन्देश भेजा। स्थविर शास्ता से आज्ञा लेकर गए। उसने स्थविर को नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खिला, एक ओर बैठ, स्थविर के साथ कुशल क्षेम बतियाते हुए स्थविर को गृहस्थ-भोगों तथा पाँच विषयों का निमन्त्रण दिया। वह बोला—भन्ते आनन्द ! मेरे घर में बहुत सी जड़चेतन सम्पत्ति है, इसे बीच में से आधी बाँटकर तुम्हें देता हूँ। आएँ दोनों घर में रहें।

स्थविर ने उसे कामभोगों के दुष्परिणाम कहे और आसन से उठकर विहार चले गए। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! तूने रोज को देखा ?

“हाँ, भन्ते।”

“उसे क्या कहा ?”

“भन्ते ! मुझे रोज गृहस्थ होने का निमन्त्रण देता था। मैंने उसे गृहस्थ जीवन के तथा विषयों के दोष बताए।”

शास्ता ने कहा—आनन्द ! रोजमल्ल केवल अभी प्रव्रजितों को गृहस्थ होने का निमन्त्रण नहीं देता। इसने पहले भी निमन्त्रण दिया है। उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक निगम-ग्राम में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो हिमालय में रहने लगे। वहाँ चिरकाल तक रहकर निमक-खटाई खाने के लिए वाराणसी पहुँच, राजा के बाग में रह, अगले दिन वाराणसी में प्रवेश किया। वाराणसी का सेठ उनकी चालढाल से प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें घर ले जाकर भोजन खिलाया। फिर उद्यान में रहने का वचन ले सेवा करते हुए उद्यान में बसाया। उनमें परस्पर स्नेह पैदा हो गया।

बोधिसत्त्व के प्रति प्रेम और विश्वास होने के कारण वाराणसी-सेठ एक दिन इस प्रकार मोचने लगा—प्रब्रजित रहना दुःखकर है। मैं अपने मित्र वच्छनख परिव्राजक को गृहस्थ बना सारा धन बीच में से आधा आधा बाँट कर उसे दे दूँ। दोनों मिलकर रहें। उसने एक दिन भोजन के अनन्तर उसके साथ मधुर बातचीत करते हुए कहा—‘भन्ते वच्छनख ! प्रब्रजित रहना दुःख है। गृहस्थ रहने में सुख है। आएँ दोनों मिलकर विषयों का भोग करते हुए रहें।’ यह कह पहली गाथा कही—

सुखा घरा वच्छनख सहिरञ्जा सभोजना,
यत्थ भुत्वा च पीत्वा च सयेय्याथ अनुस्सुको ॥

[वच्छनख ! सोने और खाद्य पदार्थों से भरपूर घर सुख-कर है, जहाँ खा पीकर आदमी निश्चित सोता है।]

सहिरञ्जा सात रत्नों से युक्त। सभोजना बहुत खाद्य भोज्य पदार्थों से युक्त। यत्थ भुत्वा च पीत्वा च जिन सोने और भोजनों से युक्त घरों में नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खाकर और नाना प्रकार के पान पीकर। सयेय्याथ अनुस्सुको जिन (घरों) में अलंकृत शयनासनों पर निश्चित होकर सोएगा, उससे घर बहुत ही सुखकर है।

उसकी बात सुन बोधिसत्त्व ने कहा—मेठ ! तू अज्ञान के कारण काम-भोगों में आसक्त होकर गृहस्थी का गुण और प्रव्रज्या का अवगुण कह रहा है । अब तू सुन, मैं गृहस्थी के दोष बताता हूँ । यह कह दूसरी गाथा कही—

घरा नानीहमानस्स घरा नाभणतो मुसा,
घरा नादिन्नदण्डस्स परेसं अनिकुब्बतो;
एवं छिद्दं दुरभिभवं को घरं पटिपज्जति ॥

[(नित्य) मेहनत न करने वाले की गृहस्थी नहीं चलती । झूठ न बोलने वाले की गृहस्थी नहीं चलती । दूसरों को न उगते हुए को गृहस्थी नहीं चलती । दण्डत्यागी की गृहस्थी नहीं चलती । इस प्रकार की छिद्रों से पूर्ण, मुश्किल से चलने वाली गृहस्थी को कौन करता है ।]

घरा नानीहमानस्स नित्य कृषि गोरक्षा आदि करने में परिश्रम न करने वाले की गृहस्थी नहीं (चलती) । गृहस्थी स्थिर नहीं होती । घरा नाभणतो मुसा, खेत, वस्तु, हिरण्य, स्वर्ण आदि के लिए झूठ न बोलने वाले की भी गृहस्थी नहीं । घरा नादिन्नदण्डस्स परेसं अनिकुब्बतो जिनने दण्ड नहीं लिया, जिनने दण्ड ग्रहण नहीं किया, जिसने दण्ड रख दिया वैसे दूसरों को न उगने वाले की भी गृहस्थी नहीं । जो दण्डधारी होकर दूसरों के दासों तथा नौकर-चाकर आदि को उस उस अपराध के लिए अपराध के अनुसार वध करना, बाँधना, (अङ्ग-) छेद करना, ताड़ना आदि करता है उसी की गृहस्थी ठहरती है । एवं छिद्दं दुरभिभवं को घरं पटिपज्जति सो अब इस प्रकार ढोंग आदि के न करने पर अनेक हानियाँ होने के कारण छिद्र-पूर्ण; करने पर नित्य ही करना पड़ने के कारण कठिन, मुश्किल से निभने वाली; नित्य करने पर भी दुरभिसम्भव तथा मुश्किल से पूरा पड़ने वाले घर को मैं चिन्ता-रहित होकर कलूंगा ? (ऐसा बोलकर) गृहस्थी को कौन करे ?

इस प्रकार बोधिसत्त्व गृहस्थी के दोष कह उद्यान ही चले गए । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय वाराणसी-सेठ रोजमल्ल था । वच्छनख परिव्राजक तो मैं ही था ।

२३६. बक जातक

“भट्टको वतयं पक्खी . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए एक ढोंगी के बारे में कही।

उसे ले जाने पर शास्ता ने देखकर कहा—“भिक्षुओ, यह न केवल अभी ढोंगी है, यह पहले भी ढोंगी रहा है।” और पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश के एक तालाब में बड़े परिवार सहित मच्छ होकर रहते थे। मच्छों को खाने की इच्छा से एक बगुला तालाब के पास सिर गिरा कर तथा पंखों को पसार कर मछलियों की प्रमादावस्था को धीरे धीरे देखता हुआ खड़ा था। उसी समय मच्छों के समूह से घिरे हुए बोधिसत्त्व शिकार पकड़ते पकड़ते वहाँ पहुँचे। मच्छों के गण ने उस बगुले को देख पहली गाथा कही—

भट्टको वतयं पक्खी द्विजो कुमदसन्निभो,
वूपसन्तेहि पक्खेहि मन्द मन्दोव ज्ञायति ॥

[कुमुद सदृश यह पक्षी बहुत अच्छा है। शान्त परों से यह शनैः शनैः ध्यान करता है।]

मन्दमन्दोव ज्ञायति अशक्त की तरह से, कुछ न जानता हुआ सा अकेला ही ध्यान करता है।

उसे देख बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नास्स सीलं विजानाय अनञ्जाय पसंसथ,
अम्हे द्विजो न पालेति तेन पक्खी न फन्दति ॥

[इसके स्वभाव को नहीं जानते। बिना जाने प्रशंसा करते हो। यह पक्षी हमारा रक्षा नहीं करता। इसीलिए पर नहीं फड़फड़ाता।]

अनञ्जनाय—न जानकर। अम्हे द्विजो न पालेति यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता, हमें नहीं सँभालता। यह सोचता है कि मैं इनमें से किसे खाऊँगा ? तोन पक्षी न फन्दति इसीसे पक्षी न फड़फड़ाता है, न चलता है।

ऐसा कहने पर मच्छों के समूह ने पानी में क्षोभ पैदा करके बगुले को भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बगुला (यह) ढोंगी था। मच्छराज तो मैं ही था।

२३७. साकेत जातक

“को नु खो भगवा हेतु...” यह शास्ता ने साकेत के समीप विहार करते समय साकेत ब्राह्मण के बारे में कही।

अतीत कथा और वर्तमान कथा भी एकक निपात (पहले परिच्छेद) की पूर्वोक्त साकेत जातक^१ में आ ही चुकी है। हाँ, तथागत के विहार जाने पर भिक्षुओं ने पूछा—भन्ते ! यह स्नेह कैसे स्थापित हो जाता है ? यह पूछते हुए उन्होंने पहली गाथा कही—

को नु खो भगवा हेतु एकच्चे इध पुगले,
अतीव हृदयं निम्बाति चित्तञ्चापि पसीदति ॥

^१ साकेत जातक (१.७.६८)

[भगवान ! इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी के प्रति हृदय अति शान्त हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है ।]

अर्थ—इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी को देखते ही हृदय अति शान्त हो जाता है, सुगन्धित शीतल जल के हजारों घड़ों से सींचे हुए की तरह शीतल हो जाता है; किसी के प्रति नहीं होता ? किसी को देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, कोमल पड़ जाता है, प्रेम में जुड़ जाता है; किसीसे नहीं जुड़ता ?

शास्ता ने उन्हें प्रेम का कारण बताते हुए दूसरी गाथा कही—

पुब्बेव सन्निवासेन पच्चुप्पन्नहितेन वा,
एवं तं जायते पेमं उत्पलं व यथोदके ॥

[पूर्व जन्म के सम्बन्ध से वा इस जन्म के उपकार में प्रेम पैदा होता है जैसे जल में कमल ।]

भिक्षुओ, प्रेम इन दो कारणों से ही पैदा होता है । पूर्व जन्म में चाहे माता, चाहे पिता, चाहे पुत्र, चाहे भाई, चाहे बहिन, चाहे पति, चाहे भाय्या, चाहे सहायक, चाहे मित्र होकर जो कोई जिस किसी के साथ एक स्थान में रहता है उससे इस पुब्बेव सन्निवासेन वा दूसरे जन्म में भी वह स्नेह नहीं छूटता । इस जन्म में किए गए पच्चुप्पन्नहितेन वा एवं तं जायते पेमं । इन दो कारणों से प्रेम पैदा होता है । जैसे क्या ? उत्पलं व यथोदके 'व' का ह्रस्व कर दिया । समुच्चय अर्थ में ही इस का प्रयोग है । इसलिए उत्पल तथा जल में पैदा होने वाले शेष जितने भी पुष्प हैं वे दो ही कारणों से पैदा होते हैं—जल में और गारे से । उसी प्रकार इन दो ही कारणों से प्रेम पैदा होता है ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय के ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जन थे । पुत्र तो मैं ही था ।

२३८. एकपद जातक

“इंध एकपदं तात . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करने समय एक कौटुम्बिक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

यह कौटुम्बिक श्रावस्ती निवासी था । एक दिन गोद में बैठे हुए पुत्र ने अर्थ का द्वार नामक प्रश्न पूछा । उसने सोचा यह प्रश्न बुद्ध का ही विषय है । इसका उत्तर अन्य कोई नहीं दे सकेगा । वह पुत्र को लेकर जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम करके कहा—भन्ते ! इस बालक ने गोद में बैठे बैठे अर्थ का द्वार प्रश्न पूछा है । मैं उसको नहीं जानता था । इसलिए यहाँ आया हूँ । भन्ते ! इस प्रश्न को कहें ।

शास्ता ने कहा—“उपासक ! यह बालक केवल अभी अर्थ की खोज करने वाला नहीं है । इसने पहले भी अर्थ-खोजी होकर पण्डितों से यह प्रश्न पूछा है । पुराने पण्डितों ने इसे यह कहा भी है । किन्तु जन्मान्तर की बात होने से अब इसे उसका ध्यान नहीं ।” इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने सेठ के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का स्थान ग्रहण किया । उसके पुत्र ने जब वह बच्चा ही था गोदी में बैठे बैठे पूछा—तात ! मुझे अनेकार्थ वाला एक कारण, एक बात कहें । यह पूछते हुए उसने यह गाथा कही—

इंध एकपदं तात अनेकत्थपडनिस्सितं,
किञ्चि संग्राहिकं ब्रूहि येनत्थे साधयामसे ॥

[तात ! अनेक अर्थपदों से युक्त कोई एक सङ्ग्राहक पद कहें, जिससे अर्थ की प्राप्ति हो ।]

इंघ याचना के वा प्रेरणा के अर्थ में निपात है । एकपदं एक पद वा एक बात से युक्त पद । अनेकत्थपदनिस्सितं अनेक अर्थों वा बातों से युक्त । किञ्चि संग्राहिकं ब्रूहि कोई एक बहुत से पदों का सङ्ग्राहक पद कहें । अथवा यही पाठ है । येनत्थे साधयामसे जिस अनेकार्थ युक्त एक पद से ही हम अपनी वृद्धि सिद्ध करें, वह हमें कहें—यही पूछता है ।

उसके पिता ने कहते हुए दूसरी गाथा कही—

दक्खेय्येकपदं तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
तञ्च सीलेन संयुतं खन्ति या उपपाबितं;
अलं मित्ते सुखापेतुं अमित्तानं दुक्खाय च ॥

[तात ! दक्षता अनेक अर्थपदों से युक्त एक पद है । वह शील और क्षमा के महित हो तो मित्रों को सुख तथा शत्रुओं को दुख देने के लिए पर्याप्त है ।]

दक्खेय्येकपदं दक्षता एक पद है । दक्षता कहते हैं लाभ उत्पन्न करने वाले, हुशियार कुशल आदमी का ज्ञानपूर्ण प्रयत्न (=वीर्य्य) । अनेकत्थपदनिस्सितं इस प्रकार कहा गया वीर्य्य अनेक अर्थ पदों से युक्त । किनसे ? शीलादि से । इसीलिए तञ्च सीलेन संयुतं आदि कहा । उसका अर्थ है कि वह वीर्य्य आचार-शील तथा सहनशक्ति से युक्त । मित्ते सुखापेतुं अमित्तानञ्च दुक्खाय अलं, समर्थ है । कौन है जो लाभ उत्पन्न करने वाले, ज्ञानपूर्ण कुशल वीर्य्य से युक्त हो, आचार-शील तथा क्षमा से युक्त हो और मित्रों को सुख देने तथा शत्रुओं को दुख देने में समर्थ न हो ?

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पुत्र के प्रश्न का उत्तर दिया । वह भी पिता के कथनानुसार अपनी उन्नति कर यथाकर्म परलोक गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्त्यों के प्रकाशन के अन्त में पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए । उस समय पुत्र यही था । वाराणसी मेठ तो मैं ही था ।

२३९. हरितमात जातक

“आसिबिसं ममं सन्तं . . .” यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय अजातशत्रु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

कोशलराज के पिता महाकोशल ने राजा बिम्बिसार को अपनी लड़की देने के समय लड़की का स्नान-मूल्य काशीगाँव दिया । अजातशत्रु द्वारा पिता मार दिये जाने से वह राजा के प्रति स्नेह होने के कारण शीघ्र ही मर गई । माता के मर जाने पर भी अजातशत्रु उस गाँव का उपभोग करता ही था । कोशलराज उससे लड़ता था कि मैं पिता की हत्या करने वाले चोर को अपने कुल का गाँव न दूँगा । कभी मामा विजयी होता, कभी भानजा । जब अजातशत्रु जीतता तब रथ पर ध्वजा बँधवा बड़ी शान के साथ नगर में प्रवेश करता । जब पराजित होता तब दुखी मन से चुपचाप बिना किसी को खबर किए प्रवेश करता ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अजात-शत्रुमामा को हराकर प्रसन्न होता है हारने पर चिन्तित होता है । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, यह पहले भी जीतने पर प्रसन्न होता था, हारने पर दुखी होता था ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व नीले मेण्डक होकर पैदा हुए। उस समय मनुष्यों ने नदी कन्दरा आदि में जहाँ तहाँ मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल^१ फैलाए थे। एक जाल में बहुत सी मछलियाँ दाखिल हुईं। एक जल-सर्प भी मछलियाँ खाता हुआ उसी जाल में फँसा। बहुत सी मछलियों ने इकट्ठे हो उसे खा लहू-लुहान कर दिया। जब उसे कहीं शरण न दिखाई दी तो मृत्यु से भयभीत हो वह जाल से निकल वेदना से बेहोश हो पानी के किनारे जा पड़ा। नील मेण्डक भी उस समय उछल कर जाल के सिरे पर आ पड़ा था। सर्प को कोई दूसरा निर्णायक न दिखाई दिया तो उसने उस मेण्डक को वहाँ पड़े देख पूछा—“सौम्य नील मेण्डक ! क्या तुझे इन मछलियों की यह करतूत अच्छी लगती है ?” उसने यह पहली गाथा कही—

आसीविसं ममं सन्तं पविट्ठं कुम्भिनामुल्लं,
रुच्चते हरितामाता यं मं खादन्ति मच्छका ॥

[हं हरी माता वाले ! यह जो जाल में दाखिल होने पर मुझे सर्प को मछलियाँ खाती हैं, क्या यह तुझे अच्छा लगता है ?]

आसिबिसं ममं सन्तं सर्प को । रुच्चते हरितामाता यं मं खादन्ति मच्छका कहता है कि हे हरे मेण्डकपुत्र क्या यह तुझे अच्छा लगता है ?

हरे मेण्डक ने उत्तर दिया—हाँ, मित्र अच्छा लगता है। किस कारण से ? यदि तू अपने प्रदेश में आने पर मछलियों को खाता है तो मछलियाँ भी तुझे अपने प्रदेश में आने पर खाती हैं। अपने अपने प्रदेश में, विषय में, गोचर-भूमि में कोई कमजोर नहीं होता। यह कहकर दूसरी गाथा कही—

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति,
यदा चञ्जे विलुम्पन्ति सो विलुत्तो विलुम्पति ॥

^१ मछलियाँ पकड़ने का बाँस का फन्दा ।

[जब तक सामर्थ्य होती है आदमी (दूसरों) को लूटता ही है। जब दूसरे लूटते हैं, तो वह लूटने वाला लुटता है।]

बिलुम्पतेव पुरिसो यावत्स उपकप्पति जब तक पुरुष का ऐश्वर्य्य रहता है तब तक वह दूसरों को लूटता ही है। **या व सो उपकप्पति** यह भी पाठ है। जितने समय तक वह आदमी लूट सकता है, अर्थ है। **यदा चञ्चे बिलुम्पन्ति** जब दूसरे ऐश्वर्य्यशाली होकर लूटते हैं। **सो बिलुत्तो बिलुम्पति** वह लुटेरा लूटा जाता है। **बिलुम्पते** भी पाठ है। अर्थ यही है। **बिलुम्पनं** भी पढ़ते हैं। उसका अर्थ ठीक नहीं बैठता। इस प्रकार लूटने वाला फिर लूटा जाता है।

बोधिसत्त्व के मुकद्दमे का निर्णय देने पर मछलियों ने जल-सर्प की दुर्बलता जान, शत्रु को धर पकड़ने के लिए जाल से निकल उसे वहीं मार डाला और चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जल-सर्प अजातशत्रु था। नील-मेण्डक तो मैं ही था।

२४०. महापिंगल जातक

“सबो जनो . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त के शास्ता के प्रति बैर बाँध लेने के नौ महीने बाद जेतवन के द्वार-कोठे पर (उसके) पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर जेतवनवासी तथा सकल नगर के निवासी यह सोच कि बुद्ध के मार्ग का कण्टक देवदत्त पृथ्वी के द्वारा निगल लिया गया और अब सम्यक सम्बुद्ध का शत्रु मर गया बड़े सन्तुष्ट हुए । उनसे परम्परा-घोष^१ से सुनकर सारे जम्बूद्वीपवासी तथा यक्ष भूत और देवगण भी बड़े हर्षित हुए ।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त के पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर महा-जन-समूह यह सोचकर कि बुद्ध का विरोधी देवदत्त पृथ्वी द्वारा निगल लिया गया हर्षित हुआ । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त के मरने पर जन-समूह हर्षित होता है और प्रसन्न होता है, पहले भी हर्षित हुआ है और प्रसन्न हुआ है ।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महापिङ्गल नाम का राजा अधर्म से, अनुचित तौर पर राज्य करता था । छन्द आदि के वशीभूत हो पापकर्म करता हुआ दण्डबलि जङ्घ-कार्षापण आदि ले जनता को ऐसे पीड़ता था जैसे ऊँड़-यन्त्र ऊँड़ को । वह

^१ एक से दूसरा और फिर उससे तीसरा सुने ।

रौद्र स्वभाव का था, कठोर था और दुस्साहसी था। उसमें दूसरों के लिए तनिक भी दया नहीं थी। घर में स्त्रियों का, लड़के लड़कियों का, अमात्य ब्राह्मणों का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानो आँख में धूल हो, भात के कौर में कंकर हो, अथवा ऐड़ी को बाँध कर काँटा घुस गया हो।

उस समय बोधिसत्त्व महापिङ्गल का पुत्र होकर पैदा हुए। महापिङ्गल बिरकाल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी वाराणसी वासियों ने हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, खूब प्रसन्न हो एक हजार गाड़ी लकड़ी से महापिङ्गल को जलाकर अनेक सहस्र घड़ों से आग बुझाई। फिर बोधिसत्त्व को राज्य पर अभिषिक्त कर 'हमें धार्मिक राजा मिला' सोच (वे) प्रसन्न हो नगर में उत्सव-भेरी बजवा, ऊँची ध्वजाओं तथा पताकाओं से नगर को अलङ्कृत कर, दरवाजे दरवाजे पर मण्डप बनवा, खील-पुष्प बिखरे, सजे हुए मण्डपों में बैठ कर खाने पीने लगे।

बोधिसत्त्व भी अलङ्कृत महान् तल पर (बिछे) श्रेष्ठ आसन के बीच में, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था बैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घेर कर खड़े थे। एक द्वारपाल थोड़ी ही दूर पर खड़ा हो आश्वास-प्रश्वास लेता हुआ रोने लगा। बोधिसत्त्व ने उसे देख पूछा—सौम्य ! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे हैं। लेकिन तू खड़ा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था ? यह पूछते हुए पहली गाथा कही —

सम्बो जनो हिंसितो पिंगलेन
तस्मि मते पञ्चयं वेदयन्ति,
पियो नु ते आसि अकण्ठनेतो
कस्मा नु त्वं रोदसि द्वारपाल॥

[पिङ्गल ने सब जनों को कष्ट दिया। उसके मरने पर सभी आनन्द का अनुभव करते हैं। हे द्वारपाल ! क्या वह तेरा ही प्रिय था ? तू क्यों रोता है ?]

हिंसितो नाना प्रकार के दण्ड बलि आदि से पीड़ा दी। पिङ्गलेन पिङ्गल आँख वाले ने, उसकी दोनों आँखें एकदम पिङ्गल वर्ण की, बिल्ली की आँखों के

समान थीं। इसीसे उसका नाम पिङ्गल हुआ। पञ्चयं वेदयन्ति प्रीति अनुभव करते हैं। अकण्ठनेतो पिङ्गल आँख वाला। कस्मा नु त्वं तू किस कारण से रोता है? अटुकथा में कस्मा तुवं पाठ है।

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—“मैं इस शोक से नहीं रोता हूँ कि महा-पिङ्गल मर गया। मेरे सिर को तो मुख हुआ है। पिङ्गल राजा प्रासाद से उतरते हुए और चढ़ते हुए हथौड़ी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ आठ टोके लगाता था। वह परलोक जाकर भी जैसे मेरे सिर में टोके लगाता था उमी तरह निरय-पालकों तथा यमराज के सिर में भी टोके लगाएगा। ‘यह हमें बहुत कष्ट देता है’ सोच वह इसे फिर यहाँ लाकर छोड़ जा सकते हैं। वह मेरे सिर में फिर टोके मारेगा। मैं इस भय के कारण रोता हूँ।” यह अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

म मे पियो आसि अकण्ठनेतो
भायामि पञ्चायमनाय तस्स,
इतो गतो हिसेय्य मच्चुराजं
सो हिंसितो आनेय्य पुन इध ॥

[मुझे पिङ्गल नेत्र प्रिय न था। मुझे डर है कि वह फिर न लौट आए। यहाँ से जाकर वह यमराज को कष्ट दे। और (कहीं) यमराज कष्ट पाकर उसे फिर यहाँ ले आए।]

बोधिसत्त्व ने उसे आश्वासन दिया—वह राजा लकड़ी के हजार भारों से जला दिया गया है। सैकड़ों घड़ों से (चिता) बुझा दी गई है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह चारों ओर से खन दी गई है। जो परलोक जाते हैं उनका यह स्वभाव है कि वह दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते हैं। फिर उसी शरीर से नहीं आते हैं। इसलिए तू मत डर।

यह गाथा कही—

बद्धो बाहसहस्सेहि सितो घटसतेहि सो,
परिपक्वता च सा भूमि मा भायि नागमिस्सति ॥

[हजार भारों से जला दिया गया है। सैकड़ों घड़ों से (चिता) ठंडी कर दी गई है। वह भूमि खन दी गई है। मत डर, वह नहीं आएगा।]

तब द्वारपाल को सन्तोष हुआ। बोधिसत्त्व धर्म से राज्य करके दान आदि पुण्य कर यथाकर्म (परलोक) गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिङ्गल देवदत्त था। पुत्र तो मैं ही था।

—

दूसरा परिच्छेद

१०. सिगाल वर्ग

२४१. सब्बदाठ जातक

८

“सिगालोमानत्थद्धो...” यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अजातशत्रु को प्रसन्न कर देवदत्त ने जो लाभ सत्कार पैदा किया था वह उसे देर तक स्थिर न रख सका। नालागिरि (हाथी) का प्रयोग करने के समय जो आश्चर्य देखा गया उस समय से वह लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त लाभ-सत्कार पैदा करके चिरकाल तक स्थिर न रख सका। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठें क्या बातचीत कर रहे हो? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने लाभ-सत्कार को नष्ट किया है, पहले भी नष्ट किया ही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसका पुरोहित था, तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों में पारङ्गत। वह पृथ्वीजय मन्त्र जानता था। पृथ्वीजय मन्त्र जापमन्त्र है।

एक दिन बोधिसत्त्व उस मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा से एक खुली जगह में एक पत्थर पर बैठ कर मन्त्र जाप करने लगा। वह मन्त्र किसी दूसरे विधिरहित व्यक्ति को नहीं सुनाया जा सकता था, इसीलिए वह वैसी जगह जाप करने लगा था।

उसके पाठ करने के समय एक गीदड़ ने एक बिल में पड़े पड़े उस मन्त्र को सुनकर अभ्यास कर लिया। वह अपने पूर्व-जन्म में पृथ्वीजय मन्त्र का अभ्यासी एक ब्राह्मण था। बोधिसत्त्व ने पाठ कर चुकने पर कहा—मुझे इस मन्त्र का अभ्यास हो गया। गीदड़ ने बिल से निकल कर कहा—भो ब्राह्मण ! मुझे इस मन्त्र का तुझसे भी अधिक अभ्यास है। इतना कह वह भाग गया।

बोधिसत्त्व ने यह सोच कि यह गीदड़ बहुत खराबी करेगा 'पकड़ो पकड़ो' कहते हुए उसका पीछा किया। गीदड़ भागकर जंगल में जा घुसा। वहाँ जाकर उसने एक गीदड़ी के शरीर में थोड़ा सा बुरका भरा। वह बोली—स्वामी ! क्या है ? 'मुझे पहचानती है वा नहीं ?' उसने कहा—स्वामी ! पहचानती हूँ।

उसने पृथ्वीजय मन्त्र का जाप कर सैंकड़ों गीदड़ों को आज्ञा दे सब हाथी, अश्व, सिंह, व्याघ्र, सूअर, मृग आदि चौपायों को अपने पास बुलाया। सब को अपने अधीन कर स्वयं सम्बदाठ नामक राजा बन एक गीदड़ी को पटरानी बनाया। दो हाथियों की पीठ पर सिंह बैठता। सिंह की पीठ पर पटरानी सहित सम्बदाठ राजा बैठता। बड़ी शान थी।

वह ऐश्वर्य-मद में चूर हो, अभिमान के मारे वाराणसी राज्य जीतने की इच्छा से सब चौपायों को ले वाराणसी से कुछ ही दूर पर आ पहुँचा। बारह योजन की परिषद् थी। उसने कुछ ही दूर से ही राजा के पास सन्देश भेजा—राज्य दे अथवा युद्ध करे। वाराणसी निवासियों ने भयभीत हो डर के मारे नगर के द्वार बन्द कर लिए।

बोधिसत्त्व ने राजा के पास आकर कहा—महाराज। मत डरें। सम्बदाठ गीदड़ के साथ युद्ध करने की जिम्मेदारी मेरी है। मेरे अतिरिक्त और कोई उससे युद्ध नहीं कर सकता। उसने राजा तथा नगर वासियों को आश्वासन दे सम्बदाठ क्या करके राज्य जीतेगा पूछने की इच्छा से नगर-द्वार की अट्टालिका पर चढ़कर पूछा—सम्बदाठ ! क्या करके इस राज्य को लेगा ?

“सिंहनाद कराकर, जनसमूह को शब्द से भयभीत कर राज्य लूंगा।”

बोधिसत्त्व ने “यह है” जान अट्टालिका पर चढ़ मुनादी करवा दी कि सारी बारह योजन वाराणसी के नगर निवासी अपने अपने कानों के छिद्रों को माष (को दाल) के आटे से लेप लें। जनता ने मुनादी सुन बिल्लियों से लेकर सभी

जानवरों के तथा अपने कानों के छिद्र माष के आटे से इस प्रकार लेप लिए कि दूसरे का शब्द न सुन सकें।

बोधिसत्त्व ने फिर अट्टालिका पर चढ़कर पुकारा—

“सब्बदाठ !”

“ब्राह्मण ! क्या है ?”

“इस राज्य को कैसे ग्रहण करेगा ?”

“सिंहनाद करवाकर, मनुष्यों को डराकर, जान मरवा कर ग्रहण करूँगा।”

“सिंहनाद नहीं करवा सकेगा। जाति-सम्पन्न, लाल हाथ पाँव वाले, केशुर सिंह राज तरे जैसे नीच गीदड़ की आज्ञा नहीं मानेंगे।”

गीदड़ ने अभिमान से चूर हो कहा—दूसरे सिंह रहें। जिस सिंह की पीठ पर मैं बैठा हूँ उसीसे सिंहनाद करवाऊँगा।

“यदि मामर्थ्य है तो सिंहनाद करवा।”

जिस सिंह पर बैठा था उसने उसे पाँव से इशारा किया कि सिंहनाद कर। सिंह ने हाथों के भिन्न पर मूँह रख तीन बार ऐसा सिंहनाद किया, जैसा कोई न कर सके। हाथियों ने डरकर गीदड़ को पैरों में गिरा पाँव से उसक मिर को कुचल चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सब्बदाठ वहीं मर गया। वे हाथी भी सिंहनाद सुनकर भय के मारे एक दूसरे से भिड़कर वहीं मर गए। सिंहों को छोड़ कर शेष जितने भी खरगोश और बिल्लों से लेकर मृग सूअर आदि थे सभी जानवर वहीं मर गए। सिंह भाग कर अरण्य में चले गए। बारह योजन में मांस का ढेर लग गया।

बोधिसत्त्व ने अटारी से उतर नगर-द्वारों को खोल मुनादी करा दी कि सभी अपने कानों में से माष के आटे को निकाल दें और जिन्हें मांस की जरूरत हो मांस ले जाएँ। मनुष्यों ने गीला मांस खाया और बाकी को सुखा कर बल्लूर^१ बना लिया। कहते हैं उसी समय से मांस सुखाना आरम्भ हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला यह अभिसम्बुद्ध गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया—

^१ बल्लूर = सूखा मांस।

सिगालो मानत्यद्धोव परिवारेन अत्थिको,
पापुणी महति भूमि राजासि सब्बदाठिनं॥
एवमेवं मनुस्सेसु यो होति परिवारवा,
सो हि तत्थ महा होति सिगालो विय दाठिनं॥

[गीदड़ अभिमान में चूर था। उसे और भी “परिवार” चाहिए था। वह महान् पद को प्राप्त हो गया—सभी चौपायों का राजा हूँ गया। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जिसका “परिवार” बड़ा होता है वह भी महान् हो जाता है जैसे गीदड़ जानवरों में।]

मानत्यद्धो अनुचरों के कारण उत्पन्न अभिमान में चूर। परिवारेन अत्थिको और भी “परिवार” की इच्छा वाला होकर। महति भूमि महासम्पत्ति को। राजासि सब्बदाठिनं सब चौपायों का राजा था। सो हि तत्थमहा होति जो परिवार युक्त आदमी है वह उन परिवारों में महान् होता है। सिगालो विय दाठिनं जैसे गीदड़ चौपायों में महान् हुआ उसी प्रकार महान् होता है। वह उस गीदड़ की तरह प्रमाद के कारण विनाश को प्राप्त होता है।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। राजा सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

२४२. सुनख जातक

“बालो वतायं सुनखो...” यह शास्ता ने जंतवन में विहार करते समय अम्बल-कोष्ठक आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके जन्म के समय से ही कहारों ने उसे वहाँ पोसा था। वह वहाँ भात खाता हुआ आगे चलकर मोटा गया। एक दिन एक ग्रामवासी वहाँ आया।

उसने कुत्ते को देखा और कहारों को चादर तथा कार्षापण दे कुत्ते को चमड़े के पट्टे से बाँध कर ले गया। वह ले जाने के समय भौंका नहीं। जो जो दिया गया, खाता हुआ पीछे पीछे गया।

तब उस आदमी ने सोचा कि अब यह मुझसे प्रेम करता है और पट्टा खोल दिया। वह छूटते ही एक दौड़ में आसनशाला आकर पहुँचा। भिक्षुओं ने उसे देख और उसका किया जान शाम को धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! आसनशाला का कुत्ता बन्धन से मुक्त होने में चतुर है। छूट ही फिर आ गया है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? ‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, वह कुत्ता केवल अभी बन्धन से मुक्त होने में चतुर नहीं है, पहले भी चतुर ही था।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र के एक बड़े सम्पन्न घराने में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी बसाई।

उस समय वाराणसी में एक आदमी के पास एक कुत्ता था। वह भात के कौर खा खाकर मोटा गया। एक ग्रामवासी वाराणसी आया। उस कुत्ते को देख, उस आदमी को चादर और कार्षापण दे, कुत्ते को चमड़े की डोरी से बाँध डोरी के एक सिरे को पकड़ कर ले चला। चलते चलते जंगल के द्वार पर एक शाला में दाखिल हो कुत्ते को बाँध एक तख्त पर लेट कर सो गया। उस समय बोधिसत्त्व ने किसी काम से उस जंगल में प्रवेश होते वक्त उस कुत्ते को चमड़े की डोरी से बँधे बैठे देख पहली गाथा कही—

बालो वतायं सुनखो यो वरत्तं न खादति,
बन्धना च पमुञ्चेय्य असितो च घरं बजे ॥

[यह कुत्ता मूर्ख है जो चमड़े की डोरी को नहीं खाता है। (यदि खा डाले) तो बन्धन से छूट जाए और भरे पेट ही घर चला जाए।]

पमुञ्चेय्य मुक्त करे; अथवा पमोञ्चेय्य ही पाठ है। असितो च घरं बणे भरे पेट ही अपने निवास-स्थान पर चला जाए।

उसे सुन कुत्ते ने दूसरी गाथा कही—

अट्ठितं मे मनस्मि मे अथो मे हवये कतं,
कालञ्च पतिकंलामि याव पस्सुपतु जनो॥

[यह मेरा अधिष्ठान था, यह मेरे मन में था; और यह (तुम्हारा) कहना भी हृदय में रख लिया। मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जबकि लोग सो जाएँ।]

अट्ठितं मे मनस्मि मे जो तुम कहते हो वह पहले से मेरा संकल्प है, वह मेरे मन ही में है। अथो मे हवये कतं तुम्हारा वचन भी मैंने हृदय में कर लिया है। कालञ्च पतिकंलामि समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। याव पस्सुपतु जनो जब तक यह लोग सो जाते हैं, इन्हें नींद आ जाती है, तब तक मैं समय की प्रतीक्षा करता हूँ। नहीं तो हल्ला हो जाएगा कि यह कुत्ता भाग रहा है। इसलिए रात को जब सब सो जाएँगे चमड़े की डोरी खाकर भाग जाऊँगा।

यह कहकर वह लोगों के सो जाने पर चमड़े की डोरी खा, पेट भर कर, भागा और अपने स्वामी के ही घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुत्ता इस समय का कुत्ता है। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

२४३. गुत्तिल जातक

“सत्तन्ति सुमधुरं . . .” यह शास्ता ने वेढुवन में बिहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं ने देवदत्त से पूछा—आयुष्मान् देवदत्त ! सम्यक् सम्बुद्ध तेरे आचार्य्य हैं। तूने सम्यक् सम्बुद्ध के कारण तीनों पिटक मीखे, चारों ध्यान प्राप्त किए, अब आचार्य्य का विरोधी बनना उचित नहीं। देवदत्त ने आचार्य्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा—आयुष्मान् श्रमण गौतम मेरे कैसे आचार्य्य हैं ? क्या मैंने अपनी सामर्थ्य से ही तीनों पिटक नहीं सीखे हैं तथा चारों ध्यान नहीं प्राप्त किए हैं।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त अपने आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर सम्यक् सम्बुद्ध का विरोधी बन महाविनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठें क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त आचार्य्य का प्रत्याख्यान कर मेरा शत्रु बन नष्ट होता है, पहले भी विनष्ट हुआ ही है।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गन्धर्व कुल में पैदा हुआ। उसका नाम हुआ गुत्तिल कुमार। वह बड़े होने पर गन्धर्व-शिल्प में ऐसा पारङ्गत हुआ कि सारे जम्बूद्वीप में गुत्तिल गन्धर्व ही सब गन्धर्वों से बढ़ गया। वह स्त्री का पालन न कर अपने अन्धे मातापिता का पालन करता था।

उस समय वाराणसी निवासी बनियों ने व्यापार के लिए उज्जैनि जाकर उत्सव घोषित होने पर चन्दा करके बहुत सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीड़ा-स्थान पर इकट्ठे हो कहा कि बैठन देकर एक गन्धर्व को लाओ। उस समय उज्जैनि में मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होंने उसे बुलवाकर अपना गन्धर्व बनाया।

मूसिल वीणा भी बजाता था। उसने वीणा को स्वर चढ़ाकर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के गन्धर्व से परिचित उन लोगों को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—मालूम होता है

मैं बहुत तीखा बजाता हूँ। उसने मध्यम स्वर चढ़ा मध्यम स्वर से बजाया। वे तब भी उपेक्षावान् ही रहे। उसने सोचा—मालूम होता है यह कुछ नहीं जानते। स्वयं भी कुछ न जानने वाला बन उसने वीणा के तारों को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—भो व्यापारियो ! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नहीं होते ?

“क्या तू वीणा बजाता था ? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।”

“क्या तुम मुझसे बढ़कर आचार्य्य को जानते हो ? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नहीं होते हो ?”

“वाराणसी में जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है जैसे स्त्रियाँ बच्चों को सन्तुष्ट कर रही हों।”

“अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस लें। मुझे यह नहीं चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जाएँ।”

उन्होंने ‘अच्छा’ कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गए। वहाँ ‘यह गुत्तिल का निवासस्थान है’ बताकर अपने अपने घर चले गए।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के घर में प्रवेश कर वहाँ टँगी हुई बोधिसत्त्व की बहुत ही अच्छी वीणा देख उतारकर बजाई। बोधिसत्त्व के माता पिता अन्धे होने के कारण उसे न देख सके। वे समझे चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने कहा—सू सू चूहे वीणा खा रहे हैं।

उस समय मूसिल ने वीणा रखकर बोधिसत्त्व के माता पिता को प्रणाम किया। उन्होंने पूछा—“कहाँ से आया ?”

“उज्जैनी से आचार्य्य के पास शिल्प सीखने आया हूँ।”

“अच्छा।”

“आचार्य्य कहाँ हैं ?”

“तात ! बाहर गया है। आज आ जाएगा।”

यह सुन मूसिल वहीं बैठ गया। बोधिसत्त्व के आने पर, उसके द्वारा कुशल समाचार पूछे जा चुकने पर उसने अपने आने का कारण कहा। बोधिसत्त्व

अङ्गविद्या के जानकार थे। वे जान गए कि यह सत्पुरुष नहीं है। उन्होंने अस्वीकार किया—तात ! जा तरे लिए शिल्प नहीं है।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के माता पिता के चरण पकड़े। उन्हें अपनी सेवा से सन्तुष्ट कर उसने उनसे याचना की कि मुझे शिल्प सिखलवा दें। बोधिसत्त्व ने माता पिता के बारबार कहने पर उनकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण उसे शिल्प सिखा दिया।

वह बोधिसत्त्व के साथ राजदरबार जाता। राजा ने उसे देखकर पूछा—
आचार्य्य ! यह कौन है ?

“महाराज ! यह मेरा शिष्य है।”

वह शनैः शनैः राजा का विश्वासी हो गया। बोधिसत्त्व ने बिना कुछ छिपाए अपना जाना सारा शिल्प सिखाकर कहा—तात ! शिल्प समाप्त हो गया। उसने मोचा—मैंने शिल्प सीख लिया। यह वाराणसी नगर सारे जम्बू-द्वीप में श्रेष्ठ नगर है। और आचार्य्य भी बूढ़े हो गए हैं। मुझे यहीं रहना चाहिए। उसने आचार्य्य से कहा—आचार्य्य ! मैं राजा की सेवा करूँगा। आचार्य्य बोला—अच्छा तात ! मैं राजा से कहूँगा। उसने राजा से जाकर कहा—
“महाराज ! हमारा शिष्य देव की सेवा में रहना चाहता है। उमको जो देना हो, जानें।”

राजा बोला—“आपको जितना मिलता है, आपके शिष्य को उसका आधा मिलेगा।” उसने मूसिल को वह बात कही। मूसिल बोला—“मुझे आपके बराबर ही मिलेगा तो सेवा करूँगा, नहीं मिलेगा तो सेवा नहीं करूँगा।”

“क्यों ?”

“क्या आप जितना शिल्प जानते हैं वह सब मैं नहीं जानता ?”

“हाँ जानते हो।”

“यदि ऐसा है तो मुझे आधा क्यों देता है ?”

बोधिसत्त्व ने राजा से कहा। राजा बोला—यदि आपके समान शिल्प दिखा सकेगा तो बराबर मिलेगा। बोधिसत्त्व ने राजा की बात उसे सुनाई। वह बोला—अच्छा, दिखाऊँगा। राजा को कहा गया। उसने कहा—दिखाए। यह पूछने पर कि किस दिन मुकाबला होगा, उसने उत्तर दिया—महाराज आज से सातवें दिन।

राजा ने मूसिल को बुलवाकर पूछा—क्या तू सचमुच आचार्य्य के साथ मुकाबला करेगा ?

“देव ! सचमुच ।”

“आचार्य्य के साथ मुकाबला करना उचित नहीं । मत कर ।”

“महाराज ! आज से सातवें दिन मेरा और आचार्य्य का मुकाबला होने ही दें । एक दूसरे के ज्ञान को जानेंगे ।”

राजा ने ‘अच्छा’ कह स्वीकार कर मुनादी करा दी—आज से सातवें दिन आचार्य्य गुत्तिल तथा उनका शिष्य मूसिल राजदरबार में एक दूसरे के मुकाबले अपना शिल्प दिखाएँगे । नगर निवासी इकट्ठे होकर शिल्प देखें ।

बोधिसत्त्व सोचने लगे—यह मूसिल आयु में कम है, जवान है । मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शक्ति घट गई है । बूढ़े आदमी से काम नहीं हो सकता । शिष्य हार गया तो इसमें मेरी कुछ विशेषता नहीं, लेकिन शिष्य जीत गया तो उस लज्जा से तो अच्छा है जंगल में जाकर मर जाना । वह जङ्गल में जाते; लेकिन मृत्यु-भय से लौट आते । फिर लज्जा के मारे (जंगल) में जाते ।

इस प्रकार उसे आना जाना करते ही छः दिन बीत गए । तृण मर गए । रास्ता चलने का निशान बन गया । उस समय शक्र का आसन गरम हुआ । शक्र ने ध्यान लगा कर देखा तो उसे मालूम हुआ कि गुत्तिल गन्धर्व शिष्य के भय से जंगल में महान् दुख भोग रहा है । ‘मुझे इसका सहायक होना चाहिए’ सोच शक्र ने जल्दी से आकर बोधिसत्त्व के सामने खड़े हो पूछा—

“आचार्य्य ! जंगल में क्यों दाखिल हुए हो ?”

“तू कौन है ?”

“मैं शक्र हूँ ।”

बोधिसत्त्व ने उसे ‘देवराज ! मैं शिष्य के भय से जंगल में दाखिल हुआ हूँ’ कह पहली गाथा कही—

सत्ततन्तिं सुमधुरं रामणेय्य अवाच्यं,

सो मं रंगम्हि अब्हेति सरणम्मे होहि कोसिय ॥

अर्थ—हे देवराज ! मैंने मूसिल नाम के शिष्य को सात तारों वाली सुमधुर

रमणीक वीणा जितनी मैं जानता था उतनी सिखाई। अब वह मुझे रंगमंच पर ललकारता है। हे कोसिय गोत्र (इन्द्र) ! तू मुझे शरण में ले ।

शक्र उसकी बात सुन बोला—डरे मत। मैं तुम्हारा त्राण करूँगा। मैं तुम्हें शरण दूँगा। यह कह उसने दूसरी गाथा कही—

अहं ते सरणं सम्म अहमाचरियपूजको,
न तं जयिस्सति सिस्सो सिस्समाचरिय जेस्सति ॥

[सौम्य ! मैं तेरा शरणदाता हूँ। मैं आचार्य की पूजा करने वाला हूँ। शिष्य तुझे नहीं जीतेगा। आचार्य ही शिष्य को जीतेगा।]

अहं तं सरणं मैं शरण (-दाता हूँ), महायक होकर, प्रतिष्ठा देकर त्राण करूँगा। सम्म प्रिय वचन है। सिस्समाचरिय जेस्सति आचार्य ! तू वीणा बजाता हुआ शिष्य को जीतेगा।

शक्र ने और भी कहा—“तुम वीणा बजाते हुए एक तार तोड़कर छः बजाना। वीणा से स्वाभाविक स्वर निकलेगा। मूसिल भी तार तोड़ देगा। उसकी वीणा से स्वर न निकलेगा। उसी क्षण पराजित हो जाएगा। उसका पराजित होना जान दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं तार भी तोड़ कर केवल वीणा-दण्ड ही बजाना। तार रहित खूंटियों से स्वर निकल कर सारी बारह योजन की वाराणसी नगरी को ढक लेगा।” इतना कह कर शक्र ने बोधिसत्त्व को तीन गोटियाँ दीं और कहा—“सारे नगर पर वीणा शब्द के छा जाने पर इनमें से एक गोटी आकाश में फेंकना। तुम्हारे सामने तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगेंगी। उनके नाचने के समय दूसरी फेंकना। दूसरी तीन सौ उतर कर वीणा के सिर पर नाचने लगेंगी। तब तीसरी भी फेंकना। और तीन सौ उतर कर रङ्ग-मण्डप में नाचेंगी। मैं भी तुम्हारे पास आऊँगा। जाएँ। डरें मत।”

बोधिसत्त्व पूर्वाह्न समय घर गए। राजदरबार में भी मण्डप बनाकर राजा-सन तैयार कर दिया गया। राजा प्रासाद से उतर सजे मण्डप में आसन के बीच में बैठा। दस हजार अलंकृत स्त्रियों तथा अमात्य ब्राह्मण राष्ट्रिक आदि ने राजा को घेर लिया। सभी नगरवासी इकट्ठे हो गए। राजाङ्गण में चक्रों के साथ

चक्के तथा मञ्चों के साथ मञ्च बँध गए । बोधिसत्त्व भी स्नान करके, लेप कर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, बीणा ले, अपने लिए बिछे आसन पर बैठे । शक्र गुप्त रूप से आकाश में आकर ठहरा । केवल बोधिसत्त्व ही उसे देख सकते थे । मूसिल भी आकर अपने आसन पर बैठा । जनता घेर कर खड़ी हुई । आरम्भ में दोनों ने बराबर बराबर बजाया । जनता ने दोनों के बजाने से सन्तुष्ट हो हज़ारों हर्ष-नाद किए ।

शक्र ने आकाश में ठहर कर बोधिसत्त्व को ही सुनाते हुए कहा—एक तार तोड़ दें । बोधिसत्त्व ने भ्रमर-तार तोड़ दी । वह टूटने पर भी टूटे हुए सिर से स्वर देती थी । देवगन्धर्व का सा स्वर निकलता था । मूसिल ने भी तार तोड़ दी । उसमें से स्वर न निकला । आचार्य ने दूसरी, तीसरी करके सातों तारें तोड़ दीं । केवल दण्ड के बजाने से जो स्वर निकला उसने सारे नगर को छा लिया । हज़ारों वस्त्र फेंके गए तथा हज़ारों हर्षनाद हुए । बोधिसत्त्व ने एक गोटी आकाश में फेंकी । तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं । इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी के फेंकने पर जैसा कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं ।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया । जनता ने उठकर ‘तू आचार्य से विरोध कर उसकी बराबरी का प्रयत्न करता है । अपनी सामर्थ्य नहीं देखता’ कहते हुए मूसिल को डरा, जो जो हाथ में आया पत्थर डण्डे आदि से चूर चूर कर, जान मार, पैरों में पकड़ कूड़े के ढेर पर फेंक दिया । राजा ने सन्तुष्ट हो घनी वर्षा वरमात हुए की तरह बोधिसत्त्व को बहुत धन दिया । नगरवासियों ने भी वैसे ही किया ।

शक्र ने भी उससे विदा लेते हुए कहा—“पण्डित ! मैं सहस्र घोड़ों वाले आजानीय रथ के साथ मातली को भेजूंगा । तू सहस्र घोड़ों वाले श्रेष्ठ वैजयन्त रथ पर चढ़कर देवलोक आना ।” उसके वहाँ जाकर पाण्डुकम्बलशिलातल पर बैठने पर देवकन्याओं ने पूछा—महाराज ! कहाँ गए थे ? शक्र ने उनको वह बात विस्तार से बताई और बोधिसत्त्व के सदाचार तथा प्रज्ञा की प्रशंसा की । देवकन्याएँ बोलीं—महाराज ! हम आचार्य को देखना चाहती हैं । उसे यहाँ लाएँ ।

शक्र ने मातली को बुलाकर कहा—तात ! देवप्सराएँ गुप्तिल गन्धर्व को देखना चाहती हैं । जा उसे वैजयन्त रथ में बिठाकर ला । उसने ‘अच्छा’ कहा और

जाकर बोधिसत्त्व को ले आया। शक्र ने बोधिसत्त्व का कुशल क्षेम पूछ कहा—
“आचार्य्य ! देवकन्याएँ तुम्हारा गन्धर्व सुनना चाहती हैं।”

“महाराज ! हम गन्धर्व लोग शिल्प से ही जीविका चलाते हैं। मूल्य मिले तो गाऊँगा।”

“बजाएँ। मैं तुम्हें मूल्य दूँगा।”

“मुझे और मूल्य की जरूरत नहीं। यह देवकन्याएँ अपना अपना सुकृत कहें।
ऐसा होने से मैं बजाऊँगा।”

देवकन्याएँ बोलीं—“आचार्य्य ! हम अपने किए सुकृत पीछे सन्तुष्ट होकर
कहेगी। गन्धर्व करें।”

बोधिसत्त्व ने सप्ताह पर्यन्त देवताओं को गन्धर्व मुनाया। वह दिव्यवाद्य
से भी बढ़ गया। सातवें दिन आरम्भ से देवकन्याओं का सुकृत पूछा।

काश्यप बुद्ध के समय एक भिक्षु को उत्तम वस्त्र देकर शक्र की परिचारिका
होकर उत्पन्न हुई, हजारों अप्सराओं से घिरी, एक उत्तम देवकन्या से पूछा—
तू पूर्व जन्म में क्या कर्म करके (यहाँ) उत्पन्न हुई ?

उससे पूछा गया प्रश्न तथा उसका उत्तर विमानवत्सु^१ में आया है। वहाँ
कहा है—

“अभिवक्त्तेन वण्णेन या त्वं तिट्ठसि देवते,
ओभासेन्ती विसा सब्बा ओसधी विय तारका ॥
केन ते ताविसी वण्णो केन ते इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च ते भोगा ये केचि मनसो पिया ॥

पुच्छामि तं देवि महानुभावे
मनुस्सभूता किमकासि पुञ्जं,
केनासि एवं जलितानुभावा
वण्णो च ते सब्बविसा पभासति ॥”

[हे देवते ! यह जो तेरा कान्तिपूर्ण वर्ण है, यह जो सारी दिशाएँ इस प्रकार
प्रकाशित हैं जैसे औषधि तारा हो, सो यह तेरा ऐसा वर्ण किस कारण से है ? तू

^१ खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

किस कारण से यहाँ ऋद्धिमान् है ? जो भोग तुझे प्यारे लगते हों, वह किस कारण से प्राप्त होते हैं ? हे महानुभाव देवि ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि मनुष्य योनि में तूने क्या पुण्य कर्म किया ? किस कर्म के प्रभाव से तू प्रज्वलित प्रताप की है ? और तेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है ।]

“वत्सुत्तमदायिका नारी पवरा होति नरेसु नारिसु,
एवं प्रियरूपदायिका मनापं दिव्यं सा लभते उपेक्ष्य ठानं ॥
तस्सा मे पस्स विमानं अच्छरा कामवणिनीहमस्मि,
अच्छरासहस्साहं पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं ॥
तेन मेताविसो वण्णो तेन मे इध भिज्झति,
उप्पज्जन्ति च मे भोगा ये केचि मनसो पिया,
तेनम्हि एवं जलितानुभावा
वण्णो च मे सब्बविसा पभासति ॥”

[उत्तम वस्त्र देने वाली नारी नरों में और नारियों में श्रेष्ठ होती है। इस प्रकार प्रिय रूप देने वाली वह (नारी) मरकर सुन्दर दिव्य स्थान को प्राप्त करती है। मेरे विमान को देखो। मैं इच्छित रूप धारण करने वाली अप्सरा हूँ। मैं हजार अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। यह पुण्य का फल है, देखो। इसी से मेरा ऐसा वर्ण है। इसीसे मैं ऋद्धिमान् हूँ। इसीसे मन को जो प्यारे लगते हैं ऐसे भोग मुझे प्राप्त होते हैं। उसीसे मैं प्रज्वलित प्रताप वाली हूँ। उसीसे मेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है ।]

दूसरी ने भिक्षा माँगते हुए भिक्षु को पूजन के लिए पुष्प दिए। दूसरी ने चैत्य में पञ्चङ्गुलि चिन्ह लगाने के लिए सुगन्धि दी। दूसरी ने मधुर फलमूल दिए। दूसरी ने उत्तम रस दिया। दूसरी ने काश्यप बुद्ध के चैत्य पर सुगन्धित पञ्चङ्गुलि चिन्ह लगाया। दूसरी ने रास्ते चलते भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के घर में वाम ग्रहण करने पर धर्म सुना। दूसरी ने नौका में बैठ भोजन किए भिक्षु को पानी में खड़े हो पानी दिया। दूसरी ने गृहस्थ में रह क्रोधरहित चित्त से सास ससुर की सेवा की। दूसरी ने अपने को मिले हिस्से में से भी बाँट कर ही खाया और शीलवान रही। दूसरी ने पराए घर में दासी होकर क्रोध-रहित मान-रहित रह अपने हिस्से को बाँट कर खाया। इसीसे वे देवराज की परिचारिका होकर पैदा हुईं।

इस प्रकार गुत्तिलविमानवत्सु में आई सैंतीस देवकन्याओं ने जो जो कर्म करके वहाँ जन्म ग्रहण किया वह सब बोधिसत्त्व ने पूछा । उन सब ने भी अपना कर्म गाथाओं में ही कहा । यह सुन बोधिसत्त्व ने कहा—“मुझे बड़ा लाभ हुआ । मुझे बड़ी प्राप्ति हुई । मैंने जो यह यहाँ आकर अल्पमात्र कर्म से भी प्राप्त सम्पत्तियों की बात सुनी । अब यहाँ से मैं मनुष्यलोक जाकर दानादि कुशल कर्म ही करूँगा ।” यह कह उसने यह हर्ष-वाक्य कहा—

स्वागतं वत मे अज्ज सुप्पभातं सुवुट्ठितं,
यं अद्दसांसि देवतायो अच्छरा कामबणिण्यो ॥
इमासाहं धम्मं सुत्वान काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय सञ्जमेन दमेन च;
सोहं तत्थ गमिस्सामि यत्थ गत्त्वा न सोचरे ॥

[आज मेरा आना शुभ है । आज का प्रभात शुभ है । आज का उठना शुभ है । आज मैंने इच्छित रूप धारण कर सकने वाली अप्सरा देवियों को देख लिया । इनसे धर्म सुनकर मैं बहुत कुशल कर्म करूँगा । दान से, समचर्या मे तथा संयम के प्रताप से मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाकर आदमी सोचता नहीं है ।]

सप्ताह के बाद देवराज ने मातली सारथी को आज्ञा दे बोधिसत्त्व को रथ पर बिठा वाराणसी ही भेज दिया । उसने वाराणसी पहुँच दवलोक में जो देखा था वह मनुष्यों को बताया । उस समय से मनुष्यों ने उत्साहपूर्वक पुण्य-कर्म करना स्वीकार किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मूसिल देवदत्त था । शक्र अनुहृद्ध था । राजा आनन्द था । गुत्तिल गन्धर्व तो मैं ही था ।

२४४. बीतिच्छ जातक

“यं पस्सति न तं इच्छति . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पलासिक परिव्राजक के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उसे सारे जम्बूद्वीप में कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला । उसने श्रावस्ती पहुँचकर पूछा—मेरे साथ कौन शास्त्रार्थ कर सकता है ? उत्तर मिला—सम्यक् सम्बुद्ध । उसने बहुत से आदिमियों के साथ जेतवन पहुँच कर चारों प्रकार की परिषद को धर्मोपदेश देते हुए तथागत से प्रश्न पूछा । शास्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर दे उससे प्रश्न पूछा—एक (चीज) क्या है ? वह उत्तर न दे सकने के कारण उठकर भाग गया । बैठी हुई परिषद बोली—भन्ते ! एक ही शब्द से परिव्राजक को हरा दिया । शास्ता ने कहा—“उपासको ! न केवल अभी मैंने उसको एक ही पद से हराया है, पहले भी हराया है ।” यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ । बड़े होने पर कामभोगों को छोड़ ऋषियों के प्रब्रज्या क्रम से प्रब्रजित हो दीर्घकाल तक हिमालय में रहा । वह पर्वत से उतर एक निगम-ग्राम के पास गङ्गा के मोड़ पर पर्णशाला में रहने लगा ।

एक परिव्राजक को सारे जम्बूद्वीप में शास्त्रार्थ करने वाला न मिला । उसने उस निगम में पहुँच पूछा—मेरे साथ शास्त्रार्थ कर सकने वाला कोई है ? पता लगा—है । वह बोधिसत्त्व की प्रशंसा सुन अनेक आदिमियों के साथ उनके निवास-स्थान पर पहुँच, कुशल क्षेम पूछ कर बैठा । बोधिसत्त्व ने पूछा—वनगन्ध से सुगन्धित गङ्गाजल पीएगा ? परिव्राजक ने शास्त्रार्थ आरम्भ करते हुए कहा—कौनसी गङ्गा ? बालू गङ्गा है ? जल गङ्गा है ? इधर का किनारा गङ्गा है ? अथवा

उधर का किनारा गङ्गा है ? बोधिसत्त्व ने उसे उत्तर दिया—परिव्राजक ! उदक, बालू, इधर के किनारे और उधर के किनारे के अतिरिक्त और गङ्गा कहाँ है ? परिव्राजक को कुछ उत्तर न सूझा । वह उठकर भाग गया । उसके भाग जाने पर बोधिसत्त्व ने बैठे हुए लोगों को उपदेश देते हुए यह गाथाएँ कहीं—

यं पस्सति न तं इच्छति
 यञ्च न पस्सति तं किर इच्छति,
 मञ्जामि चिरं चरिस्सति
 न हि तं लच्छति यं सो इच्छति ॥१॥
 यं लभति न तेन तुस्सति
 यं पत्थेति लद्धं हीळेति,
 इच्छा हि अनन्तगोचरा
 वीतिच्छानि नमो करोमसे ॥२॥

[जिसे देखता है उसकी इच्छा नहीं करता, जिसे नहीं देखता है उसकी इच्छा करता है । मैं समझता हूँ कि यह चिरकाल तक भटकंगा । जिसकी इच्छा करता है वह इसे नहीं मिलेगा ॥१॥ जो मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता । जिसकी इच्छा करता है वह मिलने पर उसका अनादर करता है । इच्छा की गति अनन्त है । जो वीतिच्छा हैं, उन्हें हम नमस्कार करते हैं ॥२॥]

यं पस्सति जिस उदक आदि को देखता है, उसे गङ्गा नहीं मानता है । यञ्च न पस्सति जिस उदक आदि से रहित गङ्गा को नहीं देखता उसकी इच्छा करता है । मञ्जामि चिरं चरिस्सति मैं ऐसा मानता हूँ कि यह परिव्राजक इस प्रकार की गङ्गा को खोजते हुए चिरकाल तक भटकेंगा, अथवा जैसे उदक आदि से रहित गङ्गा को उसी तरह रूप आदि से रहित आत्मा को भी खोजते हुए संसार में चिरकाल तक भटकेंगा । न हि तं लच्छति चिरकाल तक विचरते हुए भी वह जो इस प्रकार की गङ्गा वा आत्मा की इच्छा करता है उसे न प्राप्त कर सकेगा ।

यं लभति जो उदक वा रूप आदि मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता । यं तत्थेपि लद्धं हीळेति इस प्रकार प्राप्त से असन्तुष्ट हो जिस जिस सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उस उस को प्राप्त करके 'इससे क्या' कहकर उसका अनादर करता है,

उसकी अवमानना करता है। इच्छा हि अनन्तगोचरा जो जो प्राप्त हो उसका अनादर कर दूसरी दूसरी चीज की इच्छा करने के कारण यह इच्छा, यह तृष्णा अनन्त गति वाली है। वीतिच्छानिं नमो करोमसे इसलिए जो इच्छा रहित बुद्ध आदि हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशनाला जातक का मेल बैठाया। उस समय का परि-
ब्राजक ही इस समय का परिव्राजक है। तपस्वी तो मैं ही था।

२४५. मूलपरियाय जातक

“कालो घसति भूतानि . . .” यह शास्ता ने उक्कट्टा के पास सुभगवन में विहार करते हुए मूलपरियाय सुत्त^१ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय तीन वंशों में पारङ्गत पाँच सौ ब्राह्मणों ने (बुद्ध-) शासन में प्रब्रजित हो तीनों पिटक सीख कर अभिमान में चूर हो सोचा—सम्यक् सम्बुद्ध भी तीन पिटक ही जानते हैं। हम भी जानते हैं। तब हमारा उनका क्या अन्तर है? उन्होंने बुद्ध की सेवा में जाना छोड़ दिया। शास्ता की बराबरी के होकर घूमने लगे।

एक दिन शास्ता ने उनके आकर पास बैठे रहने के समय आठ भूमियों से सजाकर मूलपरियाय सुत्त का उपदेश दिया। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। तब उनको विचार हुआ—हम अभिमान करते हैं कि हमारे समान पण्डित नहीं। लेकिन अब कुछ नहीं समझते। बुद्ध के सदृश पण्डित नहीं है। अहो बुद्ध-गुण! उस समय से वह नम्र बन गए, वैसे जैसे सर्प के दाँत उखाड़ दिए गए हों, विष जाता

^१ मज्झिम-निकाय का प्रथम सुत्त।

रहा हो। शास्ता ने उकट्टा में यथाभिरुचि रहकर वेशाली जा वहाँ गौतमक चेतिय में गौतमकमुत्त का उपदेश दिया। हजार लोकघातु काँप गई। उसे सुनकर वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुए। मूलपरियाय सुत्त के उपदेश के अन्त में, जिस समय शास्ता उकट्टा में ही विहार करते थे, भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अहो बुद्धों की शक्ति! वे ब्राह्मण प्रव्रजित वैसे अभिमानी थे। उन्हें भगवान् ने मूलपरियाय सुत्त से मान-रहित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी इन अभिमानी सिर वालों को मान रहित किया है, पहले भी किया है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर तीनों वेदों में पारङ्गत हो प्रसिद्ध आचार्य्य बन पाँच सौ माणवकों को मन्त्र बँचवाता था। वे पाँच सौ (माणवक) शिल्प सीखकर, उसका अभ्यास कर सोचने लगे—'जितना हम जानते हैं, आचार्य्य भी उतना ही। उसमें कुछ विशेष नहीं।' यह सोच वह अभिमान से चूर हो आचार्य्य के पास न जाते, उसकी सेवा शुश्रूषा न करते। एक दिन जब आचार्य्य बेर के वृक्ष के नीचे बैठा था, उन्होंने उसे ठगने की इच्छा से बेर के वृक्ष को नाखून से खुरच कर कहा—यह वृक्ष निस्सार है। बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह मुझे ठग रहे हैं कहा—शिष्यो! एक प्रश्न पूछता हूँ। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक कहा—पूछें, उत्तर दूँगे। आचार्य्य ने प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

कालो घसति भूतानि सञ्जानेव सहस्रना,
यो च कालघसो भूतो स भूत पर्चनि पचि ॥

[काल सभी प्राणियों को खाता है, अपने को भी (खाता है)। जो काल को खाने वाला प्राणी है वह सब प्राणियों को जलाने वाली को जलाता है।]

कालो पूर्वाण्ह समय तथा अपराण्ह समय आदि। भूतानि प्राणी। काल प्राणियों का चर्म मांस आदि नोच नोच कर उन्हें नहीं खाता किन्तु उनकी आयु,

वर्ण, बल को नष्ट कर यौवन को मर्दन कर आरोग्य का विनाश करता हुआ खाता है। इस प्रकार खाता हुआ किसी को नहीं छोड़ता। सम्मानेब खाता है। केवल प्राणियों को ही नहीं किन्तु सहस्रना अपने को भी खाता है। पूर्वाण्ह अपराण्ह तक नहीं रहता; इसी प्रकार अपराण्ह आदि भी। यो च कालघसो भूतो यह क्षीणा-स्रव के लिये कहा गया है। वह आर्य्यमार्ग से भविष्य के प्रतिसन्धि-ग्रहण करने के समय को नष्ट करने वाला होने से कालघसो भूतो कहलाता है। सभूत पचर्नि पचि उसने इस तृष्णा को, जो प्राणियों को अपाय में जलाती है, ज्ञानाग्नि से जला दिया, भस्म कर दिया। इसीसे भूतपचर्नि पचि कहा जाता है। पचर्नि भी पाठ है। जननि पैदा करने वाली अर्थ है।

इस प्रश्न को सुनकर माणवकों में एक भी न जान सका। तब बोधिसत्त्व ने कहा—तुम यह मत समझो कि यह प्रश्न तीनों वेदों में है। तुम यह समझ कर कि जो मैं जानता हूँ वह सब तुम जानते हो मुझ बर का वृक्ष बनाते हो। तुम यह नहीं जानते कि ऐसा बहुत है जिसे तुम नहीं जानते और मैं जानता हूँ। जाओ, सात दिन का समय देता हूँ। इतने समय में इस प्रश्न पर विचार करो।

वे बोधिसत्त्व को प्रणाम कर अपने अपने निवासस्थान पर गए। वहाँ सप्ताह भर सोचने पर भी न उन्हें प्रश्न का आरम्भ मिला न अन्त। वे सातवें दिन आचार्य्य * के पास गए। प्रणाम करके बैठे। आचार्य्य ने पूछा—भद्रमुखो ! प्रश्न समझ में आया ? वे बोले—नहीं जानते। बोधिसत्त्व ने फिर उनकी निन्दा करते हुए दूसरी गाथा कही—

बहूनि नरसीसानि लोमसानि ब्रह्मनि च,
गीवासु पटिमुक्कानि कोचिदेवेत्थ कण्णवा ॥

अर्थ—बहुत आदमियों के सिर दिखाई देते हैं। वे बालों वाले हैं। सभी बड़े बड़े हैं। गर्दनों पर रखे हैं। ताड़ के फल की तरह हाथ में पकड़े हुए नहीं हैं। इन बातों में किन्हीं में आपस में भेद नहीं है। लेकिन यहाँ कोई ही कानवाला है। (यह अपने बारे में कहा) कण्णवा प्रज्ञावान्। कान का छेद तो किसको नहीं है ? इस प्रकार उन माणवकों की निन्दा कर कि तुम लोगों को कानों का छेद

मात्र ही है, प्रज्ञा नहीं है प्रश्न समझाया। उन्होंने सुनकर 'ओह ! आचार्य्य महान् होते हैं' क्षमा माँग नम्र हो बोधिसत्त्व की सेवा की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी। उस समय पाँच सौ माणवक यह भिक्षु थे। आचार्य्य मैं ही था।

२४६. तेलोवाद जातक

“हन्त्वा श्रत्वा वधित्वा च . . .” यह शास्ता ने बंगाली के आश्रय कूटगार शाला में विहार करते समय सिंह सेनापति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने भगवान् (बुद्ध) की शरण जा, निमन्त्रण दे, अगले दिन मांस सहित भोजन कराया। निगण्ठों^१ ने उसे मुन कुपित हो असन्तुष्ट हो तथागत को पीड़ा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बनाए मांस को खाता है। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! परिषद सहित निगण्ठनाथपुत्र श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बना मांस खाता है’ कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी निगण्ठनाथपुत्र ‘अपने लिए बना मांस खाने वाला’ कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर ऋषि प्रब्रज्या के अनुसार प्रब्रजित हो निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से वाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए

^१ निगण्ठ=निग्रन्थ=जैन सम्प्रदाय वाले साधु।

प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तंग करने के उद्देश्य से उसे घर में बुला, बिछे आसन पर बिठा मत्स्य मांस परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मांस तुम्हारे ही लिए प्राणियों को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हमें न लगे, तुम्हें भी लगे।

इतना कह पहली गाथा कही—

हत्वा शत्वा बधित्वा च देति दानं असञ्जतो,
एविसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति ॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा बध करके असंयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हत्वा प्रहार देकर। शत्वा क्लेश देकर। बधित्वा मारकर। देति दानं असञ्जतो असंयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है। एविसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

उसे सुन बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

पुत्तदारमि च हत्वा देति दानं असञ्जतो,
भुञ्जमानो पि सप्पञ्जो न पापेन उपलिप्पति ॥

[यदि असंयमी (आदमी) पुत्र तथा स्त्री को मारकर भी दान देता है; तो भी बुद्धिमान् खाने वाले को पाप नहीं लगता।]

भुञ्जमानो पि सप्पञ्जो दूसरे मांस की बात रहे। पुत्र स्त्री को भी मार कर दुश्शील द्वारा दिए गए दान को प्रज्ञावान् क्षमामैत्री आदि गुणों से युक्त खाने वाला पाप से लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व धर्मोपदेश कर आसन से उठकर चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गृहस्थ निगण्ठनाथपुत्र था; तपस्वी तो मैं ही था।

२४७. पादञ्जली जातक

“अद्वा पादञ्जली सम्बे . . .” यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय लालु-दायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दोनों प्रधान शिष्य प्रश्नों पर विचार करते थे। भिक्षु धर्मसभा में सुन स्थविरों की प्रशंसा करते थे। परिषद में बैठे हुए लाल उदायी स्थविर ने होंठ चबाए—यह हमारे बराबर क्या जानते हैं? धर्मसभा में भिक्षुओं ने बात-चीत चलाई—आयुष्मानो, लालुदायी ने दोनों श्रावकों की निन्दा कर होंठ चबाए। शास्ता ने यह सुन कर कहा—“भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी लालुदायी होंठ चबाना छोड़ और अधिक कुछ नहीं जानता था।” इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य हुए। राजा का पादञ्जली नाम का पुत्र मूर्ख था, आलसी था। आगे चलकर राजा मर गया। अमात्यों ने राजा का क्रिया-कर्म करके, किसे राज्याभिषिक्त करें सलाह करते हुए कहा कि राजपुत्र पादञ्जली को। बोधिसत्त्व ने कहा—यह कुमार मूर्ख है, आलसी है। परीक्षा करके इसे राज्याभिषिक्त करें। अमात्यों ने मुकद्दमा बना कुमार को पास बैठा मुकद्दमे का फैसला करते हुए ठीक फैसला नहीं किया। उन्होंने अस्वामी को स्वामी बना कुमार से पूछा—कुमार! क्या हम लोगों ने ठीक फैसला किया? उसने होंठ चबाए। बोधिसत्त्व ने समझा मालूम होता है कुमार पण्डित है। वह समझ गया होगा कि मुकद्दमे का ठीक फैसला नहीं हुआ। ऐसा मानकर पहली गाथा कही—

अद्धा पादञ्जली सब्बे पञ्चाय अतिरोचति,
तथाहि ओट्ठं भञ्जति उत्तरि नून पस्सति ॥

[पादञ्जली निश्चय से प्रज्ञा में सबसे बढ़कर है। इसीसे होंठ चबाता है।
निश्चय से इसे दूसरी बात दिखाई देती है।]

निश्चय से पादञ्जली कुमार सब्बे हम पञ्चय अतिरोचति तथाहि ओट्ठं
भञ्जति नून उत्तरि दूसरे कारण को पस्सति ।

उन्होंने दूसरे दिन भी एक मुकद्दमा तैयार कर उस मुकद्दमे का ठीक से फैसला
कर पूछा—देव ! कैसे क्या यह ठीक से फैसला हुआ है ? उसने फिर भी होंठ
चबाए। उसकी मूर्खता की बात जान बोधिसत्त्व ने दूसरी गाथा कही—

नायं धम्मं अधम्मं वा अत्थानत्थं व बुज्जति,
अञ्जमन्न ओट्ठनिब्भोग नायं जानाति किञ्चनं ॥

[यह धर्म-अधर्म वा अर्थ-अनर्थ कुछ नहीं बूझता है। यह होंठ चबाने के अति-
रिक्त और कुछ नहीं जानता है।]

अमात्यो ने पादञ्जली कुमार की मूर्खता पहचान बोधिसत्त्व को राज्या-
भिषिक्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पादञ्जली
लालुदायी था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२४८. किसुकोपम जातक

“सब्बेहि किसुको दिठ्ठो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय किसुकोपमसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चार भिक्षुओं ने तथागत के पास आ कर्मस्थान माँगा। शास्ता ने उनको कर्म-स्थान कहा। वे कर्मस्थान ले अपने अपने रात्रि के निवासस्थान तथा दिन के निवासस्थानों को गए। उनमें से एक ने छः स्पर्श-आयतनों का परिग्रहण कर अर्हत्व प्राप्त किया। एक ने पञ्चस्कन्धों का। एक ने चारों महाभूतों का। एक ने अठारह धातुओं का। उन सबने अपनी अपनी अर्हत्व-प्राप्ति तथागत से निवेदन की। उन भिक्षुओं में से एक को शंका हुई—यह कर्मस्थान तो भिन्न भिन्न हैं। निर्वाण एक है। सभी को अर्हत्व की प्राप्ति कैसे हुई? उसने शास्ता से पूछा। शास्ता बोले—भिक्षु, क्या तुझे किसुक देखने वाले भाइयों जैसा भेद (वैदा हुआ है)? भिक्षुओं ने प्रार्थना की भन्ते! यह बात हमें कहें। शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसके चार पुत्र थे। उन्होंने सारथी को बुलाकर कहा—सौम्य! हम किसुक देखना चाहते हैं। हमें किसुक वृक्ष दिखाएँ। सारथी बोला—अच्छा दिखाऊँगा। उसने चारों को एक साथ न दिखा ज्येष्ठ पुत्र को रथ में बिठा जंगल में ले जा ठूठ की अवस्था में किसुक दिखाकर कहा कि यह किसुक है। दूसरे को छोटे छोटे पत्ते निकलने के समय। तीसरे को फूल निकलने के समय। चौथे को फल निकलने पर।

आगे चलकर एक बार जब चारों भाई एक साथ बैठे थे उन्होंने बातचीत

चलाई किमुक कैसा होता है ? एक बोला—जैसे जला हुआ ठूठ। दूसरा—
जैसे न्यग्रोध वृक्ष। तीसरा—जैसे मांसपेशी। चौथा—जैसे सिरीष। वे पर-
स्पर एक दूसरे के कथन से असन्तुष्ट हो पिता के पास गए और पूछा—देव !
किमुक कैसा होता है ? राजा ने पूछा—तुमने कैसे कैसे बताया ? सबने अपना
अपना कहने का ढंग राजा से कहा। राजा बोला—तुम चारों ने किमुक देखा है।
हाँ, केवल किमुक दिखाने वाले सारथी से इस समय में किमुक कैसा होता है, इस
समय में कैसा होता है यह बाँट कर नहीं पूछा। उमीसे शक पैदा हुआ है। यह कह
पहली गाथा कही—

सब्बेहि किमुको दिट्ठो किन्वेत्थ विचिकिच्छथ,
नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो ॥

[सभी ने किमुक देखा है, किन्तु उसमें शंका करते हो। सभी अवस्थाओं में
सारथी से नहीं पूछा।]

नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो सभी ने किमुक देखा है। तुम यहाँ
क्या शंका करते हो ? सब जगह यह किमुक ही था, किन्तु तुमने सभी अवस्थाओं
में सारथी को नहीं पूछा। उमीसे शंका उत्पन्न हुई है।

शास्ता ने यह बात कह कर समझाया कि भिक्षु जैसे वे चार भाई विभाग करके
न पूछने के कारण किमुक के बारे में सन्देहशील हुए, उस तरह तू भी इस धर्म में
शंका करता है। यह कह अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी कथा कही—

एवं सब्बेहि अणेहि येसं धम्मा अजानिता,
ते वे धम्मेसु कंखन्ति किमुर्कास्मिन्व भातरो ॥

[सभी विषयों में, जो धर्म के जानकार नहीं हैं वह धर्मों के बारे में वैसे ही शंका
करते हैं जैसे किमुक के बारे में (चारों) भाई।]

जैसे वे भाई सभी अवस्थाओं में किमुक को न देखने के कारण सन्देहशील
हुए, उसी प्रकार विपश्यना ज्ञान से जिनको सब छ स्पर्शयितन, स्कन्ध, महाभूत,

धातु आदि धर्मअज्ञात हैं, स्रोतापत्ति धर्ममार्ग को प्राप्त न किए रहने के कारण, ज्ञानी न हुए रहने के कारण ही (वे) उन स्पर्श आयतन आदि धर्मों में शंका पैदा करते हैं। जैसे एक ही किसुक में चारों भाई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठायी। उस समय वाराणसी राजा में ही था।

२४९. सालक जातक

“एकपुत्रको भविस्सि...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक महास्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक कुमार को प्रब्रजित कर उसे कष्ट पहुँचाता रहता था। श्रामणेर ने पीड़ा न सह सकने के कारण चीवर त्याग दिया। स्थविर जाकर उसे फुसलाता—कुमारक! तेरा चीवर तेरा ही रहेगा। पात्र भी। मेरे पास जो पात्र चीवर है वह भी तेरा ही रहेगा। आ प्रब्रजित हो। ‘मैं प्रब्रजित नहीं होऊँगा’ कहते हुए भी वह बार बार आप्रह किए जाने के कारण प्रब्रजित हो गया।

प्रब्रजित होने के दिन से फिर स्थविर उसे तंग करने लगा। उसने कष्ट न सह सकने के कारण फिर चीवर त्याग दिया। अब स्थविर के अनेक बार कहने पर भी प्रब्रजित होना स्वीकार नहीं किया। बोला—मुझे तू सहन भी नहीं करता। मेरे बिना तू रह भी नहीं सकता। जा प्रब्रजित नहीं होऊँगा।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! उस बच्चे का दिल अच्छा था। महास्थविर के आशय को समझ कर वह प्रब्रजित नहीं हुआ। शास्ता

ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह केवल अभी सुहृदय नहीं है। यह पहले भी सुहृदय ही था। एक बार उसका दोष देखकर उसे फिर ग्रहण नहीं किया। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक गृहस्थ कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर धान्य बेच कर जीविका चलाने लगा। एक सपेरा भी एक बन्दर को सिखा, औषध ग्रहण करवा, उसे तथा सर्प को खिलाता हुआ जीविका चलाता था।

वाराणसी में उत्सव घोषित होने पर उसमें खेलने की इच्छा से उस सपेरे ने वह बन्दर उस धान्य के व्यापारी को सौंपा और कहा—इसका ख्याल रखना। उत्सव खेल, आकर सातवें दिन उस व्यापारी के पास जाकर पूछा—बन्दर कहाँ है ? बन्दर स्वामी की आवाज सुनते ही अनाज की दूकान से जल्दी से निकला। उसने बन्दर को बाँस की छड़ी से पीठ पर मारा और लेकर उद्यान गया। वहाँ उसे एक तरफ बाँधा और सो गया। बन्दर ने उसे सोया देख अपना बन्धन खोला और भाग कर आम के वृक्ष पर चढ़ गया। वहाँ उसने पका आम खाकर गुठली सपेरे के शरीर पर गिराई। सपेरे ने उठकर देखा तो सोचा कि मधुर वाणी से उसे ठग वृक्ष से उतार पकड़ूँगा। उसने उसे फुसलाते हुए पहली गाथा कही—

एकपुत्तको भविस्ससि
त्वञ्च नो हेस्ससि इस्सरो कुले,
ओरोह दुमस्मा सालक
एहि दालि घरकं वजेमसे॥

अर्थ—तू मेरा एक पुत्रक होकर रहेगा। मेरे कुल में (भोगों का) स्वामी होकर रहेगा। इस वृक्ष से उतर। आ, अपने घर चलें। सालक ! यह नाम लेकर सम्बोधन किया है।

उसे सुनकर बन्दर ने दूसरी गाथा कही—

ननु मं हृदयेतिमञ्जसि
 यञ्च मं हनसि बेलुयदिठया,
 पक्कम्बवने रमामसे
 गच्छ त्वं घरकं यथामुखं ॥

[निश्चय से तू मुझे हृदय से बहुत चाहता है। तभी तो मुझे बाँस की छड़ी से मारता है। अब हम पके आम्रवन में रहेंगे। तू सुखपूर्वक घर जा।]

ननु मं हृदयेति मञ्जसि निश्चय से तू मुझे हृदय में बहुत मानता है। मतलब है कि तू समझता है कि यह सुहृदय है। यञ्च मं हनसि बेलुयदिठया इतना अधिक मानता है कि बाँस की छड़ी से मारता है। इससे प्रकट करता है कि इस कारण से मैं नहीं आता हूँ। इसलिए हम इस पक्कम्बवने रमामसे गच्छ त्वं घरकं यथामुखं यह कह कूद कर बन में चला गया।

सपेरा भी असन्तुष्ट हो अपने घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर श्रामणेर था। सपेरा महास्थविर। धान्य का व्यापारी तो मैं ही था।

२५०. कपि जातक

“अयं ह्यसौ उपसम सञ्जमे रतो...” यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसका ढोंग भिक्षुओं में प्रकट हो गया। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक भिक्षु कल्याणकारी बुद्धशासन में प्रव्रजित हो ढोंग करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

‘अमुक बातचीत’ कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नहीं है, यह पहले भी ढोंगी रहा है। इसने जब यह बन्दर था केवल आग के लिए ढोंग किया। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी-देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर पुत्र के भागने दौड़ने में समर्थ होने पर, ब्राह्मणी के मर जाने पर पुत्र को गोद में ले हिमालय चला गया। वहाँ ऋषियों के प्रब्रज्या-क्रम से प्रब्रजित हो उस पुत्र को भी तपस्वीकुमार बना पर्णशाला में रहने लगा। वर्षा ऋतु में मूसलाधार वर्षा होने के समय एक बन्दर पीड़ित, दाँत कटकता हुआ, काँपता हुआ भटकता था। बोधिसत्त्व बड़े बड़े लकड़ लाकर आग बना मञ्च पर लेटा था। उसका पुत्र भी पाँव दबाता हुआ बैठा था। वह बन्दर एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र ओढ़ पहन, एक कन्धे पर अजिनचर्म रख, बैहंगी तथा कमण्डल ले ऋषिवेष बना पर्णशाला के द्वार पर जा आग के लिए ढोंग करके खड़ा हुआ।

तपस्वी कुमार ने उसे देख ‘तात ! एक तपस्वी शीत से पीड़ित है। काँप रहा है। उसे यहाँ बुला। सेंक लेगा’ कहा। उसने पिता से प्रार्थना करते हुए यह गाया कही—

अयं इतो उपसमसंयमे रतो
सन्तिदृढति सिसिरभयेन अद्विदतो,
हन्द् अयं पबिसतु मं अगारकं
विनेतु मीतं दरथञ्च केवलं॥

[यह ऋषि उपशमन में तथा संयम में लगा है। शीतभय से पीड़ित है। यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीड़ा को दूर करे।]

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन में तथा शीलसंयम में लगा है। सन्तिदृढति, वह ठहरता है। सिसिरभयेन वायु और वर्षा से उत्पन्न शीतभय से। अद्विदतो पीड़ित। पबिसतु मं, यहाँ प्रवेश करे। केवलं सब।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हुए बन्दर का भाव समझ दूसरी गाया कही—

नाथं इसी उपसमसंयमे रतो
कपी अयं दुमवरसाखगोचरो,
सो बूसको रोसकोचापि जम्मो
सच्चे वजे इमम्पि बूसये घरं ॥

[यह उपशमन तथा संयम में लगा हुआ ऋषि नहीं। यह वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला बन्दर है। यह दूषित करने वाला है। यह क्रोध करने वाला है। यह नीच है। यदि घर में आए तो इस घर को भी दूषित करे।]

दुमवरसाखगोचरो वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला। सो बूसको रोसको चापि जम्मो जहाँ जहाँ जाए उस उस जगह को दूषित करने वाला होने से बूसक। झगड़ने वाला होने से रोसको, नीच होने से जम्मो। सच्चे वजे यदि इस पर्णशाला में आवे, दाखिल हो तो सब जगह पाखाना पेशाब करके और आग लगा कर खराब कर दे।

यह कह कर बोधिसत्त्व ने जली लकड़ी ले उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नहीं गया। बोधिसत्त्व ने अभिञ्जा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वीकुमार को कसिन-परिकर्म सिखाया। उसने अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। वे दोनों ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पुराने समय से भी यह ढोंगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्त्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्त्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोंगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मैं ही था।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मसूरी
MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है ।

This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No

GL H 398.2
KAU V.2



121875
LBSNAA

H
 398.2 अवधि सं.
 कौसल्या ACC. No. 13505
 वर्ग सं. भाग 2 पुस्तक सं.
 Class No..... Book No.....
 लेखक
 Author... कौसल्यायन, नन्त आनन्द..
 शीर्षक जातक ।

H
 398.2 LIBRARY 13505
 कौसल्या LAL BHADUR SHASTRI
 National Academy of Administration
 भाग 2 MUSSOORIE

Accession No. 121875

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving